योगायोग

(कुमुदिनी)

श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक

धन्यकुमार जैन

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

आषाढ़ १३३६ बँगला संवत् (सन् १९२९)

योगायोग

द्वितीय संस्करण — — — आश्विन, २००६

मूल्य ४)

Printed & Published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

वक्तव्य

पुस्तकके रूपमें मूल "योगायोग" उपन्यास सबसे पहले सन् १६२६ ई०में प्रकाशित हुआ था। इससे पूर्व वह धारावाहिक रूपमें बँगलाकी 'विचित्रा' नामक पत्रिकामें आश्विन, १३३४ से चैत्र, १३३५ (बंगाब्द) तक निकलता रहा था। शुरूके दो अंकोंमें वह "तीन-पुरुष" नामसे प्रकाशित हुआ, लेकिन तीसरे अंकसे लेखकने उसका नाम बदलकर "योगायोग" कर दिया। इस प्रसंगमें 'नामान्तर' शीर्षक देकर 'विचित्रा'के पृष्ठोंमें लेखकने जो मनोरंजक कैफ़ियत दी थी, उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

"तीन-पुरुष" नामसे मेरी जो कहानी 'विचित्रा'में प्रकाशित हो रही है, उसके नामकी रक्षा करनी ही पड़ेगी ऐसी कोई क़ैद नहीं मानी जा सकती। उसकी इसी कच्ची हालतमें ही उसका नाम बदल देनेकी बात मैंने तय की है। पाठकोंके दरबारमें इसका कारण पेश करता हूँ।

नवजात कुमार और कुमारियोंके लिए नामों की तजवीज करने का अनुरोध मेरे पास अक्सर ही आया करता है और जहाँ तक अव-काश रहता है, मैंने उस अनुरोधका पालन भी किया है। कारण यह है कि इसके पालनमें मेरी कोई निजी ज़िम्मेदारी नहीं है। जहाँ तक व्यक्तिका सवाल है, आदमीका नाम उसका विशेषण नहीं है, है केवल संबोधन। लौकीके डंठलके ज़रिये कोई लौकीके गुणोंका विचार नहीं करता; डंठल तो सिर्फ पकड़नेके काम आता है। जिसे मैंने 'सुशील' नाम दिया है, उसके शीलके बारेमें मैं जवाबदेह नहीं माना जा सकता। अगर सुशीलके पते पर कोई चिट्ठी भेजे तो डाक-

घरका डाकिया उस शब्दके साथ उसके प्रयोगकी असंगति दिखाकर अखबारोंमें लिखापढ़ी नहीं करता। चिट्ठी ठीक जगह पर ही पहुँच जाती है।

व्यक्तिगत नाम पुकारनेके लिए होता है, विषयगत नाम स्वभाव-निर्देश करनेके लिए। जब हम मनुष्यको व्यक्तिके रूपमें न देखकर विषयके रूपमें देखते हैं, उस समय उसके गुण अथवा अवस्थाको मिलाकर उसे उपाधि देते हैं: तब किसीको "बड़ी बहू" कहकर पुकारते हैं तो किसीको 'मास्टर साहब' कहकर।

किन्तु जब साहित्यमें नामकरणका मुहूर्त्त आता है, तब तो दुविधा में पड़ जाना पड़ता है। सबसे पहले यह बहस उठ खड़ी होती है कि साहित्य-रचनाका स्वभाव विषयगत है या व्यक्तिगत। विज्ञान-शास्त्रमें तो विषय ही सर्वेसर्वा होता है, वहाँ गुण-धर्मका परिचय ही एकमात्र परिचय माना जाता है। यदि मनो-विज्ञानके किसी ग्रंथके सिरनामे पर यह वाक्यांश पढ़नेको मिले कि "पत्नीके प्रति पतिकी ईर्ष्या" तो हम समझ लेंगे कि विषयकी व्याख्या द्वारा ही यह नाम सार्थक हो सकता है। किन्तु शेक्सपियरके "ऑथेलो" नाटकका नाम भी यदि यही होता तो उसे हम पसंद नहीं कर सकते। कारण, यहाँ विषय प्रधान नहीं है, नाटक ही प्रधान है। अर्थात् आख्यानवस्तु, रचनारीति, चरित्र-चित्र, भाषा, छन्द, व्यञ्जना, नाट्यरस—इन सभीके मेलसे एक समग्र वस्तु तैयार होती है। इसी समग्रताको हम व्यक्ति-स्वरूप कह सकते हैं। विषयसे हम समाचार प्राप्त करते हैं, लेकिन व्यक्तिसे हमें जो कुछ मिलता है वह है आत्म-प्रकाशसे उत्पन्न रस। विषयको हम विशेषणके ज़रिये मनमें बाँधते हैं; व्यक्तिको सम्बोधनके द्वारा मनमें याद रखते हैं।

जिस वस्तुका सहारा लेकर मैं अपनी कहानी लिखने बैठा था, उसे उसका विषय कहा जा सकता है। अगर मूर्ति गढ़नी होती तो निश्चय ही मिट्टीकी राशि लेकर बैठना पड़ता। अतएव उसे 'मिट्टी'

शीर्षकके अंतर्गत वर्णित करनेसे विज्ञान अथवा तत्त्वज्ञानको कुछ भी नहीं खटकता। इसी तरह विज्ञान जब कुण्डलकी उपेक्षा करके उसके सोनेकी आलोचना शुरू करता है, तब विज्ञानको मैं अपने नमस्कार सौंपता हूँ—उसके आगे नतमस्तक होता हूँ। लेकिन नई दुलहिनके कुण्डलोंके बारेमें जब स्वयं वर ऐसी ही आलोचना शुरू करता है तब उसे वर न कहकर बर्बर कहना पड़ता है। रसशास्त्र के अनुसार मूर्ति मिट्टीसे अधिक होती है; कहानी भी विषयसे इसी प्रकार अधिक हुआ करती है। यही कारण है कि केवल विषयको शिरोधार्य करके कहानीका नाम देनेके लिए मेरा मन राज़ी नहीं होता। और सचमुच ही रससृष्टिकी दुनियामें वैषयिकताको बहुत बड़ा स्थान देना उचित भी नहीं है। जब साहित्य-राज्यकी हाटकी नींव उन लोगोंकी माँगके तकाज़े पर डाली जाती है जो वैषयिक प्रकृति के पाठक हैं तब दुःखका कारण निश्चित ही समझिए। हाट-बाजारका मालिक विषय-बुद्धिमें प्रवीण विज्ञान ही हो सकता है, साहित्य नहीं।

किन्तु इधर सम्पादकजी हाज़िर होकर कहते हैं: संसारमें नाम और रूप दोनों ही अत्यावश्यक हैं; इनमेंसे एकको भी नहीं छोड़ा जा सकता! सो मैंने सोचकर देखा कि वास्तवमें नाम तो हम रूपको ही दिया करते हैं; वस्तु जो कुछ देते हैं, वह है केवल संज्ञा। संदेश जहाँ रूपकी हैसियत लिये हुए है वहाँ उसे हम "अचरजकी टिकिया" भी कह सकते हैं, किंतु जहाँ वह केवल वस्तुगत परिचय लिये हुए आता है वहाँ उसे सिर्फ मिष्टान्न कहकर पुकारते हैं। सम्पादक महाशयकी संज्ञा है—'सम्पादक।' इस जगह मैं अदालतमें भी बाहलफ़ कबूल करनेके लिए राज़ी हूँ कि शब्दके साथ विषयका मेल पूरे सोलहों आने सच्चा है। लेकिन जिस जगह वे केवल विषय नहीं, बल्कि रूप हैं—अर्थात् परम स्वतंत्र और एकमात्र हैं—वहाँ किसी संज्ञामात्रके दायरेमें उन्हें नहीं बाँधा जा सकता। उस क्षेत्रमें उनके लिए उनका एक नाम होगा। उस नामके साथ मेल बैठाकर शत्र

अथवा मित्र कोई भी उनकी जाँच करने नहीं आएगा। अगर कहीं संयोगसे उनके माता-पिताने उन्हें 'सम्पादक' नाम ही दिया होता तो इस नामको सार्थक करनेके लिए उन्हें सम्पादक बननेकी कोई ज़रूरत ही नहीं होती।

कहानी भी रूप है—अंग्रेजीमें जिसे क्रिएशन-सृष्टि कहा जाता है। इसीसे मेरा निवेदन है कि कहानीको भी ऐसा कोई नाम देना उचित नहीं होगा जो संज्ञा हो—अर्थात् जहाँ रूपकी अपेक्षा वस्तु ही निर्दिष्ट हो। 'विषवृक्ष' नाम पर मुझे एतराज है। लेकिन 'कृष्णकांत का वसीयतनामा' नाममें कोई दोष नहीं है, कारण इस नामके द्वारा कहानीकी कोई व्याख्या नहीं की गई है।

सम्पादक महाशयने जब कहानीके नामके लिए अपना प्यादा पठाया, तब जल्दीमें उसके हाथ "तीन-पुरुष" नाम भेजकर उसे विदा देनी पड़ी। किंतु अगले क्षणसे ही वह नाम कहानीके आँचलके साथ अपनी गाँठ जोड़कर लगातार—प्रति मूहूर्त्त—उसके कानमें केवल यही वाक्य बार-बार दुहराने लगा: यदेतत् अर्थं मम तदस्तु रूपं तव: अब तुम्हें बराबर मेरे साथ हर कदमपर मेल बिठाकर ही चलना पड़ेगा। "छायेवानुगता स्वच्छा"....इत्यादि।—इसपर कहानी पूछती है: इसका क्या मतलब ? —नाम जवाब देता है: इसका मतलब यह है कि अबसे वाणीमें—भावमें—सर्वत्र मुझे प्रमाणित करते हुए चलना ही तुम्हारा धर्म है। कहानी कहती है: मालिककी जल्दबाज़ी पर रजिस्टरके सफ़े पर मैंने अपनी रज़ामन्दीके दस्तख़त तो कर दिये हैं लेकिन आज अपने हजारों पाठकोंके सामने खड़ी होकर मैं उसे अस्वीकार करना चाहती हूँ।

अतएव मालिक कहते हैं: तीन पुरुषोंके तीन तोरणवाले मार्गसे कहानी चलती चली आएगी, यह मेरा एक ख़्याल भर था। कहानीका यह चलना कुछ भी प्रमाणित करनेके लिए नहीं है: केवल भ्रमण

ही इसका उद्देश्य है। लिहाज़ा उम्मीद करता हूँ कि इस नामको त्यागनेसे मेरे हक़का दस्तावेज़ घाटेमें नहीं पड़ेगा।

अतएव सब लोगोंके सामने आज मेरी कहानी अपना नाम खोने जा रही है। हम 'तीन बार वाचा हारने' के सत्यमें विश्वास करते हैं। 'विचित्रा' के सफों पर दो बार वाचा हारी जा चुकी है सही; लेकिन इस तीसरी बार हारनेके समय हथेलीसे मुँह बन्द कर दिया जाता है।

एक दूसरा नाम मैंने तय किया है। वह इतना निर्विशेष है कि बिना-विचारे किसी भी कहानी पर घटाया जा सकता है। सरकारी चीज़ोंकी तरह इस नाममें भी कोई चमत्कारिता नहीं है। सो नहीं सही। मैंने जापानमें देखा है कि तलवारके फलक पर जब कारीगर अपनी दस्तकारीका सारा आनंद निःशेष ढाल देता है, तब तलवारके म्यानको वह बिलकुल ही निरलंकार छोड़ रखता है। कहानी स्वयं ही अपना परिचय देनेका साहस रखे: नामको वह ऊँचे सुरसे आगे-आगे नकीबगिरी करनेके लिए न भेजे! यही उचित है।

"तीन-पुरुष" नाम लुप्त करके मेरी कहानीका नाम "योगायोग" दिया जाता है।

"किन्ता" जहाज
सियामके रास्ते पर
४ अक्तूबर १९२७

अनु०—मोहनलाल वाजपेयी

कुमुदिनी

[१]

आज असाढ़ बदी सप्तमी—अविनाश घोषालका जन्म-दिन है। आज वे पूरे बत्तीस वर्षके हो गये। सवेरेसे बधाईके तारों और फूलोंके गुलदस्तोंका ताँता बँध गया है।

कहानीका यहीं आरम्भ है; पर आरम्भके पहले भी प्रारम्भ है। दीआ जलाते हैं शामको, पर उससे पहले सवेरे ही लोग बत्ती बटकर रख लेते हैं।

इस कहानीके पौराणिक युगकी खोज करनेसे मालूम होता है कि घोपालवंश किसी समय सुन्दरवनकी तरफ निवास करता था, उसके बाद हुगली जिलेके नूरनगरमें आया। ये लोग बाहरसे पुर्तगीजोंके मारे चले आये या भीतरसे समाजके धक्कोंके कारण, यह बात ठीक मालूम नहीं। जो लोग जानपर खेलकर पुराने घरको छोड़ सकते हैं, शीघ्रतासे नये घर बनाने की शक्ति भी उनमें पाई जाती है। घोषालवंशके ऐतिहासिक युगके प्रारम्भमें, उनके यहाँ

काफ़ी ज़मीन-जायदाद, गाय-बछड़े, नौकर-चाकर, पर्व-त्यौहार, ब्याह-गौने दिखाई देते हैं। अब भी उनके पुराने गाँव सिया-कुलीमें कम-से-कम दस बीघेमें फैला हुआ 'घोषाल-ताल' अपने काईके घूँघटके भीतरसे पंक-रुद्धकण्ठसे उनके अतीत गौरवकी साक्षी दे रहा है। आज उस तालमें बस नाम ही उनका रह गया है, पानी चटर्जी ज़मींदारोंका है। आखिर, एक दिन कैसे उन्हें अपनी पैतृक महिमाको तिलांजलि देनी पड़ी, यह जान लेना भी आवश्यक है।

इनके इतिहासके बीचके परिच्छेदोंमें देखते हैं कि चटर्जी ज़मींदारोंसे इनकी रार छिड़ी है। अबकी झगड़ा ज़मीन-जायदाद-पर नहीं, बल्कि देवीकी पूजापर ही चल पड़ा था। घोषाल-परिवारने स्पर्धासे चटर्जियोंसे दो हाथ ऊँची प्रतिमा बनवाई थी। चटर्जी-वंशने भी इसका जवाब दिया। रात-ही-रातमें विसर्जनकी सड़क-पर बीच-बीचमें कई ऐसे नापके तोरण खड़े करवा दिये कि जिनमें घोषालोंकी प्रतिमाका सिर ही अटक जाय! ऊँची प्रतिमा-वाले तोरण तोड़ने निकले, नीची प्रतिमा-वाले उनके सिर फोड़ने दौड़े! फल यह हुआ कि देवीने अबकी बार और वर्षोंकी अपेक्षा बहुत ज़्यादा रक्त वसूल किया। खून-ख़राबी हुई, मामला चला। उस मामलेका अन्त हुआ तब, जब घोषाल-परिवार सत्यानाशके किनारे तक पहुँच चुका था।

आग बुझ गई, ईंधन भी न रहा, सब कुछ जलकर भस्म हो गया। चटर्जी-कुलकी गृहलक्ष्मीका मुँह फीका पड़ गया। मजबूरी हालतमें सन्धि हो सकती है, पर उसमें शान्ति नहीं होती। एक खड़ा है और एक पराजित होकर नीचे पड़ा है—लेकिन. धधक दोनोंके भीतर रही है। चटर्जी-कुलने घोषालोंपर अन्तिम वार किया सामाजिक खंजरसे! अफ़वाह फैला दी कि 'असलमें थे ये

भंगज-ब्राह्मण, यहाँ आकर बात दबा-दुबू दी है; कैंचुवा बन गया है सर्प !' जिन्होंने आवाज़ उठाई, उनके गलेमें जोर था रुपयोंका। स्मृतिरत्न पण्डितोंके मुहल्लेमें भी उनके अपकीर्तनके लिए अनुस्वार-विसर्गवाले ढोल-पीटनेवाले जुट गये। कलंक-भंजनके लिये उपयुक्त प्रमाण अथवा दक्षिणा देना उस समय घोषालोंकी शक्ति के बाहरकी बात थी। क्या करते, चण्डीमण्डप-विहारी पण्डित-समाजके उपद्रवसे बेचारोंको दूसरी बार फिर घर-द्वार छोड़ना पड़ा। रजबपुरमें मामूली झोंपड़ी बनाकर रहने लगे।

जो मारते हैं, वे भूल जाते हैं; पर जो मार खाते हैं, वे सहजमें नहीं भूल सकते। हाथकी लाठी गिर जानेपर वे मनकी लाठी घुमाते रहते हैं। बहुत दिनोंसे हाथ उनके काम नहीं देते, इसीलिए मानसिक लाठी उनकी वंश-परम्परासे चलती आ रही है। बीच-बीचमें उन्होंने चटर्जियोंके किस तरह होश ठिकाने किये थे, झूठ-सच मिलाकर उसके क़िस्से अब भी उनके घरमें काफी भरे पड़े हैं। फूँसकी झोंपड़ीमें बैठकर बरसातकी रातोंमें लड़के-बाले अब भी उन्हें मुँह-बाये सुना करते हैं। चटर्जियोंका नामी दासू सरदार रातको जब सो रहा था, तब बीस-पचीस लठैत जाकर उसे कैसे पकड़ लाये और घोषालोंकी कचहरीमें ले जाकर कैसे उसे ग़ायब कर दिया, इसका क़िस्सा आज लगभग सौ वर्षसे घोषालोंके परिवारमें चला आ रहा है। पुलिस जब खानातलाशी लेने आई, तब नायब भुवनमोहनने झट कह दिया—'हाँ, वह आया तो था कचहरीमें, अपने कामसे; काबूमें पाकर सालेकी कुछ बेइज्जती भी की गई थी। सुनते हैं, इसी रंजसे बैरागी होकर घरसे चल दिया है !' हाकिमको कुछ सन्देह नहीं हुआ। भुवनने कहा—'हुजूर, इसी सालके अन्दर अगर मैंने उसे न ढूँढ़ निकाला, तो मेरा नाम भुवनमोहन ही नहीं।' न मालूम कहाँसे एक दासूके क़दका गुण्डा खोज निकाला,—भेज दिया उसे सीधा

ढाकाको। उसने चुराया था एक लोटा, थानेमें नाम लिखाया दासू मण्डल। हुई महीने-भरकी जेल। जिस दिन जेलसे छूटा, भुवनने उसी दिन मजिस्ट्रेटीमें खबर दी कि दासू सरदार ढाका-की जेलमें है! तलाश करनेपर पता लगा कि दासू जेलमें था तो सही, पर अपनी दुलाई जेलके बाहरके मैदानमें फेंककर चला गया है। साबित हुआ कि वह दुलाई दासू सरदारकी ही है। उसके बाद वह कहाँ गया, यह बतलानेकी जिम्मेदारी भुवनपर तो थी नहीं?

ये कहानियाँ दिवालिये वर्तमानकी पुराने ज़मानेकी 'चेक' हैं। गौरवके दिन बीत चुके हैं, इसीलिये गौरवका पुरातत्त्व बिलकुल पोला होनेसे इतना ज्यादा बजता है।

कुछ भी हो, जैसे तेल निबटता है, वैसे ही दीपक बुझता है, वैसे ही किसी समय रात भी बीत जाती है। घोपाल-परिवारमें सूर्योदय दिखलाई दिया अविनाशके बाप मधुसूदनकी ज़बरदस्त तक़दीरसे।

[२]

मधुसूदनके बाप आनन्द घोषाल रजबपुरके आढ़तियाके यहाँ मुनीम थे। मोटा खाना, मोटा पहनना, इसीमें गुज़र करते थे। घरकी स्त्रियोंके हाथोंमें थे मामूली कड़े, और पुरुषोंके गलेमें रक्षामन्त्रके पीतलके ताबीज और बेलके गोंदसे मँजे हुए खूब मोटे-मोटे जनेऊ। ब्राह्मणकी मान-मर्यादाका प्रमाण क्षीण हो जानेसे जनेऊ ही ब्राह्मणत्वका प्रमाण रह गया था।

गाँवके स्कूलमें मधुसूदनने प्राथमिक शिक्षा पाई। साथ-साथ निःशुल्क शिक्षा पाई नदीके किनारे, आढ़तके सामनेवाले चौकमें और सनकी गाँठोंपर बैठकर। गाँवके किसान, व्यापारी, खरीददार

और गाड़ीवानोंकी भीड़में ही वह छुट्टी मनाता था,—बाजारमें जहाँ टीनके छप्परोंमें सजी हुई गुड़की गागरें, तम्बाकूकी गाँठें, मट्टीके तेलके कनस्तर, सरसोंके ढेर, चना-मटरके बोरे, बड़े-बड़े तौलनेके काँटे और बाँट रखे रहते हैं, वहीं घूम-फिरकर उसे बगीचेमें टहलनेका आनन्द मिलता था।

बापने सोचा कि लड़का आगे चलकर कुछ बनेगा ज़रूर। ठेल-ठालकर दो-चार परीक्षा पास करा देनेसे, स्कूल-मास्टरीसे लेकर मुहर्रिरी या वकालत तक भले-आदमियोंके जो कुछ मोक्ष-तीर्थ हैं, उनमेंसे किसी-न-किसीमें मधु भिड़ ही जायगा। अन्य तीन लड़कोंकी भाग्यरेखा गुमाश्तागीरीमें ही छकड़ा-गाड़ीकी तरह अटककर रह गई। उनमेंसे कोई तो आढ़तियेकी गद्दीमें जा डटा, और कोई तालुक़ेदारके दफ़्तरमें कानमें क़लम खोंसकर उम्मेदवारी में बैठ गया। आनन्द घोषालके क्षीण 'सर्वस्व' के भरोसे मधुसूदनने कमरा लिया कलकत्तेकी एक मेसमें।

अध्यापकोंको आशा थी कि परीक्षामें पास होकर यह लड़का कालेजका नाम रखेगा। इतनेमें बाप गये मर। पढ़नेकी किताबें, मय नोटबुकोंके, बेचकर मधुने प्रतीज्ञा कर ली कि अब वह रोज़गार ही करेगा। छात्रोंमें सेकेन्ड-हैन्ड किताबें बेचकर रोज़गार शुरू हुआ। माँ रोती थी—उसे बड़ा भरोसा था, परीक्षा पासके रास्तेसे लड़का घुसेगा 'भद्र' श्रेणीके व्यूहमें, और उसके बाद घोषाल-वंशदंडकी चोटीपर उड़ेगी क्लार्की-वृत्तिकी जयपताका।

बचपनसे ही, मधुसूदन जैसे माल जाँचनेमें पक्का था, अपने साथी मित्र छाँट लेनेमें भी वह उतना ही होशियार था। कभी धोखेमें नहीं आया, और न ठगा गया। उसका प्रधान सहाध्यायी मित्र था कन्हैयालाल गुप्त। उसके पुरखा बड़े-बड़े सौदागरोंके

यहाँ गुमाश्तागीरी करते आये हैं। बाप नामी केरोसिन-कम्पनीके आफिसमें उच्च पदपर काम करते हैं।

भाग्यसे उन्हींकी लड़कीका विवाह था। मधुसूदन कमरसे दुपट्टा बाँधकर काममें जुट गया। छप्पर छावना, फूल-पत्तियोंसे मण्डप सजाना, छापेखानेमें खड़े रहकर सुनहली स्याहीमें चिट्ठियाँ छपाना, चौकी कार्पेट वगैरह भाड़ेपर लाना, द्वारपर रहकर स्वागत करना, परोसना वगैरह, कोई भी काम बाकी न छोड़ा। इस मौक़ेपर उसने ऐसी बुद्धिमानी और तजुरबेका परिचय दिया कि रजनी बाबू बहुत ही खुश हुए। वे कामके आदमीको पहचानते थे, समझ गये कि यह लड़का तरक्की करेगा। अपनी गाँठसे रुपये डिपोज़िट कराके मधुको रजबपुरमें कैरोसिन-तेलकी ऐजेन्सी दिलवा दी।

सौभाग्यकी दौड़ शुरू हुई; इस दौड़में कैरोसिनका डिपो बेचारा न जाने कहाँ पीछे छूट गया। जमाके खानेकी मोटी-मोटी रक़मोंपर पैर फेंकता हुआ व्यापार सन्नाता हुआ आगे बढ़ा—गलीसे बड़ी सड़कपर, खुदरासे थोकमें, दूकानसे आफिस-में, उद्योगपर्वसे स्वर्गारोहणमें। सबने कहा—"तक़दीर इसका नाम है।" अर्थात्, पूर्वजन्मकी स्टीमसे ही इस जन्मकी गाड़ी चल रही है। मधुसूदन खुद समझता था कि उसे ठगनेमें भाग्यने कुछ कोर-कसर न रखी थी, सिर्फ हिसाबमें वह भूला नहीं, इसी वजहसे जीवनके परीक्षाफलमें 'क्रास-मार्क' (फेलका निशान) नहीं पड़ा,—हिसाबकी कमज़ोरीसे जो फेल होनेमें मजबूत हैं, परीक्षक-के पक्षपातपर वे ही कटाक्ष किया करते हैं।

मधुसूदनको ग़रूर है। अपनी अवस्थाके बारेमें वह किसीसे बातचीत नहीं करता; पर अन्दाजसे इतना तो मालूम होता है कि सूखी नदीमें बाढ़ आई है। बंगालमें, ऐसी हालतमें लोग सहज

ही ब्याहकी चिन्ता करते हैं, अपने इस जीवनकी सम्पत्तिसे भोग-को वंशावलीके मार्गसे मृत्युके बादके भविष्यमें प्रसारित करनेकी इच्छा उनके हृदयमें प्रबल होती है। कन्यापक्ष-वाले मधुको उत्साह देनेमें कसर नहीं रखते थे। मधुसूदन कहता—'पहले एक पेट तो पूरा भर जाने दो, फिर दूसरे पेटका भार सिरपर लिया जा सकता है।' इससे मालूम होता है, मधुसूदनका हृदय चाहे जैसा हो, पर पेट छोटा नहीं है।

इसी समय मधुसूदनकी होशियारीसे रजबपुरके सनने अपना नाम पैदा कर लिया। सहसा मधुसूदनने नदीके किनारेकी बहुतसी ज़मीन खरीद ली, तब ज़मीन सस्ती थी। बीसियों ईंटके पजाये जलवाये गये, नेपालसे बड़ी-बड़ी साखूकी लकड़ियाँ मँगाई गईं, सिलहटसे चूना आया और कलकत्तेसे मालगाड़ीमें लदकर कर-केटकी टीनें। बाज़ारवाले दंग रह गये! कहने लगे—"लो भला! पासमें अब तरी हो गई है, वह जाय कहाँ! अब बद-हज़मीकी पारी है, कारोबारका यहीं खातमा समझो!"

इस बार भी मधुसूदनके हिसाबमें ग़लती नहीं हुई। देखते-देखते रजबपुर व्यापारका एक भँवर (केन्द्र) बन गया। उसके चक्करमें दलाल भी आ जुटे, आ पहुँचा मारवाड़ियोंका झुण्ड, कुली-मजदूरोंकी आमद हुई, मिल बन गई, और चिमनीसे निकले हुए कुण्डलायित धूमकेतुने आकाशमें कालिमाका विस्तार किया।

हिसाबकी बही देखे बिना ही मधुसूदनकी महिमा अब दूरसे ही बिना चश्मेके मालूम देने लगी। अकेला सारे गंजका मालिक है, चहारदीवारीसे घिरी हुई दुमंजली इमारत है, गेटपर पत्थर जड़ा हुआ है—लिखा है "मधुचक्र"। यह नाम उसके कालेजके भूतपूर्व संस्कृत अध्यापकका रखा हुआ है। मधुसूदनपर अब वे यकायक पहलेसे कहीं ज़्यादा स्नेह करने लगे हैं।

अब विधवा माँ ने आकर डरते-डरते कहा—"बेटा, भगवान् न जाने कब मिट्टी समेट ले, बहूका मुँह तो देख जाती ?"

मधुने चेहरा गम्भीर बनाकर संक्षेपमें उत्तर दिया—"विवाह करनेमें भी समय नष्ट होता है, और ब्याहके बाद भी। मुझे इतनी फुरसत कहाँ है ?"

ज्यादा कहा-सुनी करनेकी हिम्मत उसकी माँको भी नहीं; क्योंकि समयका भी बजार-भाव है। सभी जानते हैं कि मधुसूदनकी ज़बान एक है, जो कह दिया सो कह दिया।

और भी कुछ दिन बीते। उन्नतिके ज्वारमें कारोबारका दफ़्तर गाँवसे बहकर कलकत्ते चला आया। नाती-नातनियोंके दर्शन-सुख-सम्बन्धी आशाको छोड़कर माँ इस दुनियासे चल दी। घोषाल-कम्पनीका नाम आज देश-विदेशोंमें फैला हुआ है। उनका व्यापार अब पक्की बुनियादकी पुरानी विलायती कम्पनीके मुक़ाबलेमें चलता है, हर विभागमें अंगरेज़ मैनेजर हैं !

मधुसूदनने अबकी स्वयं ही कहा—"ब्याहकी फुरसत अब मिली।" कन्याके बाज़ारमें उसकी क्रेडिट सबसे ऊँची है। बहुत बड़े अभिमानी खानदानोंके मान-भंजन करनेकी भी शक्ति उसमें आ गई है। चारों तरफसे अनेकों कुलवती, रूपवती, गुणवती, धनवती, विद्यावती कुमारियोंकी खबरें आने लगीं। मधुसूदनने आँखें चढ़ा- कर कहा—"उन्हीं चटर्जियोंके घरकी लड़की चाहिये।"

चोट खाया हुआ वंश चोट खाये हुए बाघकी तरह भयंकर होता है।

[३]

अब कन्या-पक्षका हाल सुनो।

नूरनगरके चटर्जियोंकी अवस्था अब अच्छी नहीं है। ऐश्वर्य्यका बाँध टूट चला है। छः आनेके साझिदार जायदादका बटवारा कराके अलग हो गये, अब वे बाहरसे लाठी लिये दस-आनेवालोंकी सीमा हड़पते फिरते हैं। इसके सिवा, राधाकान्तजी की सेवाके अधिकारको लेकर दस और छहमें जितनी ही सूक्ष्म-रूपसे बटवारेकी कोशिश चली, उतनी ही उसकी सम्पत्ति स्थूल-रूपसे वकील और मुख्तारोंके आँगनमें तीन-तेरह होकर बिखर गई, मुहर्रिर भी उससे वंचित न रहे। नूरनगरका वह प्रताप नहीं रहा, न आमद ही रही; पर खर्च बढ़ गया है चौगुना। नौ रुपये सैकड़ेकी ब्याजकी नौ-पाँववाली मकड़ीने ज़मींदारोंके चारों ओर अपना जाल बिछा दिया है।

चटर्जियोंके परिवारमें दो भाई हैं, और पाँच बहन। कन्या-धिक्य अपराधका जुर्माना अब भी पटा नहीं है। चार बहनोंका ब्याह कुलीनोंके घर बापके सामने ही हो गया था। इनकी दौलत की सूरत तो है इस ज़मानेकी, और ख्याति है पुराने ज़मानेकी! दामादोंको दहेज देना पड़ा कुलीनताकी मोटी रकमोंसे और पोली ख्यातिके लम्बे नापसे। इसी वजहसे नौ-पर-सेन्टके डोरेमें गुँथे हुए कर्ज़के फंदेमें बारह-पर-सेन्टकी गाँठ पड़ गई। छोटा भाई कमर कसकर उठा, बोला—"विलायत जाकर बैरिस्टर हो जाऊँ, रोजगार किये बिना बनेगी नहीं।" वह तो गया विलायत, बड़े भाई विप्रदासके सिरपर गृहस्थीका भार आ पड़ा।

इसी बीचमें घोषाल और चटर्जियोंके भाग्यकी पतंगमें परस्परकी खींचातानीसे फिरसे पेच पड़ गया। इतिहास भी सुन लो।

बड़ेबाज़ारके तनसुखदास हलवाईका इनपर था भारी कर्ज़। बराबर व्याज दे रहे थे, कोई बात नहीं। इतनेमें पूजाकी छुट्टियोंमें विप्रदासका सहपाठी अमूल्यधन आ धमका, आत्मीयता दिखानेके लिए! वह था बड़े अटर्नी-आफिसका आर्टिकिल्ड-हेड-क्लार्क। इस चश्मेबाज़ युवकने नूरनगरकी हालत खूब अच्छी तरहसे देख ली। उसका कलकत्ता लौटना हुआ और तनसुखदासका रुपया माँगना। बोला—"चीनीका नया काम खोला है, रुपयेकी सख़्त ज़रूरत है।"

विप्रदास तक़दीर ठोंककर बैठ गये।

उस संकटके समयमें ही चटर्जी और घोषाल इन दोनों नामोंमें दूसरी बार द्वन्द्वसमास हो गया। उसके पहले ही सरकार-बहादुरसे मधुसूदनको 'राजा'का खिताब मिल चुका था। छात्र-बन्धु अमूल्यधनने आकर कहा—"नये राजा इस समय खुश-मिज़ाज हैं, इस मौक़ेपर उनसे चाहे जितना कर्ज़ मिल सकता है।" सो ही मिला,—चटर्जियोंका तमाम फुटकर कर्ज़ इकट्ठा करके ग्यारह लाख रुपया, सात-पर-सेन्टकी ब्याजपर। विप्रदासके जीमें जी आ गया।

कुमुदिनी उनकी अन्तिम और अवशिष्ट बहन है, वैसी ही उनकी पूँजीकी आज अन्तिम और अविशिष्ट दशा है। दहेज जुटाने और ढूँढ़नेकी बात सोचते ही आतंक छा जाता है। देखनेमें वह सुन्दरी है, लम्बी छरछरे बदनकी, जैसे रजनीगन्धाका पुष्पदण्ड हो, आँखें बड़ी-बड़ी न होनेपर भी घोर काली हैं, और नाक ऐसी मानो फूलकी पँखड़ियोंसे बनी हो। रंग है शंखकी तरह चिकना गोरा; सुन्दर सुडौल हाथ हैं, उन हाथोंकी सेवाका पाना कमलाका बरदान है, कृतज्ञ होकर ग्रहण करना चाहिए। सारे मुँहपर एक वेदनामय सकरुण धैर्यका भाव है।

कुमुदिनी अपने लिए आप संकुचित है। उसकी धारणा है कि वह अभागिन है। वह जानती है कि पुरुष लोग गृहस्थी चलाते हैं अपनी शक्तिसे, और स्त्रियाँ लक्ष्मीको घरमें लाती हैं अपने भाग्यके जोरसे। उससे यह हो न सका। जबसे उसकी समझनेकी उमर हुई है, तभीसे वह चारों तरफ दुर्भाग्यकी पाप-दृष्टि ही देख रही है। और परिवारपर सवार है उसके कुँआरपनका भारी पत्थर; उसका जितना बड़ा दुःख है, उतना ही बड़ा अपमान। तक़दीरपर हाथ दे मारनेके सिवा कुछ कर भी नहीं सकती। तद्बीरका मार्ग विधाताने लड़कियोंको दिखाया ही नहीं, दी है सिर्फ एक व्यथा सहनेकी शक्ति। क्या कोई असम्भव बात सम्भव नहीं हो सकती? किसी एक देवताका वर, किसी यक्षका धन, पूर्वजन्ममें दिये हुए किसी एक बचे-खुचे कर्ज़की वसूली? कुछ भी तो मिले!

किसी-किसी दिन रातको बिछौनेसे उठकर, बग़ीचेके हिलते हुए झाऊके पेड़ोंकी चोटीकी तरफ़ ताकती रहती है। मन-ही-मन कहती, 'कहाँ हो मेरे राजपुत्र! कहाँ है तुम्हारा सात राजाओंका धन? आकर बचाओ मेरे भाइयोंको, मैं सदा तुम्हारी दासी बनकर रहूँगी।'

वंशकी दुर्गतिके लिए अपनेको वह जितनी ही अपराधिनी बनाती है, उतना ही हृदयके सुधापात्रको उँड़ेलकर भाइयोंको अपना स्नेह देती है,—कठोर दुःखसे निचोड़ा हुआ उसका यह स्नेह है। कुमुदके प्रति अपना कर्तव्य न पाल सकनेके कारण भाइयोंने भी उसे बड़ी व्यथाके साथ प्रेमसे बाँध रखा है। इस पितृ-मातृहीन बालिकाको भगवानने जिस स्नेहकी प्राप्तिसे वंचित रखा है, भाई उसकी पूर्तिके लिये सदा उत्सुक रहते हैं। वह तो चाँदकी चाँदनीका टुकड़ा है, दैन्यके अन्धकारको उस अकेलीने

मधुर कर रखा है, कभी-कभी जब वह अपनेको दुर्भाग्यका बाहन समझकर धिक्कारती है, भाई विप्रदास हँसकर कहता है—"कुमू, तू खुद ही हम लोगोंका सौभाग्य है, तुझे पाये बिना घरमें लक्ष्मी रहती कहाँ ?"

कुमुदिनीने घर ही में पढ़ना-लिखना सीखा है। बाहरका वह कुछ जानती ही नहीं। पुराने-नये दोनों समयके उजेले-अँधेरेमें उसका निवास है। उसकी दुनिया अस्पष्ट है—वहाँ राज्य करती हैं सिद्धेश्वरी, गन्धेश्वरी, घेंटू और षष्ठीदेवी; किसी विशेष दिनमें वहाँ चन्द्रमा देखना मना है; शंख बजाकर वहाँ ग्रहणकी कुदृष्टि भगाई जाती है; अम्बुवाचीके दिन दूध पीनेसे वहाँ सर्पका भय दूर होता है; मन्त्र पढ़कर, बकराकी मन्नत मानकर, सुपारी अरवा-चावल और पाँच पैसेकी सिन्नी देकर, गंडा और ताबीज बाँधकर उस दुनियाका शुभ-अशुभके साथ कारोबार होता है; स्वस्त्ययनके जोरसे भाग्य-संशोधनकी आशा—वह आशा हजार बार व्यर्थ होती है। प्रत्यक्ष देखनेमें तो यह आता है कि बहुधा शुभलग्नकी शाखामें शुभफल नहीं लगते, तो भी वास्तविकतामें इतनी शक्ति नहीं कि प्रमाणों द्वारा वह स्वप्नका मोह दूर कर सके। स्वप्नकी दुनियामें विचार नहीं चलता, सिर्फ चलता है उसे मानकर चलना। इस दुनियामें दैवके क्षेत्रमें युक्तिकी सुसंगति, बुद्धिका कर्तृत्व और अच्छे-बुरेका नित्यत्त्व न होनेसे ही कुमुदिनीके मुँहपर ऐसी करुणा है। वह समझती है, बिना अपराधके ही वह लांछित है। आठ वर्ष हुए, उस लांछनाको उसने बिलकुल अपनी ही समझकर अपनाया था—वह थी उसके पिताकी मृत्युकी दुर्घटना।

[४]

पुराने धनिकोंके घरमें पुरातन काल जिस क़िलेमें वास करता है, उसकी पक्की चिनाई होती है। बहुतसी ड्योढ़ियाँ पार करके तब कहीं नवीन काल वहाँ धँसने पाता है। जो लोग वहाँ रहते हैं, नये युग तक आ पहुँचनेमें वे बहुत 'लेट' (देर) हो जाते हैं। विप्रदासके बाप मुकुन्दलाल भी सरपट दौड़ते हुए नवीन युगको नहीं पकड़ सके।

उनका लम्बा गोरा शरीर है, घुँघराले बाल हैं, बड़ी-बड़ी खिंची हुई आँखोंमें अप्रतिहत प्रभुत्वकी दृष्टि है। भारी आवाज़से से जब किसीको पुकारते हैं, तो नौकर-चाकरोंकी छाती धड़कने लगती है। यद्यपि पहलवान रखकर नियमसे कुश्ती लड़नेका अभ्यास है, देहमें ताकत भी कम नहीं; पर फिर भी उनके सुकुमार शरीरमें श्रमका चिह्न तक नहीं है। पहनावमें चुन्नटदार महीन तनज़ेबका कुरता है, ढाकेकी धोती है जिसकी बड़े यत्नसे चुनी-हुई लाँग ज़मीनसे लग रही है, इस्ताम्बूल इत्रसे सुगन्धित वायु उनके आसन्न आगमनकी खबर पहले ही से देती है। सोनेका पनबट्टा हाथमें लिये खानसामा पीछे-पीछे है, दरवाज़ेके पास हर-वक्त हाज़िर तग़मा लगाये और चपरास डाले अरदली है। ड्योढ़ीपर वृद्ध चन्द्रभान जमादार तम्बाकू बनाने और भाँग छाननेकी छुट्टीमें बेञ्चपर बैठा हुआ अपनी लम्बी दाढ़ीको दो भागोंमें विभक्त कर बार-बार उसपर हाथ फेरकर कानोंसे बाँधता रहता है, और उसके नीचके दरवान तलवार हाथमें लिये पहरा देते हैं। ड्योढ़ीकी दीवालपर अनेक तरहकी ढालें, बाँकी तलवारें बहुत दिनों की पुरानी बन्दूकें, बल्लम और बरछे लटक रहे हैं। बैठकमें मुकुन्दलाल बैठते हैं गद्दीपर, पीठके पास रहता है मसनद। पारिषद और मुसाहिब लोग नीचे बैठते हैं—सामने ही, दाएँ-बाएँ दोनों तरफ। हुक्का-बरदार इस बात से वाक़िफ है कि

उनमें किनका सम्मान कौनसे हुक्केसे अक्षुण्ण रहता है—जड़ैमा, ग़ैरजड़ैमा या सादेसे। मालिक साहबके लिए बड़ा-भारी नलीदार अलबेला है—गुलाबजलकी सुगंधसे सुगन्धित !

मकानके और एक हिस्सेमें विलायती बैठक है; वहाँ अठारहवीं सदीके विलायती असबाब हैं। सामने ही बड़ा भारी एक आईना है, जिसके काँच में काला दाग़ पड़ गया है; उसके गिल्टी किये हुए फ्रेमके दोनों तरफ दो पंखवाली परियोंकी मूर्त्तियाँ हैं, जिनके हाथोंमें बत्तीदान लगा हुआ है। उसके नीचे टेबुलपर सोनेके पानीसे चित्रित काले पत्थरकी घड़ी और कितने ही विलायती काँचके खिलौने रखे हैं। खड़ी पीठवाली चौकी, सोफ़ा, छतकी कड़ियोंमें लटकते हुए झाड़-फानूस सब हालैण्ड-क्लाथसे ढके हुए हैं। दीवालों पर पूर्वपुरुषोंके तैलचित्र टँगे हैं, और उनके साथ वंशके दो-एक मुरब्बी राजपुरुषोंकी तसवीर। घर-भरमें विलायती कार्पेट बिछा हुआ है, उसपर चटकते हुए गहरे रंगके मोटे-मोटे फूल बने हुए हैं। विशेष क्रिया-कर्मके लिए—ज़िलेके साहब-सूबोंके निमन्त्रण के उपलक्षमें—इस घरका घूँघट खोला जाता है। मकान-भरमें यही एक आधुनिक ढङ्गका कमरा है, लेकिन मालूम ऐसा होता है कि यही सबसे पुराना भूतोंवाला कमरा है, और वह भी अव्यवहारकी बन्द हवाके कारण दम घोंटनेवाला और दैनिक जीवन-यात्रासे सम्बन्ध-रहित मूक—गूँगा।

मुकुन्दलालमें जो शौकीनी है, वह है उस ज़मानेके अदब-क़ायदेका आवश्यक अंग। उसके अन्दर जो निर्भीक व्ययाधिक्य है, उसीमें धनका सम्मान है; अर्थात् धन बोझ बनकर सिरपर नहीं लदा, पादपीठ बनकर पैरोंके नीचे है! इनकी शौकीनीके आम-दरबारमें दान-दक्षिणा और ख़ास दरबारमें भोग विलास—

दोनों ही खूब चुस्त मापके हैं। एक ओर आश्रित वात्सल्यमें जैसी अकृपणता है, दूसरी ओर औद्धत्य दमनके लिए वैसा ही अबाध अधैर्य है। एक अचानक-धनी पड़ोसीने किसी भारी कसूरपर मालिक साहबके बग़ीचेके मालीके लड़केका कान ऐंठ दिया था; उस धनीको सबक सिखानेमें जितना खर्च हुआ है, उतना खर्च आजकलके ज़माने में अपने लड़केको कालेजके पार उतारनेमें भी नहीं होता। मालीके लड़केकी भी लापरवाही नहीं की गई थी। मारे चाबुकोंके उसे खाटपर डाल दिया गया। गुस्सेकी धुनमें चाबुकोंकी गिनती बढ़ जानेसे लड़केकी तरक्की हो गई। सरकारी खर्चसे पढ़-लिखकर वह आज मुख्तारका काम कर रहा है।

पुराने ज़मानेके धनवानोंकी प्रथानुसार मुकुन्दलालका जीवन दो भागोंमें विभक्त है। एक भागमें गिरस्ती है, दूसरेमें दिल्लगी; अर्थात् एक में दश-कर्म हैं और दूसरेमें एकादश-अकर्म। घरमें हैं इष्टदेवता और घरकी मालकिन उनकी पत्नी। वहाँ है पूजा-अर्चना, अतिथि-सेवा, पर्व-उत्सव, व्रत-उपवास, सदावर्त, ब्राह्मण-भोजन, पाड़-पड़ोसी और गुरु-पुरोहित। दिल्लगी-विभाग गृह-सीमाके बाहर ही है। वहाँ नवाबी ज़माना और महफिली ठाट-बाट हैं। यहाँपर प्रत्यन्त:पुरवासिनियों की आवा-जाई बनी रहती है। उनके संसर्गको उस ज़मानेके धनिक लोग सोहबत सीखनेका उपाय समझते थे। दोनों परस्पर विरुद्ध वायुमण्डलके और दो घरोंमें रहनेवाले ग्रह-उपग्रहोंके कारण गृहिणियोंको बहुत-कुछ सहना पड़ता है।

मुकुन्दलालकी स्त्री नन्दरानी अभिमानिनी हैं, सहन करनेमें वे पूर्ण अभ्यस्त न हो सकीं। उसका कारण था। वे निश्चित समझती थीं कि बाहरकी ओर उनके पतिकी तानकी दौड़ कितनी ही क्यों न हो, पर उसकी टेक वे ही हैं, भीतरका प्रबल खिंचाव

उन्हींकी ओर है, इसीलिये स्वामी जब अपने प्रेमपर आप ही अन्याय करते हैं, तो उनसे वह सहा नहीं जाता। अबकी बार ऐसा ही हुआ।

[५]

रासके समय खूब धूम मची। कुछ कलकत्तेसे और कुछ ढाकेसे आमोदका सरंजाम आया। मकानके आँगनमें किसी दिन कृष्ण-लीला होती, तो किसी रोज़ कीर्तन। यहाँ औरतों और साधारण पाड़-पड़ोसियोंका जमघट होता। और बार तो तामसिक आयोजन होता था बैठकमें; अन्तःपुरवासिनियाँ—रातको उन्हें नींद नहीं, कलेजेमें काँटा-सा चुभता रहता—दरवाज़ेकी सँधमेंसे कुछ-कुछ उसका आभास ले जा सकती थीं। अबकी बार हुक्म हुआ, तवायफ़का नाच बजरेमें होगा—नदीके बहावमें।

'क्या हो रहा है'—देखने का कोई उपाय न होनेसे नन्द-रानीका मन रुद्ध-वाणीके अन्धकारमें पछाड़ खा-खाकर रोने लगा। घरका काम-काज, लोगोंको खिलाना-पिलाना और देखा-भाली, सब-कुछ प्रसन्नमुखसे ही करना पड़ता है। जिगरमें वह काँटा हिलते-डुलतेमें छिन-छिनमें चुभता है, जी हाँपने लगता है; पर किसीको मालूम तक नहीं पड़ती। उधर रह-रहकर तृप्त-कण्ठसे शब्द निकलता है—'जय हो रानी माताकी !'

आखिर रासोत्सवकी मियाद खतम हुई, मकान खाली हो गया। सिर्फ झूठी पत्तलों और सकोरोंके भग्नावशेषपर कौओं-कुत्तोंके काँव-काँव भाँव-भाँवका उत्तरकाण्ड चल रहा है। नौकरोंने नसैनी लगाकर बत्तियाँ उतार लीं, चँदोए खोल लिये। झाड़ोंकी अध-जली बत्ती और सोलाके फूलोंकी झालरोंके लिए मुहल्लेके लड़कोंने छीना-झपटी मचा दी। इस भीड़मेंसे बीच-बीचमें

तमाचोंकी आवाज़ और रोना-चिल्लाना मानो आतिशबाज़ीके 'बान'की तरह आसमान फाड़ रहा था। अन्तःपुरके आँगनसे निकलकर उच्छिष्ट भात-तरकारीकी गन्धने पवनको अम्लगन्धी बना दिया था; वहाँ सर्वत्र ही क्लान्ति, अवसाद और मलिनता थी। यह शून्यता असह्य हो उठी जब मुकुन्दलाल आज भी वापस न आये। वहाँ तक पहुँचनेका कोई उपाय न देख नन्दरानीके धैर्यका बाँध अचानक टूटकर मिट्टीमें मिल गया।

दीवानजीको बुलाकर परदेकी ओटमेंसे कहा—"उनसे कह दीजियेगा, वृन्दावनमें माके पास मुझे जाना पड़ रहा है। उनकी तबीयत ठीक नहीं है।"

दीवानजीने कुछ देर तक सिरपर हाथ फेरकर मृदुस्वरसे कहा—"मालिक साहबसे कहकर जाना ही ठीक होता, मालिक साहब आज-कलमें आ जायँगे, खबर आ गई है।"

"नहीं, अब देरी न कर सकूँगी।"

नन्दरानीको भी खबर लग गई थी, आज-कलमें आनेवाले हैं, इसीलिए तो जानेकी इतनी उतावली है। उन्हें निश्चय है कि ज़रासा रोने-धोने और फिर मना लेनेसे ही सब माफ हो जायगा। हर दफे ही ऐसा हुआ है। उपयुक्त दण्ड अपूर्ण ही रह जाता है। अबकी बार ऐसा हरगिज़ न होगा, इसीलिए दण्डकी व्यवस्था करके तुरन्त ही दण्डदाताको भागना पड़ रहा है। बिदा होनेके ठीक क्षण-भर पहले—पैर उठना नहीं चाहते—वह पलंगपर औंधी पड़कर फूट-फूटकर रोने लगीं; परन्तु जाना न रुका।

कातिकका महीना है। दिनके दो बजे हैं। धूपसे हवा गरम हो गई है। सड़कके किनारेके सीसमके पेड़ोंकी मरमराहटके साथ कभी-कभी किसी स्वरभंग कोयलकी कुहू-कुहू सुनाई पड़ जाती है। जिस सड़कसे पालकी जा रही थी, वहाँ से कच्चे

धानके खेतोंके उस पार नदी दिखाई देती थी। नन्दरानीसे रहा न गया, पालकीका दरवाज़ा खिसकाकर उस तरफ देखा, तो उस पार बजरा बँधा दीखा। मस्तूलपर पताका फहरा रही है। दूरसे मालूम हुआ, बजरेकी छतपर चिरपरिचित गोपी हरकारा बैठा है; उसकी पगड़ीका तमग़ा सूरजकी रोशनीसे चमचमा रहा है। जोरसे पालकीका दरवाज़ा बन्द कर दिया, कलेजेमें पत्थर-सा बैठ गया।

[६]

मुकुन्दलाल मानो मस्तूल-टूटे, पाल-फटे, दचोका-खाये, तूफ़ान-से टकराये जहाज़ थे, बड़े संकोचसे बन्दरगाहमें आकर लगे। कसूरके बोझसे कलेजा भारी हो गया है। आमोद-प्रमोद-की स्मृतिने मानो अति-भोजनके बादकी जूठनकी तरह मनको अरुचिसे भर दिया है। उनके इस आमोदके जो उत्साहदाता और उद्योगकर्ता थे, वे यदि इस समय उनके सामने होते, तो मारे चाबुकोंके वे उनके होश ठिकाने ला सकते थे। मन-ही-मन प्रण किया—अब कभी भी ऐसा न होने देंगे। उनके बिखरे हुए रूखे बाल, लाल-लाल आँखें और मुँहके अत्यंत शुष्क भावको देखकर किसीकी हिम्मत ही न हुई, जो मालि-किनके चले जानेकी खबर देता। मुकुन्दलाल डरते-डरते भीतर पहुँचे। "बड़ी बहू, माफ़ करो, कसूर हो गया है, अब कभी ऐसा न होगा"—यह बात मन-ही-मन कहते हुए सोनेके कमरेके दरवाज़ेके पास जाकर ठिठक गये, फिर धीरे-धीरे भीतर धँसे। मन-ही-मन निश्चय किया था कि अभिमानिनी बिछौनेपर पड़ी होगी। बिलकुल पैरोंके पास जा बैठेंगे, ऐसा सोचकर कमरेमें घुसते ही देखा—कमरा सूना है! छाती धड़क उठी। सोनेके

कमरेमें बिछौनेपर नन्दरानीको अगर देखते, तो समझ लेते कि कसूर माफ करनेके लिए मानिनी आधा रास्ता आगे बढ़ आई है; परन्तु जब देखा कि बड़ी बहू सोनेके कमरेमें नहीं है, तो मुकुन्द-लाल समझ गये कि आजका प्रायश्चित्त लम्बा होगा और कठिन भी। या तो आज रात तक बाट जोहनी पड़ेगी, या फिर और भी देर होगी। परन्तु इतनी देर तक धैर्य रखना उनके लिए असम्भव है। निश्चय किया कि पूरा दण्ड अभी सिर-माथे चढ़ाकर क्षमा वसूल किये लेते हैं, नहीं तो अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे। बहुत अबेर हो गई है, अभी तक नहाना-खाना नहीं हुआ है, ऐसी दशामें सती-साध्वीसे कैसे रहा जायगा? कमरेसे बाहर निकलकर देखा कि प्यारी महरी बरामदेके एक कोनेमें घूँघट खींचे खड़ी है। पूछा—"तेरी बड़ी बहूजी कहाँ हैं?"

उसने कहा—"वे अपनी माको देखने वृन्दावन गई हैं, परसों।"

मानो अच्छी तरह समझ न सके, गला रूँध-सा आया; फिर पूछा—"कहाँ गई हैं।"

"वृन्दावन। माजी बीमार हैं।"

मुकुन्दलाल पहले तो बरामदेको रेलिंग थामकर खड़े हो गये, फिर तेजीसे बाहरकी बैठकमें अकेले जाकर बैठ गये। मुँहसे कुछ भी बोले नहीं। किसीको पास जानेकी हिम्मत भी न पड़ी।

दीवानजीने आकर डरते-डरते कहा—"तो मा-साहबाको बुलानेके लिए आदमी भेज दूँ?"

कुछ उत्तर न दिया, सिर्फ उँगली हिलाकर मना कर दिया। दीवानजीके चले जानेपर राधू खानसामाको बुलाकर कहा—"ब्रांडी ले आ!"

सब दंग रह गये। भूकम्प जब पृथ्वीके गभीर गर्भसे सिर हिलाकर उठता है, तो जैसे उसे दबा रखनेकी कोशिश फिजूल है—निरुपाय होकर उसका उपद्रव सब सहना ही पड़ता है—यह भी वैसा ही है।

दिन-रात निर्जला आंडी उड़ने लगी। खाना-पीना तो करीब-करीब छूट ही गया। एक तो पहलेसे ही तबीयत ख़राब रहती थी, फिर चला यह ज़बर्दस्त अनियम। बस, विकारके साथ-साथ रक्त-वमन भी दिखाई दिया।

कलकत्तेसे डाक्टर आया,—रात-दिन सिरपर बरफ रखी जाने लगी।

किसीको देखते ही मुकुन्दलालको सनक सवार हो जाती, उन्हें बहम हो गया है कि सारा घर उनके विरुद्ध कोई षड्यन्त्र-सा रच रहा है! भीतर-ही-भीतर एक शिकायत घुमड़ रही थी—"इन लोगोंने जाने क्यों दिया?"

अगर उस समय कोई उनके पास जा सकता था, तो वह एक कुमुदिनी ही। वह पास जाकर बैठती; मुकुन्दलाल उसके मुँहकी तरफ शून्यदृष्टिसे देखते रहते,—मानो उसकी आँखोंमें या अन्य किसी स्थानपर उन्हें उसकी माकी समानता नज़र आती हो। कभी-कभी उसके माथेको छातीसे लगाकर चुपचाप आँखें मीचकर पड़े रहते, आँखोंके कोनोंसे पानी गिरने लगता, पर भूलकर भी कभी उससे माकी बात नहीं पूछते। इधर वृन्दावनको तार गया है। मा-साहबा कल ही आ जातीं, लेकिन सुना है कि रास्तेमें कहीं रेलकी पटरी टूट गई है।

[७]

उस दिन तृतीया थी; शामको जोरकी आँधी आई। बगीचेमें पेड़ोंकी डालियाँ तड़तड़ करके टूट-टूटकर गिरने लगीं। रह-रहकर मेहकी बौछार क्रुद्ध अधैर्यकी तरह झकझोरे दे रही है। ज्योनारके लिए जो छप्पर छाया गया था, उसकी करकेट-टीन उड़कर तालमें जा गिरी। हवा, बाण-विद्ध व्याघ्रकी तरह गों-गों करके गुर्राती हुई सारे आकाशमें जोरोंसे पूँछ फटकारती फिरती है।

सहसा हवाके एक झकोरेसे खिड़कियाँ और दरवाजे खड़-खड़कर काँप उठे। कुमुदिनीका हाथ मसककर मुकुन्दलालने कहा—"बेटी कुमू, तू क्यों डरती है, तूने तो कोई कसूर नहीं किया। वह देख दाँत पीस रहे हैं, वे मुझे मारने आ रहे हैं।"

पिताके माथेपर बरफकी पोटली फेरते हुए कुमुदिनी कहती—मारेंगे क्यों, बाबूजी ? आँधी चल रही है, अभी थम जायगी।"

"वृन्दावन ? वृन्दावन···चन्द्र···चक्रवर्ती ! पिताजीके ज़माने का पुरोहित—वह तो मर गया—भूत होकर गया है वृन्दावन ! किसने कहा वह आयेगा ?"

"बातें न करो, बाबूजी, ज़रा सो जाओ !"

"वह देख, किससे कह रहा है—खबरदार ! खबरदार !"

"वह कुछ नहीं, हवाके झकोरे पेड़ोंको झकझोर रहे हैं !"

"क्यों, उसे इतना गुस्सा क्यों ? ऐसा मैंने क्या कसूर किया है, तू ही बता बिटिया !"

"कुछ कसूर नहीं किया, बाबूजी ! ज़रा सो जाओ।"

"वृन्दा दूती ? वह तो मधु अधिकारी बनता था।"

झूठी करते क्यों निन्दा
अहो बिन्दा श्रीगोविन्दा—"*

आँखें मीचकर गुनगुनाने लगे।

"सुघर स्यामकी मधुर बाँसुरी
छीन कहूँ धरि देहुँ।
कै छाँड़ौं हौं ही बृन्दावन
अनत बसेरो लेहुँ। †

राघू, ब्रांडी ले आ!"

कुमुदिनी पिताके मुँहकी ओर झुककर बोली—"बाबूजी, यह क्या कह रहे हो?"

मुकुन्दलालने आँखें खोलकर देखा; देखते ही दाँतों तले जीभ दबाकर रह गये। हालां कि बुद्धिने बिलकुल जवाब दे दिया था, लेकिन फिर भी यह बात वे न भूले कि कुमुदिनीके सामने शराब नहीं चल सकती।

ज़रा ठहरकर फिर गाना शुरू किया।

"बृन्दावनमें कौन निठुर है, मुरली रह्यो बजाय?
कहा करूँ मैं हाय सखी री, घरमें रह्यो न जाय? ‡

इन बिखरे हुए गानोंके टुकड़ोंको सुनकर कुमुदकी छाती फटती है,—मापर गुस्सा आता है, पिताके पैरोंके नीचे सिर रखकर मानो माकी ओरसे वह माफी माँगना चाहती है।

---

* बंगलामें है:—"मिछे करो कैनो निन्दे,
ओगो बिन्दे श्रीगोविन्दे—"

† बंगलामें है:—"कार बाँशी ओइ बाजे बृन्दावोने?
सोइ लो, सोइ
घरे आमि रइबो कैमोने?"

‡ बंगलामें है:—"श्यामेर बाँशी काड़ते होबे
नोइले आमार ए बृन्दावन छाड़ते होबे।"

मुकुन्दलाल सहसा बोल उठे—"दीवानजी!"

दीवानजीके आनेपर उनसे कहा—"वह देखो, ठक्-ठक् सुनाई दे रहा है।"

दीवानजीने कहा—"हवासे दरवाजे हिल रहे हैं।"

"बुड्ढा आया है, वही बृन्दावनचन्द्र गंजी चाँदका, हाथमें लकड़ी लिये, रेशमी चद्दर गलेमें डाले! देख तो आओ। तबसे बराबर ठक्-ठक्-ठक्-ठक् कर रहा है। लकड़ी है, या खड़ाऊँ?"

रक्त-वमन कुछ देरसे शान्त था। रातके तीन बजेसे फिर शुरू हो गया। मुकुन्दलाल, बिछौनेपर चारों तरफ़ हाथ फेरकर लिभड़ी हुई ज़बानसे बोले—"बड़ी-बहू, घरमें बड़ा अन्धकार है! अब भी दिआ नहीं जलाओगी?"

बजरेसे वापस आनेके बाद मुकुन्दलालने स्त्रीके लिए यही प्रथम सम्भाषण किया और यही अन्तिम।

× × ×

बृन्दावनसे लौटकर नन्दरानी घरके दरवाज़ेके पास आते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। उन्हें उठाकर बिस्तरपर लिटाया गया। गिरस्तीमें अब उन्हें कुछ भी अच्छा न लगा। आँखोंमें आँसू बिलकुल सूख गये। लड़के-लड़कियोंमें भी सान्त्वना नहीं मिली। गुरुजीने आकर शास्त्रके श्लोक सुनाये,—मुँह फेर लिया! हाथका लोहा* भी न खोला। बोलीं—"मेरा हाथ देखकर कहा था—मेरा सुहाग कभी न मिटेगा। सो क्या झूठ हो सकता है?"

क्षेमा दूरके रिश्तेमें ननद लगती थी, आँचलसे आँसू पोंछती हुई बोली—"जो होना था हो चुका, अब घरकी तरफ़ देखो। वे

* लोहेकी एक तरहकी पतली चूड़ी जो बंगालमें सुहागकी निशानी समझी जाती है। —अ०

तो जाते वक़्त कह गये हैं,—बड़ी-बहू, घरमें क्या दिआ न जलाओगी ?"

नन्दरानी बिस्तरेसे उठकर बैठ गईं, दूरकी तरफ देखकर बोलीं—"जाऊँगी, दिआ जलाने जाऊँगी। अबकी बार देर न होगी।" कहते-कहते उनका पाण्डुवर्ण शीर्ण मुख उज्ज्वल हो उठा, मानो हाथमें दिआ लिये अभी ही जा रही हों।

सूर्य उत्तरायणको चले गये; माघका महीना आ गया। शुक्ल चतुर्दशीका दिन है। नन्दरानीने माथेपर मोटा करके सिन्दूर लगाया, लाल बनारसी साड़ी पहनी। गिरस्तीकी तरफ बिना देखे—मुँहपर हँसी लिये—चली गईं !

[८]

पिताकी मृत्युके बाद विप्रदासने देखा कि जिस पेड़पर उनका आश्रय है, उसकी जड़ कीड़े खा गये हैं। धन-दौलत और ज़मीन-ज़ायदाद कर्ज़के दलदलपर खड़ी-खड़ी—थोड़ी-थोड़ी नीचेको धसक रही है। क्रिया-कर्मको संक्षिप्त और रहन-सहनको संकुचित बिना किये उपाय नहीं। कुमुदके विवाहके बारेमें भी हर घड़ी प्रश्न उठा करता है, जिसका उत्तर देते हुए ज़बान अटकती है। आखिरकार नूरनगरसे घर-द्वार उठाना ही पड़ा। कलकत्तेमें आकर बागबाज़ारकी तरफ एक मकानमें रहने लगे।

पुराने घरमें कुमुदिनीका एक सजीव वायुमण्डल था। चारों तरफ़ फल-फूल, पूजा-घर, अनाजके खेत, गायका थान, घरके आदमी, नौकर-चाकर थे। अन्तःपुरके बगीचेमें उसने फूल चुने हैं, डालियाँ भरी हैं; नमक, मिर्च, धनियाँ, पोदीनाके साथ कच्चे बेर मिलाकर कुपथ्य बनाया है; चालता* तोड़े हैं; बैसाख-जेठकी

* एक प्रकारका खट्टा-मीठा फल।

आँधीमें आमके बाग़में आम बोने हैं। बगीचेमें पूरबकी तरफ़ धान कूटनेकी 'ढेंकीशाल'* थी, वहाँ तिलके लड्डू कूटने आदिके मौक़ोंपर औरतोंका जो शोर-गुल होता था, उसमें उसका भी कुछ हिस्सा रहा है। काईसे सब्ज़ चहारदीवारीसे घिरा हुआ घनी छायासे शीतल ताल कोयल, पिड़ुकी, दहियल और श्याम-चिरैया-की बोलियोंसे मुखरित रहता था। वहाँ वह प्रतिदिन तालमें तैरी है, लाल फूल चुने हैं, घाटपर बैठकर मधुर कल्पनाएँ की हैं, अकेले अनमने बैठकर ऊनके गुलूबन्द बुने हैं। ऋतु-ऋतुमें, मास-मासमें प्रकृतिके उत्सवके साथ-साथ मनुष्यका एक-एक पर्व बँधा हुआ है; अखतीजसे लेकर होली या वसन्तोत्सव तक न जाने कितने उत्सव हैं। मनुष्य और प्रकृति दोनोंने मिल-जुलकर सारे वर्षको मानो तरह-तरहके नक्क़ासीके कामसे बुन दिया है। सभी सुन्दर हों, सभी सुखकर हों, सो नहीं। मछलीका हिस्सा, पूजाकी बख़शीश, मालिकिन साहबाका पक्षपात, लड़कोंके झगड़ेमें अपने-अपने लड़केकी ओर लेना, इत्यादि बातोंपर भीतर-ही-भीतर ईर्ष्या या शोर-गुलके साथ अभियोग और कानाफूँसीमें दूसरोंकी निन्दा या मुक्तकण्ठसे अपवाद-घोषणा, इन सबोंकी काफी प्रचुरता है,—सबसे ज्यादा है नित्य-नैमित्तिक कार्योंकी व्यस्तताके भीतर-ही-भीतर एक उद्वेग—मालिक साहब कब क्या कर बैठें, उनकी बैठकमें न जाने कब कौनसी दुर्घटना प्रारम्भ हो जाय। यदि शुरू हो गई, तो अशान्ति दिनों-दिन बढ़ती ही जायगी। कुमुदिनीकी छाती धड़कने लगती, कोठेमें दुबककर मा रोतीं, लड़कोंके मुँह सूख जाते। इन्हीं सब शुभ और अशुभमें, सुख और दुःखमें गिरस्तीकी लम्बी यात्रा सर्वदा इधरसे उधर आन्दोलित होती रहती।

---

* बंगालमें ओखलीका काम 'ढेंकी'से लिया जाता है।

इसीके भीतरसे निकलकर कुमुदिनी कलकत्ते आई है। मानो यह एक भारी समुद्र है, पर कहाँ है प्यास बुझानेके लिये एक बूँद पानी ? देशमें आकाशकी हवामें भी पहचाना हुआ चेहरा था। ग्रामके दिगन्तमें कहीं था घना जंगल, कहीं था रेतीका टापू, नदीके पानीकी धारा, मन्दिरकी शिखर, सूना विस्तृत मैदान, जंगली झाउओंके झुंड, नदीके किनारेकी पगडंडी—इन सबने विभिन्न रेखाओं और तरह-तरहके रंगोंसे विचित्र घेरा डालकर आकाशको एक विशेष आकाश बना डाला था। वह था कुमुदिनीका अपना आकाश। सूर्यका प्रकाश भी वैसा ही एक प्रकार का विशेष प्रकाश था। तालमें, खेतोंमें, बेंतकी झाड़ियोंमें धीवरोंकी नावके कत्थई पालोंमें, बाँसकी कोमल पत्तियोंमें, कटहरके पेड़की चिकनी-घनी हरियालीमें, उस पारकी रेतीके किनारेके फीके पीलेपनमें—सबके साथ तरह-तरहसे मिलकर उस प्रकाशने एक चिर-परिचित रूप पाया था। कलकत्तेके इन सब अपरिचित मकानोंकी छतों और दीवालोंपर कठिन रेखाओंकी चाटसे तितर-बितर होकर वही हमेशाका आकाश और प्रकाश अब उसे किसी आदमीको तरह कड़ी निगाहसे देखता है। यहाँके देवताओंने भी उसे बहिष्कृत कर रखा है।

विप्रदास उसको आराम-कुरसीके पास बुलाकर कहते—"क्यों कुमुद, जी नहीं लगता ?"

कुमुदिनी हँसकर कहती—"नहीं भइया, जी लगता तो है।"

"चलोगी बहन, अजायबघर देखने ?"

"हाँ, चलूँगी।"

यह बात उसने इतने अधिक उत्साहसे कही कि विप्रदास यदि पुरुष न होते, तो समझ सकते कि उसकी यह बात स्वाभाविक नहीं थी। अजायबघर न जाना पड़े तो उसकी जान बचे।

बाहरके आदमियोंकी भीड़में निकलनेका अभ्यास न होनेसे भीड़-भभ्भड़में जानेमें उसके संकोचका अन्त नहीं। हाथ-पैर ठंडे हो जाते हैं, आँखें उठाकर अच्छी तरह देख भी नहीं सकती।

विप्रदासने उसे शतरंज खेलना सिखाया। खुद बड़े अच्छे खिलाड़ी थे। कुमुदके नये-सीखे खेलमें उन्हें बड़ा आनन्द आने लगा। अन्तमें नियमित रूपसे खेलते-खेलते कुमुदको ऐसा अच्छा अभ्यास हो गया कि विप्रदासको अब उसके साथ होशियारीसे खेलना पड़ता है। कलकत्तेमें कुमुदकी बराबरीकी कोई सखी-सहेली न होनेसे, ये दो भाई-बहन ही मानो दो भाइयोंकी तरह हो गये हैं। संस्कृत-साहित्यसे विप्रदासको बहुत प्रेम है। कुमुदने मन लगाकर उनसे व्याकरण पढ़ा है। जबसे उसने 'कुमार-सम्भव' पढ़ा, तबसे वह शिव-पूजामें शिवजीको देखने लगी—उन्हीं महातपस्वीको, जो तपस्विनी उमाकी परम तपस्याके धन थे। कुमारीके ध्यानमें उसके भावी पति पवित्रताकी दैव-ज्योतिके रूपमें प्रकाशित होकर दिखाई दिये।

विप्रदासको फोटो लेनेका शौक था। कुमुदने भी यह सीख लिया। उनमेंसे एक तसवीर उतारता, तो दूसरा उसे तय्यार करता। बन्दूक चलानेमें विप्रदास सिद्धहस्त हैं। किसी उत्सवके अवसरपर जब देश जाते तो पीछेके तालाबमें नारियल, बेलके खोपटे, अखरोट आदि बहाकर उनपर बन्दूकका निशाना लगाते; कुमुदको बुलाते—"आ न कुमुद, देख तो सही कोशिश करके।"

जिस-किसी भी विषयमें उसके भइयाकी रुचि है, उसे बड़े जतनसे कुमुदने अपना लिया है। भइयासे 'इसराज' सीखकर अन्तको उसका हाथ ऐसा सधा कि भइया कहने लगे—मैंने हार मान ली।

इस तरह, बचपनसे ही जिन भाईसे वह सबसे ज्यादा प्रेम करती आई है, कलकत्तेमें आकर उन्हें ही उनसे सबसे ज्यादा निकट पाया। कलकत्ता आना सार्थक हुआ। कुमुद स्वभावसे ही मनमें अकेली है। पर्वतवासिनी उमाके समान ही मानो वह किसी मानस-सरोवरके किनारे कल्प-तपोवनमें निवास करती है। इस तरहके जनम-अकेले आदमीके लिए ज़रूरत है मुक्त आकाश का, विस्तृत निर्जनताकी, और उसीमेंसे ऐसी किसी एक आत्मा की, जिसे वह अपने सम्पूर्ण मन-प्राणसे प्रेम कर सकता हो। पासकी गिरस्तीसे इस तरह दूर रहना स्त्रियोंके लिए स्वभावसिद्ध न होनेके कारण, वे इसे बिलकुल ही पसन्द नहीं करतीं। वे या तो इसे अहंकार समझती हैं या हृदयहीनता। इसीलिए देशमें रहते हुए भी सहेलियोंके साथ कुमुदिनीकी मित्रता न हो पाई।

पिताके सामने ही विप्रदासका विवाह क़रीब-क़रीब ठीक हो गया था। इसी समय—तेल-ताईके दो दिन पहले ही—कन्या ज्वरकी पीड़ासे मर गई। तब भाटपाड़ेमें* विप्रदासकी जन्मपत्रीकी गणनामें निकला—'विवाह-स्थानीय दुर्ग्रहका भोग क्षय होनेमें अभी देर है।' विवाह स्थगित रहा। इसी बीचमें हो गई पिताकी मृत्यु। उसके बाद फिर विप्रदासके घर विवाह-सम्बन्धी चर्चा चलानेका अनुकूल समय न आया। घटक (सगाई ठीक करनेवाले) ने एक दिन मोटे दहेजकी आशा दिलाई। उसका नतीजा उलटा हुआ। काँपते हुए हाथोंसे हुक्केको दीवालके सहारे रखकर घटकजीको उस दिन बड़ी जल्दीके साथ घरकी राह लेनी पड़ी।

---

* बंगालमें, संस्कृतके दिग्गज विद्वानोंकी निवास-भूमि।

[६]

सुबोधकी चिट्ठी विलायतसे पहले बराबर समयपर आती थी। अब बीच-बीचमें नागा भी हो जाता है। कुमुद डाकके लिए व्यग्र होकर प्रतीक्षा करती रहती है। नौकरने अबकी चिट्ठी लाकर उसीके हाथमें दी। विप्रदास आईनेके सामने खड़े-खड़े दाढ़ी बना रहे थे, कुमुद दौड़ी गई, बोली—"भइया, छोटे भइयाकी चिट्ठी!"

दाढ़ी बना चुकनेपर आरामकुरसीपर बैठकर विप्रदासने ज़रा कुछ डरते-डरते चिट्ठी खोली। पढ़ लेनेके बाद चिट्ठीको दोनों हथेलियोंके बीच रखकर ऐसे ढंगसे दबाया जैसे उन्हें कोई तीव्र व्यथा हुई हो।

कुमुदिनीका जी दहल गया, पूछने लगी—"छोटे भइयाकी तबीयत ख़राब तो नहीं है?"

"नहीं, वह अच्छी तरहसे है।"

"चिट्ठीमें क्या लिखा है? बता दो भइया?"

"वही पढ़ने-लिखनेकी बात।"

कुछ दिनोंसे विप्रदास कुमुदको सुबोधकी चिट्ठी नहीं दिखाते। कुछ-कुछ अंश पढ़कर सुना देते हैं। अबकी बार सो भी नहीं! कुमुदको चिट्ठी माँग लेनेकी हिम्मत न पड़ी, उसका जी तड़पने लगा।

सुबोध पहले-पहल हिसाबसे खर्च करता था। घरकी तंगीकी बात तब तक मनमें ताजी थी, अब ज्यों-ज्यों वह छायाकी तरह अस्पष्ट होती जाती है, खर्च भी उतना ही बढ़ता जाता है। कहता है, ऊँची स्टाइलसे बिना रहे, वहाँके उच्च सामाजिक वायुमण्डलमें

नहीं पहुँचा जा सकता; और वहाँ तक न पहुँचे, तो विलायत आना ही व्यर्थ होता है।

विप्रदासको दो-एक बार लाचार होकर ज़रूरतसे ज्यादा रुपये भेजने पड़े हैं—वह भी तारसे। अबकी फरमाइश आई है डेढ़-सौ पौण्डकी—ज़रूरी काम है!

विप्रदासने माथेपर हाथ रखकर कहा—"कह से लाऊँ? देहका खून पानी करके कुमुदके ब्याहके लिए रुपया इकट्ठा कर रहा हूँ। अन्तमें क्या उन्हीं रुपयोंपर चोट पड़ेगी? क्या होगा सुबोधके बैरिस्टर होनेसे कुमुदके भविष्यको स्वाहा करके यदि उसकी क़ीमत चुकानी पड़े?

उस दिन रातको विप्रदास बरामदेमें टहल रहे थे। उन्हें मालूम नहीं कि कुमुदिनीको भी आँखोंमें नींद नहीं। जब बहुत ही असह्य हो उठा, तो कुमुद दौड़ी आई; विप्रदासका हाथ पकड़कर कहने लगी—"सच्ची-सच्ची बताओ भइया, छोटे भइयाको क्या हुआ है? तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ भइया, मुझसे न छिपाओ।"

विप्रदासने समझा कि छिपानेसे कुमुदिनीकी आशंका और भी बढ़ जायगी। जरा चुप रहकर बोले—"सुबोधने रुपये मँगाये हैं, इतने रुपये देनेकी शक्ति मुझमें नहीं है।"

कुमुदने विप्रदासका हाथ थामकर कहा—"भइया, एक बात कहती हूँ, गुस्सा तो न होगे, बोलो?"

"गुस्सा होनेकी बात होगी, तो बिना गुस्सा हुए कैसे रहूँगा, बता?"

"ना भइया, हँसीकी बात नहीं, मेरी बात सुनो,—माके गहने तो मेरे लिए हैं,—उन्हींको लेकर—"

"चुप, चुप, तेरे गहनोंमें क्या हम लोग हाथ लगा सकते हैं!"

"मैं तो लगा सकती हूँ।"

"नहीं, तू भी नहीं लगा सकती। रहने दे यह सब बात, जा अब सोने जा।"

कलकत्ते शहरका सवेरा है। कौओंकी काँव-काँव और कूड़ा ढोनेवाली गाड़ियोंकी घड़घड़ाहटमें रात बीती। दूरपर कभी स्टीमरोंकी और कभी तेलकी मिलोंकी सीटी बज रही है। मकानके सामनेकी सड़कसे एक आदमी नसैनी कंधेपर रखे "ज्वरादि बटिका" का विज्ञापन चुपकाता चला-जाता है; रीती बैलगाड़ीके दोनों बैल गाड़ीवानके दोनों हाथोंकी प्रबल ताड़नासे गाड़ी लेकर भाग जा रहे हैं; नलपर पहले पानी भरनेकी होड़ा-होड़ीमें एक कहारकी लड़कीके साथ उड़िया ब्राह्मणका धक्कमधक्का और बक-झक चल रही है। विप्रदास बरामदेमें बैठे हैं; हुक्काकी नली हाथमें है; मेजपर बिना-पढ़ा अखबार पड़ा हुआ है।

कुमुदने आकर कहा—"भइया, नाहीं मत करो।"

"मेरे मतकी स्वाधीनतापर हस्तक्षेप करेगी तू? तेरे शासनमें मुझे रातको दिन—ना-को हाँ कहना पड़ेगा?"

"नहीं, सुनो तो सही,—मेरे जेवरों से अपनी चिन्ता दूर करो।"

"इसीसे तो तेरा नाम लल्ली रक्खा है मैंने! तेरे जेवरोंसे मेरी चिन्ता दूर होगी, यह तैंने कैसे सोच लिया?"

"सो नहीं जानती, पर तुम्हारी यह फिकर मुझसे सही नहीं जाती।"

"फिकर करके ही फिकर दूर की जाती है बहन, उसे धोखेसे रोकनेकी कोशिश करनेसे उलटा नतीजा होता है। जरा धीरज धर, कोई तजबीज किये देता हूँ।"

विप्रदासने पत्रके उत्तरमें लिखा—"रुपये भेजनेके लिये कुमुदके दहेजके रुपयोंमें हाथ डालना पड़ेगा, और यह असम्भव है।"

यथासमय उत्तर आ गया। सुबोधने लिखा है—कुमुदके दहेजके रुपये उसे नहीं चाहिये। जायदादमेंसे उसका आधा हिस्सा बेचकर उसके लिये रुपये भेजे जायँ। साथ ही पावर-आव्-अटर्नी भी भेज दिया है।

यह पत्र विप्रदासके सीनेमें बाणकी तरह बिंध गया। इतना कड़ा निष्ठुर पत्र सुबोधने लिखा कैसे? उसी वक्त बूढ़े दीवानजीको बुला भेजा, पूछा—"भूषण राय करीमहट्टी ताल्लुका पट्टेपर लेना चाहता था न? कितना देना चाहता है?"

दीवानजीने कहा—"बीस हज़ार तक दे सकता है।"

"भूषण रायको बुला भेजो। मैं बातचीत करना चाहता हूँ।"

विप्रदास अपने वंशके बड़े लड़के हैं। उनके जन्म समय उनके बाबा यह ताल्लुका उन्हें पृथक्‌रूपसे दे गये हैं। भूषण राय बड़े भारी महाजन हैं, बीस-पचीस लाखकी तिजारत होती है। करीमहट्टी उनकी जन्म-भूमि है, इसलिए बहुत दिनोंसे वे अपने गाँवका पट्टा लेनेकी कोशिशमें हैं। अर्थ-संकटके कारण बीच-बीचमें विप्रदास राजी भी हो जाते, पर रैयत लोग रो देते; कहते—'उसको हम लोग किसी तरह भी ज़मींदार नहीं मान सकते।' इसीसे प्रस्ताव बार-बार रद्द हो जाता। इस बार विप्र-दासने मनको खूब कठोर बना लिया। वे निश्चित-रूपसे यह जानते थे कि सुबोधके रुपयोंकी माँगका अन्त यहींपर नहीं है। मन-ही-मन बोले—'मेरे ताल्लुकेकी इस सलामीका रुपया रहा सुबोधके लिए, फिरकी फिर देखी जायगी।'

दीवानको विप्रदासके मुँहपर जवाब देनेकी हिम्मत न पड़ी। पीछे चुपकेसे कुमुदको जाकर कहा—"जीजी, बड़े बाबू तुम्हारी बात मानते हैं। उनसे मना कर दो, यह बे-इन्साफ़ हो रहा है।"

विप्रदासको घरके सभी कोई चाहते हैं। दूसरे किसीके लिए बड़े बाबू अपनी मिलकियत नष्ट करें, यह बात उनको अखरती है।

अबेर हो रही है। विप्रदास उसी ताल्लुकेके कागजात लेकर उलट रहे हैं। अभी तक नहाना-खाना नहीं हुआ। कुमुद बार-बार उन्हें बुला भेजती है। सूखा-सा मुँह लिये वे अन्दर पहुँचे—जैसे बिजलीका मारा जले पत्तोंका ठूँठ हो। कुमुदकी छातीमें तीर-सा समा गया।

नहाना-खाना हो चुकनेके बाद जब विप्रदास हुक्केकी नली हाथमें लिये चारपाईके बिछौनेपर पैर फैलाकर तकियेके सहारे बैठे, तब कुमुदने उनके सिरहानेके पास बैठकर, धीरे-धीरे उनके बालोंमें उँगलियाँ फेरते हुए, कहा—"भइया, तुम अपने ताल्लुकेका पट्टा नहीं देने पाओगे।"

"तेरे सिरपर नवाब सिराजउद्दौलाका भूत तो नहीं सवार हो गया? सभी बातोंमें जुल्म?"

"ना भइया, बातको दबाओ मत।"

तब विप्रदाससे न रहा गया, सीधे होकर उठकर बैठ गये। कुमुदको सिरहानेके पाससे हटाकर सामने बिठाया। रुँधे हुए गलेको साफ़ करनेके लिये ज़रा खाँसकर बोले—"सुबोधने क्या लिखा है, जानती है?

इतना कहकर कुरतेकी जेबमेंसे सुबोधकी चिट्ठी निकालकर उसके हाथपर रख दी। कुमुदने पूरी चिट्ठी पढ़कर दोनों हाथोंसे मुँह ढककर कहा—"भइया री, छोटे भइयासे ऐसी चिट्ठी लिखी कैसे गई होगी?"

विप्रदास बोले—"जब वह आज अपनी जायदादमें और मेरी जायदादमें भेद देख रहा है, तब मैं अपनी जायदाद क्या

अलग रख सकता हूँ ? आज उसके बाप नहीं हैं, आफ़त-विपतके वक्त उसे मैं न दूँगा, तो और कौन देगा ?"

इसपर कुमुद कोई बात न कह सकी, नीरवतामें उसकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। विप्रदासने फिर तकियेका सहारा लेकर आँखें मींच लीं।

बहुत देर तक भइयाके पाँवपर हाँथ फेरती हुई अन्तमें कुमुद बोली—"भइया, माका धन तो अभी तक माका ही है, उनका जेवर रहते हुए तुम क्यों—"

विप्रदास फिर चौंककर उठ बैठे, बोले—"कुमू, इतना भी तू न समझ सकी, तेरे गहने बेचकर सुबोध आज अगर विलायत में थियेटर, कनसर्ट देखता फिरे, तो मैं क्या उसे कभी क्षमा कर सकूँगा ?—या, वही फिर किसी रोज़ मुँह दिखाने लायक रहेगा ? उसे तू इतनी भारी सजा क्यों देना चाहती है ?"

यह सुनकर कुमुद चुप्पी साध गई, कोई भी उपाय उसे ढूँढ़े न मिला। तब, अनेकों बार जैसे पहले सोचा करती थी वैसे ही, सोचने लगी—क्या कोई असम्भव बात नहीं हो सकती ? आकाशका कोई ग्रह, कोई नक्षत्र क्षण-भरमें सारी बाधाएँ दूर नहीं कर सकता ? परन्तु शुभ लक्षण तो दिखाई दिये हैं, कुछ दिनसे बार-बार उसकी बाँई आँख फड़क रही है। इससे पहले ज़िन्दगीमें बहुत दफ़ा बाँई आँख फड़की है, उसपर कुछ भी सोचने-विचारनेकी ज़रूरत नहीं हुई। इक बारका शुभ लक्षण स्वयं ही उसकी समझमें आ गया। मानो उसकी बात उसे रखनी ही पड़ेगी—कहीं शुभ-लक्षणका सत्य-भंग न हो जाय।

[१०]

बदलीका दिन है। विप्रदासकी तबीयत अच्छी नहीं है। फर्द ओढ़े अध-लेटी हालतमें अखबार पढ़ रहे हैं। कुमुदकी दुलारी बिल्ली फर्दके एक फालतू हिस्सेपर कब्जा करके गोल-मटोल हुई सो रही है। विप्रदासका 'टेरियर' कुत्ता मजबूरीसे उसकी स्पर्धा सहकर मालिकके पैरोंके पास सोता हुआ स्वप्नमें एक दफ़ा गों-गों करके गुर्रा उठता है।

इतनेमें एक घटकराज आ पहुँचे।

"नमस्कार!"

"कौन हो तुम?"

"जी, बड़े मालिक साहब मुझे खूब ही पहचानते थे, (झूठी बात है) आप तब छोटेसे थे। मेरा नाम है नीलमणि घटक, स्वर्गीय गंगामणि घटकका पुत्र हूँ मैं।"

"क्या काम है?"

"अच्छा पात्र (वर) मिल रहा है। आपके ही घरके लायक है।"

विप्रदास ज़रा सम्हलकर बैठ गये। घटकने राजा बहादुर मधुसूदन घोषाल का नाम लिया।

विप्रदासने विस्मित होकर पूछा—"उनके लड़का है क्या?"

घटकने दाँतों तले जीभ दबाकर कहा—"नहीं तो, अभी उन्होंने ब्याह ही नहीं किया है। बड़ा-भारी ऐश्वर्य है। काम-काज स्वयं देखना छोड़ दिया है, अब गिरस्तीकी तरफ ध्यान दिया है।"

विप्रदास कुछ देर बैठे-बैठे हुक्केकी नलीसे धुआँ खींचते रहे। उसके बाद यकायक ज़रा जोरसे बोल उठे—"उमरमें मेल हो, ऐसी कोई लड़की हमारे यहाँ नहीं है।"

घटक महाशय सहजमें छोड़नेवाले न थे, वरके ऐश्वर्यकी महिमा कितनी बड़ी है, और गवर्नरके दरबारमें उनके आने-जानेका मार्ग कितना प्रशस्त है, अनुनय-विनयके साथ हर तरहसे उसीकी व्याख्या करने लगे।

विप्रदास फिर स्तम्भित होकर बैठ रहे। फिर अनावश्यक गुस्सेके साथ कह उठे—"उमरमें मेल नहीं होगा।"

घटकने कहा—"विचार लीजिये, दो-चार दिन बाद फिर आऊँगा।"

विप्रदास लम्बी साँस लेकर फिर लेट गये।

भइयाके लिये गरम चाय लेकर कुमुद कमरेमें आ रही थी। दरवाजेके बाहर एक भीजी हुई फटी-टूटी छतरी, जिसपर अंगोछा लिपटा हुआ था, और कीच-कद्दड़से सना हुआ जोड़ा देखकर ठिठक गई। इनकी बातें उसने कुछ-कुछ सुन लीं। घटक उस समय कह रहा था—"राजा बहादुर इसी सालके अन्दर-अन्दर महाराजा हो जायँगे, यह खास लाट साहबके मुँहकी बात है। इसीसे इतने दिनों पीछे उन्हें चिन्ता हुई है—महारानीका पद अब खाली नहीं रखा जा सकता। आपके ग्रहाचार्य किनू भट्टाचार्य दूरके रिश्तेमें मेरे साले लगते हैं, उनके पास जाकर कन्याकी जन्मपत्री देखी—लक्षण ठीक मिलते हैं। इस मामलेमें शहरकी तमाम लड़कियोंकी जन्मपत्रियाँ उलट डाली हैं। ऐसी जन्मपत्री दूसरी देखनेमें ही नहीं आई। देख लीजियेगा, मैं आपसे कहे देता हूँ, यह सम्बन्ध हुआ पड़ा है, यह प्रजापतिका विधान है।"

ठीक इसी समय कुमुदिनीकी बाँई आँख फड़क उठी। शुभ लक्षणका कैसा अपूर्व रहस्य है! किनू आचार्यने कितनी ही बार उसका हाथ देखकर कहा है—वह राजरानी होगी। हस्तरेखाओंका वह परिणत फल आज अपने-आप उसके सामने उपस्थित

हुआ है। महाचार्यजी अभी कुछ दिन हुए, वार्षिकी वसूल करने कलकत्ते आये थे। वे कह गये हैं—अबकी आषाढ़ माससे वृष-राशिका राज-सम्मान है, स्त्री-जनित अर्थलाभ है, शत्रुनाश होगा; खराबीमें पत्नी-पीड़ा, यहाँ तक कि पत्नी-वियोग भी हो सकता है। विप्रदासकी वृषराशि है। बीच-बीचमें शारीरिक पीड़ा है। उसका भी प्रमाण हाथों-हाथ मिल गया! कल रातसे साफ-साफ जुक़ामके लक्षण दिखाई देने लगे हैं। आषाढ़ मास भी आ गया; पत्नीकी पीड़ा और उसकी मृत्युकी बातपर हालमें विचार करने-की जरूरत नहीं; अतएव अबकी बार समय अच्छा है।

कुमुदने भइयाके पास बैठकर कहा—"भइया, सिरमें दर्द होता है क्या ?

भइयाने कहा—"नहीं तो।"

"चाय ठंडी तो नहीं हो गई ? तुम्हारे कमरेमें आदमी देख-कर मैं आ नहीं सकी।"

विप्रदासने कुमुदके मुँहकी ओर ताककर एक गहरी साँस ली। भाग्यकी निष्ठुरता सबसे ज्यादा असह्य हो उठती है तब, जब वह सोनेका-सा रथ लाता है, जिसके पहिये बेकाम हों। भइयाके चेहरेपर इस दुविधाकी वेदनाको देखकर कुमुदिनी बड़ी व्यथित हुई। दैवके दानपर भइया क्यों इस तरह सन्देह करते हैं ? यह बात कुमुदिनीकी बुद्धिमें कभी नहीं आई कि विवाह-कार्यमें अपनी पसन्द भी कोई चीज होती है। बचपनसे एक-एक करके उसने अपनी चारों बहनोंके ब्याह देखे हैं। कुलीनोंके घर ब्याह है—कुलके सिवा और विशेष कुछ पसन्दकी बात हो, सो भी नहीं। बाल-बच्चोंको लेकर फिर भी वे गिरस्ती करती हैं—दिन बीत जाते हैं। तकलीफ पानेपर भी विद्रोह नहीं करतीं, मनमें विचार भी नहीं करतीं कि इसके सिवा और भी कुछ हो सकता

था। मा क्या लड़कोंमेंसे लड़केको छेक लेती है ? लड़का मान लेती है। कुपुत्र भी होता है, सुपुत्र भी। पति भी ऐसे ही समझो। विधाताने कुछ दूकान तो खोल ही नहीं रखी। भाग्यपर किसका बस चल सकता है ?

इतने दिन बाद कुमुदके बुरे भाग्यका लम्बा-चौड़ा मैदान पारकर राजपुत्र आया—पर छद्मवेश में। रथके पहियोंका शब्द कुमुद अपने हृदयके स्पन्दनमें सुन रही है। बाहरके छद्मवेशकी वह जाँच करना नहीं चाहती।

झटपट अपने कमरेमें जाकर पत्रा खोलकर उसने देखा—आज मनोरथ-द्वितीया है। घरके कर्मचारियोंमें जो कई आदमी ब्राह्मण थे, उन्हें शामको बुलवाकर फलाहार कराया, यथासाध्य दक्षिणा भी दी। सभीने आशीर्वाद दिया—'राजरानी होकर रहो, धन और पुत्रमे फलो-फूलो।'

दूसरी बार विप्रदासकी बैठकमें घटकराज पधारे। चुटकी बजाकर 'शिव-शिव' कहते हुए वृद्धने ऊँचे स्वरसे जम्हाई ली। इस बार असम्मति ज़ाहिर कर बातको वहीं खत्म कर देनेकी विप्रदासको हिम्मत न पड़ी। सोचा, इतना बड़ा दायित्व लूँ किस तरह ? कैसे निश्चय करूँ कि कुमुदके लिए यह सम्बन्ध सबसे अच्छा नहीं है ? "परसों पक्का जवाब देंगे"—कहकर घटकको विदा किया।

[११]

सन्ध्याका अन्धकार मेघकी छाया और वर्षाके पानीसे घना हो रहा है। कुमुदिनीकी चीज़-बस्त ऐसी कुछ ज़्यादा नहीं है। एक तरफ छोटीसी खाट है, अरगनीपर दो चुनी-चुनाई साड़ी और चम्पई रंगका अंगौछा टँगा है। कोनेमें कटहरकी

लकड़ीका एक सन्दूक है, उसमें उसके पहननेके कपड़े हैं। खाटके नीचे हरे रंगके टीनके डिब्बेमें पान लगानेका मसाला है, और एक डिब्बेमें जूड़ा बाँधनेका सामान। दीवालमें बनी हुई लकड़ीकी आलमारीमें कुछ किताबें, दावात-क़लम, चिट्ठीके कागज़, माके हाथके ऊनके बुने हुए बाबूजीके 'स्लीपर' रखे हुए हैं; खाटके सिरहाने राधा-कृष्णकी जुगल जोड़ीकी तसवीर टँगी है। दीवाल-के कोनेसे सटा हुआ एक 'इसराज' रखा है।

कुमुदने कमरेमें दिआ नहीं जलाया है। लकड़ीके सन्दूकपर बैठी हुई वह खिड़कीके बाहरकी तरफ देख रही है। सामने ईंटका कलेवर-वाला कलकत्ता है। पुराने ज़मानेका कठिन कवच पहने किसी भीमकाय जन्तु जैसा लगता है, वर्षाकी जलधारामें धुँधला दिखाई दे रहा है। बीच-बीचमें कहीं-कहीं उसके शरीर-पर आलोक-शिखाकी बूँदें हैं। कुमुदका मन उस समय अपने भाग्यमें लिखे भावी लोकमें है। वहाँके मकान, महल, आदमी वगैरह सब उसके निजी आदर्शपर बने हुए हैं। उसीके बीचमें उसने सती लक्ष्मीके रूपमें अपनी प्रतिष्ठा की है। कितनी भक्ति है, कितनी पूजा है, कितनी सेवा है! उसकी अपनी माताके पुण्य-चरितमें एक जगह एक गहरी त्रुटि रह गई है। उन्होंने पतिके अपराधपर कुछ समयके लिये धैर्य छोड़ दिया था। कुमुद ऐसी भूल कभी न करेगी।

विप्रदासके पैरोंकी आहट सुनकर कुमुद चौंक उठी। भइया-को देखकर बोली—"दिआ जला दूँ भइया ?"

"नहीं कुमू, जरूरत नहीं"—कहकर विप्रदास सन्दूकपर कुमुदके बगलसे जा बैठे। कुमुद जल्दीसे उतरकर ज़मीनपर बैठ गई—धीरे-धीरे भइयाके पैरोंपर हाथ फेरने लगी।

विप्रदासने मुलायम स्वरमें कहा—"बैठकमें आदमी आये हुए थे, इसीसे तुझे बुलाया नहीं। अब तक तू अकेली बैठी थी ?"

कुमुदने शरमाते हुए कहा—"नहीं तो, क्षेमा-बुआ बहुत देर तक बैठी रही थीं।" बातको घुमा देनेके लिए कहा—"बैठकमें कौन आये थे, भइया।"

"सो ही तो मैं तुझे कहने आया हूँ। इस वर्ष जेठके महीनेमें तू अठारहवीं साल पारकर उन्नीसवीं सालमें पड़ी है, क्यों ?"

"हाँ भइया, इसमें कोई दोष हुआ है ?"

"दोषकी बात नहीं। आज नीलमणि घटक आया था। बहन कैसी है, शरमाना मत। बाबूजी जब मौजूद थे, तेरी उमर दस सालकी थी—तब तेरा ब्याह पक्का हो गया था। अगर हो जाता, तो तेरी रायकी कोई परवाह नहीं करता, लेकिन अब तो मुझसे ऐसा नहीं हो सकता। राजा मधुसूदन घोषालका नाम तैंने सुना ही होगा। कुलके लिहाजसे भी वे अच्छे हैं, पर उमरमें तुझसे बहुत फर्क है। मैं तो राजी नहीं हो सका हूँ। अब, तेरे मुँहसे एक शब्द सुनना चाहता हूँ, फिर साफ-साफ कह दूँगा। शरम न करना, कुमुद !"

"नहीं, शरमाऊँगी नहीं।"—कहकर कुमुद कुछ देर तो चुप रही। फिर बोली—"जिनकी बात तुम कह रहे हो, उनके साथ तो मेरा सम्बन्ध ठीक हो ही चुका है।" यह उस घटककी बातकी प्रतिध्वनि थी—मालूम नहीं, कब, यह बात उसके मनकी गहराई-में हिलगी रह गई है।

विप्रदास बड़े अचम्भेमें पड़ गये, बोले—"कैसे कुमू, ठीक कैसे हो गया ?"

कुमुद चुपचाप बैठी रही।

विप्रदास ने उसके माथेपर हाथ फेरकर कहा—"लड़कपन मत कर कुमू !"

कुमुदिनी बोली—"तुम नहीं समझोगे भइया, मैं ज़रा भी लड़कपन नहीं कर रही हूँ।"

भइयापर उसका असीम प्रेम है, परन्तु भइया तो दैव नहीं मानते। कुमुदिनी समझती है कि यहींपर भइयाकी दृष्टिकी कमजोरी है।

विप्रदासने कहा—"तैंने तो उन्हें देखा नहीं?"

"न सही, पर मैंने तो ठीक जान लिया है।"

विप्रदास अच्छी तरह जानते हैं कि इसी जगह भाई-बहनमें बड़ा-भारी भेद है। कुमुदके चित्तके इस अन्धकारमय महलमें,—उसपर भाईका तनिक भी अधिकार नहीं। तो भी विप्रदासने फिर एक बार कहा—"देख कुमुद, ज़िन्दगी-भरकी बातको चटसे किसी कल्पनामें आकर प्रतिज्ञा-रूपमें तय न कर बैठना!"

कुमुदने व्याकुल होकर कहा—"कल्पना नहीं है भइया, कल्पना नहीं। मैं तुम्हारे पाँव छूकर कहती हूँ, और किसीसे ब्याह नहीं कर सकती।"

विप्रदास चौंक उठे। जहाँ कार्य-कारणका योगायोग नहीं है, वहाँ तर्क करें, तो क्या लेकर? अमावस्याके साथ कुश्ती नहीं चल सकती। विप्रदासने समझ लिया—किसी दैव-संकेतने कुमुदके मनमें स्थान बना लिया है। बात सच है। आज ही सबेरे देवताके नामपर मन-ही-मन उसने कहा था—'इस ऊने गिनतीके फूलोंमेंसे एक-एक जोड़ी अलग रखनेके बाद सबके पीछे जो फूल बच रहेगा, उसका रंग अगर देवताके समान नीला हो, तो समझूँगी कि यह भगवानकी ही इच्छा है।' सबके आखिरका फूल निकला नील अपराजिता—कोयल।

पास ही मल्लिकके मकानमें संध्याकी आरतीका घड़ियाल-घंटा बज उठा। कुमुदने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। विप्रदास बहुत

देर तक बैठे रहे। क्षण-क्षणमें बिजली चमक रही थी, खूब वर्षा हो रही थी।

[१२]

विप्रदासने और भी कई बार कुमुदिनीको समझानेकी कोशिश की। कुमुद कुछ जवाब न देकर सिर झुकाये आँचल खोंटती रही। ब्याह पक्का हो गया। सिर्फ एक मामलेपर दोनों ओरसे कुछ बातचीत चल रही है,—ब्याह कहाँ से हो ? विप्रदासकी इच्छा है कि कलकत्तेसे हो। मधुसूदनकी जबरदस्त ज़िद है नूरनगरके लिए। आखिर वरपक्षकी ही बात रही।

ब्याहकी तैयारियोंके लिए कुछ दिन पहलेसे ही नूरनगर आना पड़ा। बैसाख-जेठकी कड़ी धूपके बाद असाढ़की वर्षा होनेपर जैसे ज़मीन देखते-देखते हरी हो जाती है, कुमुदिनीके भीतर और बाहर वैसा ही एक नये जीवनका रंग चढ़ गया। अपने मन-गढ़न्त आदमीके साथ मिलनेके आनन्दने उसे दिन-रात पुलकित कर रखा है। शरद्-ऋतुका सुनहला प्रकाश उसके साथ आँखों-ही-आँखोंमें बातें कर रहा है—किसी एक अनन्तकालकी मनकी बात कहता है। सोनेके कमरेके सामनेवाले बरामदेमें कुमुदिनी चबेना बखेर देती है, चिड़ियाँ आकर चुगती हैं; रोटीके टुकड़े रखती है, गिलहरी चंचल दृष्टिसे चारों ओर निहारकर जल्दीसे दौड़ी आती और पूँछके बल खड़ी हो जाती है, सामनेके दोनों पैरोंसे रोटी उठाकर कुतर-कुतरकर खाती रहती है। कुमुदिनी ओटमें बैठकर उसे बड़े आनन्दसे देखा करती है। विश्वके लिए उसका हृदय आज दाक्षिण्यसे भरा पड़ा है। शामको नहाते वक्त वह पीछेके तालाबमें गले तक डूबकर चुपचाप बैठी

रहती है, तालका पानी मानो उसके तमाम अंगोंसे बातें करता रहता है। शामकी तिरछी सूरजकी रोशनी तालाबके पीछेवाले नीबूके पेड़की डालियोंपरसे आकर, घने काले रङ्गके पानीपर—कसौटी पर सोनेकी लकीरोंके समान—झिलमिलाती रहती है। कुमुद उन्हें बड़े ग़ौरसे देखती है, उस प्रकाश और छायामें उसके सारे शरीरपरसे एक अकथनीय आनन्दकी कंपकंपी आ जाती है। दोपहरको छतपर की छोटीसी कोठरी में अकेली जाकर बैठी रहती, बगलके जामुनके पेड़पर से पिड़ुकीकी आवाज़ कानमें पड़ती रहती। उसके यौवन-मन्दिरमें आज जिस देवताका वरण हो रहा है, उसके भावमय रस-भरे रूपमें कृष्ण-राधिकाके युगल रूपका माधुर्य मिल गया है। छतपर बैठकर 'इसराज' हाथमें लिये वह धीरे-धीरे अपने भइयाके बताये हुए भूपाली स्वरका गाना गाती रहती है :—

"आजु मोर घरवामें आइल पियरवा,
रोम-रोम हरखीला————"

रातको बिछौनेपर बैठकर प्रणाम करती है; सबेरे, उठनेके साथ ही फिर प्रणाम करती है। किसे करती है, यह स्पष्ट नहीं—वह तो एक निरवलम्ब भक्तिका स्वतः निकला हुआ उच्छ्वास है!

परन्तु मन-गढ़न्त प्रतिमाके मन्दिरका द्वार हमेशा तो बन्द रह नहीं सकता। कानाफूँसीकी साँसोंकी गरमी और वेगने जब उस मूर्तिकी मनोहर सुन्दरतापर धक्का दिया, तब भला देवताका रूप कैसे टिक सकता था? भक्तके लिए यह बड़े दुःखकी घड़ी थी।

एक दिन तेलिनीपाड़ेकी बुढ़िया तीनकौड़िन कुमुदिनीके सामने ही कह बैठी—"हमारी कुमुदका नसीब तो देखो, कैसे राजा वर मिल गया है! सिंगी लगानेवाली कहा करती हैं न—

'एक रहा गीदड़के वनमें कुकुरमुत्तेका छाता,
उसको काट बनाया कैसा सिंहासन मन-भाता।'

सो यह भी उसी गीदड़के वनका राजा है। अरे, रजबपुर के आनन्दी गुमास्तेको मैं क्या जानती नहीं, उसीका तो यह लड़का है मधुआ! देशमें जिस बार अकाल पड़ा था, कहींसे चावल मँगाकर बेचे थे, वही कमाई अब तक चल रही है। तो भी बेचारी बुढ़िया महतारीको आखिर दम तक हाथसे राँधकर खाना पड़ा।"

और-और लड़कियाँ तीनकौड़िनको घेर बैठतीं; कहतीं—दूल्हाको तू पहचानती है क्या?"

"और नहीं! उसकी मा तो हमारे मुहल्लेकी लड़की थी, पुरोहित चक्रवर्तियोंके यहाँ उसका मायका था। (स्वर नीचा करके) सच्ची कहनेमें क्या बुराई, अच्छे बाम्हानोंके घर तो उन लोगोंका सम्बन्ध ही नहीं हो सकता, पर लच्छमी जाति-कुल थोड़े ही देखती है!"

यह पहले ही कहा जा चुका है कि कुमुदिनीका मन इस नये ज़मानेके साँचेमें नहीं ढला था। जाति-कुलकी पवित्रता उसकी दृष्टिमें बड़ी भारी और वास्तविक चीज़ थी, इसीलिए मन जितना संकुचित होता, उतना ही उसे निन्दकोंपर गुस्सा आता; घरमेंसे सहसा रोती हुई वह बाहर चली जाती। इसपर सब एक दूसरेकी देह मसककर कहतीं—"ओफ्फोह! अभीसे इतनी पीर? यह तो देखती हूँ कि दक्ष-यज्ञकी सतीको भी मात किये देती है!"

विप्रदासके मनकी गति नये ज़मानेकी है, फिर भी जाति-कुलकी हीनताके ख़यालने उनपर काबू कर लिया है। इसीसे अफ़वाहको दाबनेके लिए बहुत-कुछ कोशिश की गई, मगर फटे तकियेको दबानेसे उसकी रुई और भी ज्यादा निकलने लगती है, यहाँ भी वही दशा हुई।

इधर पुरानी-रैयत वृद्ध दामोदर विश्वाससे मालूम हुआ कि बहुत पहले नूरनगरके पास सिलाकुली गाँवमें घोषालोंकी जमींदारी थी। अब वह चटर्जियोंके दखलमें है। प्रतिमा-विसर्जन वाले मुकदमेमें किस तरह घोषाल-वंशका विसर्जन हुआ था, किस कौशलसे बड़े मालिक साहबने उन्हें देश और समाजसे निकाल बाहर किया था, उसकी कथा सुनाते-सुनाते दामोदरका मुख भक्ति से उज्ज्वल हो उठा। घोषाल-वंश किसी समय धनमें, कुलमें, प्रतिष्ठामें चटर्जियोंके बराबरीका था—यह सन्तोषकी बात है; परन्तु विप्रदासके मनमें भय हुआ कि कहीं यह ब्याह भी उसी पुराने खातेकी कोई जूनी बाक़ी न हो!

[१३]

अगहनके महीनेमें ब्याह है। कुआर वदी पंचमीको लक्ष्मी-पूजा हो गई। सप्तमीके दिन सहसा तम्बू और बहुतसा असबाब लेकर घोषाल-कम्पनीके इंजिनियरिंग-डिपार्टमेन्टके ओवरसियर आ धमके; साथमें था पछाँहके मजदूरोंका एक झुण्ड। माजरा क्या है?—सियाकुलीमें घोषाल-तालके किनारे तम्बू डालकर वर और बराती कुछ दिन पहलेसे ही वहाँ आकर ठहरेंगे।

यहँ कैसी अनोखी बात! विप्रदासने कहा—"वे जितने आना चाहें, आवें; जितने दिन रहना चाहें, रहें; हम ही सब इन्तज़ाम कर देंगे। तम्बुओंकी क्या ज़रूरत है? हमारा दूसरा मकान है, उसे खाली करवाये देते हैं।"

ओवरसियरने कहा—"राजा बहादुरका हुक्म है। तालके चारों तरफका जंगल साफ करनेको भी कहा,—आप जमींदार हैं, आपकी आज्ञा चाहिए।"

विप्रदासके चेहरेपर सुर्ख़ी आ गई, बोले—"यह काम क्या उचित हो रहा है ? जंगल तो हम साफ करा सकते थे ?"

ओवरसियरने विनयसे कहा—"राजा बहादुरके पुरखे यहाँ रहते थे, इससे तबियत हुई कि खुद ही उसे साफ करा लेंगे।"

बात बिलकुल असंगत न थी; परन्तु आत्मीय-स्वजनोंके मनमें खटका हो गया। रिआया कहने लगी, यह हमारे मालिक साहबपर धाक जमानेकी कोशिश है ! अचानक धन आ गया है न, वह दबाए दबता नहीं, उसे ढोल-ताशे बजा-बजाकर ज़ाहिर करनेके लिए यह लीला रची जा रही है ! वह ज़माना होता, तो दूल्हा-समेत दूल्हेकी पालकीको वैतरणी पार करनेमें देर न लगती। छोटे मालिक होते तो वे भी न सह सकते थे। देख लिया जाता, तब वे बाबू और तम्बू कहाँके मारे कहाँ चले जाते।

रैयतोंने आकर विप्रदाससे कहाँ—"हुजूर ! उनके मुक़ाबले हम पीछे नहीं हट सकते। जो खर्च लगेगा, हम लोग हिलकर करेंगे।"

छै-आना हिस्सेके मालिक नवगोपालने आकर कहा—"वंशकी बेइज्ज़ती नहीं सही जाती। एक दिन वह था, जब हमारे मालिकोंने घोपालोंकी अक्ल ठिकाने कर दी थी, आज वे ही हमारे इलाक़ेमें चढ़ाई करके आये हैं रुपयेकी शान दिखाने !—अरे इसमें डरनेकी क्या बात है, भाई साहब ! जो भी खर्च लगे, हम लोग तो हैं ही। जायदादका बटवारा हुआ है, वंशके सम्मानका तो बटवारा नहीं हुआ।"

इतना कहकर नवगोपाल अपने-आप ही कार्यकर्ता बन बैठे।

विप्रदास कई दिनसे कुमुदके पास नहीं जा पाये हैं। उसके मुँहकी तरफ़ ताकेंगे कैसे ? कुमुदके सामने वरपक्षकी स्पर्द्धाकी बात कोई नरमाईसे कहे, इतनी दया या भद्रता तो समाजमें है

ही नहीं। कुमुदके सामने तो लोग और भी नमक-मिर्च मिलाकर कहते हैं। लड़कियोंका कोप तो उसीपर है। उसीके लिए तो पुरखोंकी बात हेठी हो रही है। राजरानी बनने चली हैं! बस, देख ली राजाकी हुलिया!

जाति-कुलकी बातको कुमुदने अपनी भक्तिसे ढक दिया था, पर धनकी बड़ाई करके श्वसुर-कुलकी तौहीनी करनेकी नीचता देखकर उसका मन ग्लानिसे भर गया। अब वह लोगोंकी निगाहसे बचती फिरती है। घोषाल-कुलकी लज्जा तो आज उसीकी लज्जा है। भइयाके मुँहसे कुछ सुननेके लिए उसका जी तड़प रहा है, मगर भइया मिलते ही नहीं, खानेके लिए भी वे भीतर नहीं आते।

एक दिन विप्रदास भट्टीकी जगह तजवीज करने अन्त:पुरके बगीचेमें गये। देखा, तो, पीछेके तालाबके घाटपर कुमुदिनी नीचेकी सीढ़ियोंपर बैठी है—सिर झुकाये पानीकी तरफ देख रही है। भइयाको देखकर वह चटसे उठ आई। आनेके साथ ही रुँधे हुए गलेसे बोली—"भइया, कुछ समझमें नहीं आता।"—कहकर आँचलसे मुँह ढककर रोने लगी।

भइयाने धीरे-धीरे पीठपर हाथ फेरते हुए कहा—"लोगोंकी बातोंपर ध्यान मत दे, बहन!"

"पर वे लोग यह सब क्या कर रहे हैं? इससे क्या तुम्हारी इज्जत रहेगी?"

"उनकी तरफसे भी विचार कर देख कुमुद। पुरखोंकी जन्मभूमिमें आ रहे हैं, जरा धूमधाम नहीं मचायेंगे? इस बातको ब्याहसे अलग कर डाल, फिर विचार कर देख।"

कुमुद चुप हो गई। विप्रदाससे न रहा गया, जानपर खेलकर बोले—"तेरे मनमें अगर ज़रा भी खटका हो, तो बोल, अब भी ब्याह रुक सकता है।"

कुमुदिनीने तेजीसे सिर हिलाकर कहा—"छिःछिः ! ऐसा भी कहीं होता है ?"

अन्तर्यामीके सामने तो सत्य-ग्रन्थिमें गाँठ लग ही चुकी है। अब जो बाकी है, वह तो सिर्फ बाहरकी बात है।

विप्रदासका इस ज़मानेका मन निष्ठासे इतना अधीर हो उठता है। उसने कहा—"दोनों पक्षकी भलमनसाहतमें ही विवाह-बन्धन सत्य है। स्वर बँधे हुए इसराजकी कोई क़ीमत नहीं, अगर बजानेवाले हाथ ही बेसुरे हुए। पुराणोंमें देखो न, जैसे सीता थीं वैसे ही राम; जैसे महादेव थे वैसे ही सती; अरुन्धती जैसी थीं, वशिष्ठ भी वैसे ही थे। अबके ज़मानेमें बाबुओंमें तो पुण्य रहा ही नहीं, इसीसे इकतरफा सतीत्वका प्रचार करते फिरते हैं। उनकी तरफसे तो तेल नहीं जुटता, पलीतेको कहते हैं जलनेको !—सूखी ज़िन्दगीमें जलते-जलते ही बेचारी राख हुई जा रही है।"

कुमुदसे कहना फिजूल है। अभीसे वह मन-ही-मन ज़ोरोंसे जप करने लगी है—वे अच्छे हों या बुरे, वे ही मेरे जीवनाधार हैं।

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः
वीतरागभयक्रोधः ——"

सिर्फ यति-धर्मका ही नहीं, बल्कि सती-धर्मका भी यही लक्षण है ? वह धर्म सुख-दुःखसे परे है,—उसमें न क्रोध है, न भय। और अनुराग ? उसकी भी क्या आवश्यकता है ? अनुरागमें माँगने-मिलनेका हिसाब रहता है, भक्ति उसमें भी बड़ी है। उसमें आवेदन नहीं है, निवेदन है। सती-धर्म निर्व्यक्तिक है, जिसे अंगरेज़ीमें कहते हैं 'इम्पर्सनल'। मधुसूदन नामक व्यक्तिमें दोष हो सकते हैं, परन्तु पतिदेव नामक भाव-

पदार्थ निर्विकार निरंजन है। उसी व्यक्तित्व-हीन ध्यान-रूपके सामने कुमुदिनीने एकाग्र चित्तसे अपनेको अर्पण कर दिया।

[१४]

घोपाल-तालके किनारेका जंगल साफ हो गया,—अब तो पहचाना भी नहीं जाता। ज़मीन बिलकुल चौरस हो गई है, बीच-बीचमें कहीं-कहीं सुरखीसे रँगी हुई सड़क है, सड़कके दोनों किनारे बत्तियोंके खम्भे हैं। तालकी काई और कीच-कद्दड़ सब निकाल दिया गया है। घाटके पास छोटी-छोटी दो नई विलायती नावें बँधी हैं; एकपर लिखा है "मधुमती" और एकपर "मधुकरी"। जिस तम्बूमें राजा-बहादुर स्वयं ठहरेंगे उसके सामने एक फ्रेममें पीली बनातपर लाल रेशमसे लिखा हुआ है—"मधुचक्र" एक तम्बू अन्तःपुरका, वहाँसे लेकर तालके पानी तक चटाईसे घिरा हुआ है। घाटके ऊपर एक पुराना नीमका पेड़ है, उसपर एक तख़्ता लगा हुआ है, जिसपर लिखा है—"मधुसागर"। कुछ थोड़ीसी ज़मीनपर तरह-तरहके फूलोंके गमले लगे हुए हैं—गेंदा, बेला, मोलसिरी, सूर्यमुखी, गुलाब, चमेली, पत्ता-बहार; लकड़ीके चौखूटे बकसमें तरह-तरहके रंगीन विलायती फूल शोभा दे रहे हैं। बीचमें एक छोटासा पक्का तालाब है, उसके ठीक बीचों-बीच एक लोहेकी ढली नग्न स्त्री-मूर्ति है, मुँहसे शंख लगाये हुए है, उसमेंसे फुहारेका पानी निकला करेगा। इस स्थानका नाम रखा गया है—"मधुकुंज"। प्रवेश करनेके रास्तेपर एक लोहेका फाटक है, जिसपर नक्काशीका काम हो रहा है, उसपर ध्वजा फहरा रही है; ध्वजापर लिखा है—"मधुपुरी"। चारों ओर 'मधु' नामकी छाप है। तरह-तरहके रंग-बिरंगे कपड़ों और कनातोंसे, चँदोओं और ध्वजाओंसे,

रंगीन फूलों और चीनी लालटेनोंसे सहसा बनी हुई इस 'माया-पुरी' को देखनेके लिये दूर-दूरसे लोगोंके झुण्ड-के-झुण्ड आने लगे। मधुपुरीके ठाट निराले हैं; चमचमाती हुई चपरास डाले, लाल फीतादार पीली पगड़ी पहने, असली लाल बनातकी जरी-दार वर्दी डाटे चपरासियोंकी टोली-की-टोली विलायती जूते मच-मचाती हुई इधरसे उधर घूम रही है। शामको खाली बन्दूकोंके धड़ाके करते हैं, दिन-रात घंटे-घंटेपर घंटा बजाते हैं, कोई-कोई तो चमड़ेके कमरबन्दसे लटकती हुई विलायती तलवारसे जमीं-दारकी ज़मीनको ही खोदे डालते हैं। और चटर्जियोंके बरकंदाज तो पुराने ज़मानेकी भद्दी पोशाक पहनकर मारे शर्मके घरसे निकलना ही नहीं चाहते। रंग-ढंग देखकर चटर्जी-परिवारकी देहमें आग लग गई। नूरनगरके कलेजेपर नुकीला डंडा गाड़कर उसपर आज घोपालोंकी जय-पताका उड़ रही है।

शुभ परिणयकी यह सूचना है।

[१५]

विप्रदासने—नवगोपालको बुलाकर कहा—"नबू, आडम्बर-की होड़ा-होड़ी करना—यह तो ओछे आदमियोंका काम है।"

नवगोपालने कहा—"चतुर्मुखने झोली झाड़कर ही इतने ज़्यादा आदमी बना डाले हैं; चार मुँह सिर्फ बड़ी-बड़ी बातें बनानेके लिये ही हैं। रुपयेमें साढ़े-पन्द्रह आना आदमी ओछे हैं, उनसे सम्मानकी रक्षा करनी हो, तो ओछोंका ही रास्ता पकड़ना पड़ेगा।"

विप्रदासने कहा—"उसमें भी तुम न जीत सकोगे। उससे बेहतर यह होगा कि सात्विक भावसे काम किया जाय, यही

अच्छा रहेगा। योग्य ब्राह्मण पण्डितको बुलाकर अपने सामवेदके अनुसार शुद्ध अनुष्ठान कराया जाय। वे राजा हो गये हैं, करने दो उन्हें आडम्बर; हम ब्राह्मण हैं, पुण्य-कर्म हमारा है।"

नवगोपालने कहा—"भाई साहब, आप पत्रा भूलते हो, यह सतयुग नहीं है। पानीकी नाव चलाना चाहते हो कीचके ऊपरसे! तुम्हारी इतनी रैयत हैं—तनू सरकार है तुम्पारा ताल्लुक़ेदार—भादू प्रामाणिक, करमदीन विश्वास, पाँचू मण्डल,—ये लोग क्या तुम्हारी उस 'स्वाहा-स्वाहा' की पंडिताई का एक भी अक्षर समझ सकेंगे? ये क्या याज्ञवल्क्यके प्रपौत्र हैं? इनकी तो छाती फट जायगी। तुम चुप बने रहना, तुम्हें कुछ भी चिन्ता करनेकी ज़रूरत नहीं।"

नवगोपाल रैयतोंसे मिलकर कमर बाँधकर जुट पड़ा। सबने छाती ठोंककर कहा—"रुपयेकी क्या फ़िकर है!" नौकर-चाकर पियादे-बरकंदाज वग़ैरह सभी छोटे-बड़े कर्मचारियोंने नई लाल बनातकी पोशाक चढ़ाई, रंगीन धोतियाँ पहन लीं। लाल कपड़ेसे मड़ा हुआ, झालर और झंडियोंदार एक नौबतखाना खड़ा किया गया, सात कोस दूरसे उसकी चोटी दीखती है। दोनों साझीदारोंने मिलकर अपने चार-चार हाथी निकाले, उनपर हौदा और साज चढ़ाया गया। जब तब बिना प्रयोजन 'घोषाल-ताल'के सामनेकी सड़कपर वे सूँड़ हिला-हिलाकर टहला करते हैं, गलेमें टन-टन घंटा बजा करता है। और चाहे जो हो, सनके बोरोंमेंसे हाथी नहीं निकलते, यह कहकर सब हो-हो करके भर-पेट हँस लिये।

•

अगहन सुदी दसमीका ब्याह है; अब सिर्फ़ दस दिन और रह गये हैं। इतनेमें लोगोंके मुँहसे मालूम हुआ कि राजा आ रहे हैं दल-बल सहित! फिकर हो गई, क्या करना चाहिए? मधुसूदनने

इन्हें कोई सूचना नहीं दी है। शायद मनमें सोचा होगा, भद्रता साधारण लोगोंके लिये है, राजाओंके लिए अभद्रता ही उचित है। ऐसी दशामें खुद ही अपनी तरफसे स्टेशन जाकर उनका स्वागत करना—क्या ठीक होगा ? खबर न देनेका माकूल जवाब तो खबर न लेना ही है।

सब-कुछ सत्य है, परन्तु युक्तिके द्वारा संसार में दुःखोंसे छुटकारा नहीं मिल सकता। कुमुदपर विप्रदासका बड़ा गहरा स्नेह है; कहीं उसके मनमें कोई चोट न पहुँचे, यह चिन्ता उनके सब तर्कोंको पीछे छोड़ जाती है। स्त्रियोंको कष्ट पहुँचाना बहुत ही सहज है; क्योंकि उनका मर्मस्थान चारों तरफसे खुला हुआ है। जबरदस्तोंके हाथ ही समाजने चाबुक सौंपी है; और जो बिना कवचके हैं, उनकी स्पर्श-मात्रसे डरनेवाली पीठकी हिमायत लेनेवाला कोई विधि-विधान ही नहीं है। ऐसी दशामें स्नेहके धनको रोष-विद्वेष-ईर्ष्याके तूफानमें बहाकर अपने अभिमानकी रक्षाकी कोशिश करना कायरता है,—विप्रदासके मनका यही भाव है।

विप्रदास किसीसे बिना कुछ कहे-सुने ही घोड़ेपर सवार होकर स्टेशन चल दिये। गाड़ी भी आ पहुँची,—क़रीब पाँच बजे होंगे। सेलून गाड़ी से राजा-साहब दलबल-सहित उतरे। विप्रदासको देखकर सूखा संक्षिप्त नमस्कार करके बोले—"ओफ्फोह! क्यों आपने क्यों तकलीफ की ?"

विप्रदास—"आप भी खूब हैं! पहले-पहल हमारे देशमें आना हुआ है, स्वागतके लिये भी न आता ?

राजा—"आप भूलते हैं। आपके देशमें अभी नहीं आया। वह आना होगा ब्याहके दिन।"

विप्रदास इसके मानी नहीं समझ सके। स्टेशनमें इतने भीड़-भब्भड़में तर्क करनेकी जगह नहीं, इसलिये उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा—"घाटपर बजरा तय्यार है।"

राजाने कहा—"उसकी जरूरत न होगी, हमारा स्टीम-लंच आ गया है।"

विप्रदासने समझ लिया कि मौका नहीं है। तो भी, फिर एक बार कहा—"खाने-पीनेकी चीजें, रसोईकी नाव, सब-कुछ तय्यार है।"

"क्यों इतना व्यर्थ उत्पात किया! किसी चीजकी जरूरत न होगी। देखिये, एक बात याद रखियेगा, मैं आया हूँ अपने पुरखोंकी जन्मभूमिमें—आपके देशमें नहीं। ब्याहके दिन आपके यहाँ जानेकी बात है।"

विप्रदासने समझ लिया कि अब नरम होनेकी कोई आशा नहीं। कलेजेके भीतर धड़का-सा बैठ गया। स्टेशनके वेटिङ्ग-रूममें जाकर आराम-कुर्सीपर लेट गये। जाड़ोंकी सन्ध्या थी, अँधेरा होता आता था। उत्तरमें गाड़ी आनेकी घटी बजी, स्टेशनकी बत्तियाँ जल गईं,—लगाम ढीली छोड़कर घोड़ेको अपनी मरजीके माफिक चलनेकी आजादी देकर विप्रदास जब घर पहुँचे, तब आधी रात हो चुकी थी। कहाँ गये थे, कैसी बीती—किसीसे कुछ कहा नहीं।

उसी दिन रातको ठढ लगकर विप्रदासको खाँसी शुरू हो गई। धीरे-धीरे बढ़ती ही गई। लापरवाही की; मगर इससे बीमारी और भी पकड़ बैठी। आखिरकार कुमुदने उन्हें बड़ी मुश्किलसे कह-सुनकर बिछौनेपर सुलाया। अनुष्ठानका तमाम भार आकर पड़ा नवगोपालपर।

[१६]

दो दिनके बाद ही नवगोपालने आकर कहा—"क्या करूँ, कुछ सलाह दो।"

विप्रदासने बड़ी उत्सुकतासे पूछा—"क्यों? क्या हुआ?"

"साथमें कुछ साहब आये हैं,—शायद दलाल होंगे या शराबकी

दूकानके विलायती कलवार, कल पीरपुरके टापूसे कुछ नहीं तो दो सौ बगुला मार लाये हैं। आज गये हैं चंदनदहकी झीलपर। ऐसे जाड़े के दिनोंमें, वहाँ बतकोंका मौसम है,—राक्षसी वजनकी जीव-हत्या होगी—अहीरावण, महीरावण हिड़िम्बा, घटोत्कचसे लेकर कुम्भकर्ण तकको पिण्ड देने योग्य,—प्रेतलोकमें दशानन रावणका भी मुँह थक जायगा।"

विप्रदास दङ्ग रह गये, कुछ न बोले।

नवगोपालने कहा—"तुम्हारा ही हुक्म है कि उस झीलपर कोई शिकार न कर सकेगा। उस बार ज़िलेके मजिस्ट्रेट तकको रोक दिया था, हमलोग तो डर गये थे कि कहीं तुम्हें भी बतक समझकर भूलसे गोली न मार दे। वह भला आदमी था, चला गया; मगर ये तो गो-मृग-द्विज किसीकी भी माननेवाले आदमी नहीं हैं। फिर भी, अगर कहो तो एक बार कह—"

विप्रदास उतावले होकर बोल उठे—"नहीं, नहीं, कुछ मत कहो।"

चीतेके शिकारमें विप्रदास ज़िले-भरमें सबसे अव्वल हैं। पहले कभी एक बार चिड़िया मारकर उनके मनमें ऐसा धिक्कार आया कि तबसे उन्होंने अपने इलाकेमें चिड़ियोंका शिकार बिलकुल बन्द ही कर दिया।

सिरहानेके पास बैठी हुई कुमुद विप्रदासके माथेपर हाथ फेर रही थी। नवगोपालके चले जानेपर उसने मुँहपर कठोरता लाकर कहा—"भइया, मना करवा दो।"

"क्या मना करवा दूँ?"

"पक्षियोंका मारना।"

"वे उल्टा समझ जायँगे कुमू, उन्हें सहन न होगा।"

"हाँ, सो समझने दो। मान-अपमान सिर्फ उनका अकेलेका ही नहीं है।"

विप्रदास कुमुदके मुँहकी ओर देखकर मन-ही-मन हँसे। वे जानते हैं, कुमुद कठिन निष्ठाके साथ मन-ही-मन सती-धर्मका अनुशीलन कर रही है। छायेवानुगतास्वच्छा। मामूली पक्षीकी जानके लिये कहीं कायाके साथ छायाका विच्छेद न हो जाय ?

विप्रदासने स्नेहके स्वरमें कहा—"गुस्सा मत हो, कुमुद, मैंने भी तो किसी दिन चिड़िया मारी है। तब उसे मैं अन्याय ही न समझ सका था। इनकी भी आज वही दशा है।"

फिर क्या था, अथक उत्साहके साथ चलने लगा शिकार, पिकनिक और शामको बैंड बाजेके साथ अंगरेज़ अतिथियोंका नाच। तीसरे पहर टेनिस ; उसके सिवा तालमें नावोंपर तीन-तीन चार-चार परदे चढ़ाकर शर्त लगाकर पालका खेल ;—उसीको देखनेके लिए गाँवके आदमी तालके किनारे जमा हो जाते हैं। रातको डिनरके बाद आवाज़ें उठती हैं—"फौर ही इज़ ए जौली गुड् फेलो।" इन सब विलासोंके मुख्य नायक और नायिकाएँ हैं साहब और मेमें ; इसीसे गाँवके लोग चौंक उठते हैं। ये लोग जब सोलेके टोप पहन-पहनकर हाथमें मछली फँसानेकी छड़ी लिये मछली पकड़ने बैठते हैं, तब वह दृश्य देखते ही बनता है। दूसरी तरफ लाठीका खेल, कुश्ती, नाव चलानेकी होड़, 'जात्रा' या रहस्य, शौक़का थियेटर और चार-चार हाथियोंका घूमना,—इसके सामने है ही क्या ?

ब्याहके दो दिन पहले तेल-ताई है। क़ीमती ज़ेवरोंसे लेकर खेलनेकी गुड़िया तक जितनी भी सौगात वरपक्षकी तरफसे आई, उसकी छटा देखकर लोग दंग रह गये। उसके लानेवाले बाहनों-की संख्या कितनी थी ! चटर्जियोंने भी खूब खर्चके साथ उन्हें बिदा किया।

अन्तमें सर्व-साधारणको खिलाने-पिलानेके बारेमें वैवाहिक कुरुक्षेत्रका द्रोणपर्व शुरू हुआ।

उस दिन ढोल पिटवाकर सर्वसाधारणको निमन्त्रण दिया गया—'मधुसागर' के किनारे 'मधुपुरी'में आनेके लिए! बुलाये ग़ैर-बुलाये सब आ सकते हैं, किसीके लिए रुकावट नहीं है। नवगोपाल मारे गुस्सेके आग-बबूला हो गये।—"हौसला तो देखो! हम लोग ठहरे ज़मींदार, यहाँ उनको क्या हक़ है कि वे अपनी 'मधुपुरी' खड़ी कर दें?

इधर भोजकी तय्यारियाँ खूब व्यापक-रूपसे ही सबके सामने प्रकाशमान हो उठीं। मामूली फलाहार न था। दही, बूरा, खीर, मछली, खोआ, सन्देश, बरफ़ी, मैदा, बेसन, आटा, घी वग़ैरह बड़ी धूमधामके साथ आने लगा। पेड़ोंके नीचे बड़ी बड़ी भट्टियाँ बनाई गईं; तरह-तरहके छोटे-बड़े हंडे, कड़ाहे, परात, कलसे, गंगाल, मटुके वग़ैरह मँगाये गये; कतार-की-कतार बैलगाड़ियों पर लदकर आलू, बैंगन, केले, कद्दू, घुइयाँ वग़ैरह तरह-तरहकी साग-तरकारियाँ आने लगीं। भोज होगा शामको—हंडोंकी रोशनीमें।

इधर चटर्जियोंके घर मध्याह्न-भोजन है। रैयतोंकी टोली-की-टोलीने मिलकर अपने आप ही सब तय्यारियाँ कर ली हैं। हिन्दुओंके लिए अलग जगह है, मुसलमानोंके लिए अलग। मुसलमान रैयतोंकी संख्या ही अधिक है,—तड़के ही, सूरज निकलने से पहले ही उन लोगोंने भट्टियाँ सुलगा दी हैं। भोजनकी सामग्री चाहे उतनी न हो, पर चटर्जियोंका जयकार हो रहा है उससे चौगुना। स्वयं नवगोपाल बाबूने शामको पाँच बजे तक भूखे रहकर अपने सामने सबको खिलाया-पिलाया। उसके बाद फिर भिखारियोंको बाँटा गया।

मातबर प्रजाओंने अपने आप ही दान-वितरणकी व्यवस्था की। कलध्वनि और जयध्वनिने पवनमें समुद्र-मन्थन उपस्थित कर दिया।

मधुपुरीमें दिन-भर भट्टियाँ धधकीं। तरह-तरहके भोजन बने। उसकी सुगन्धसे बहुत दूर तक आमोदित हो गया। सकोरे, भोलुए और पत्तलोंका ढेर लग गया। तरकारी और मछलीके फेंके हुए छीलनपर कौओंकी काँव-काँव खूब जोरोंमें जारी है—दुनिया-भरके कुत्ते भी जमा हो गये हैं और आपसमें खूब छीना-झपटी कर रहे हैं। समय हो आया, रोशनियाँ जल गईं, मटिया-बुर्जकी रसनचौकीने* इमन-कल्याणसे लेकर केदारा तक तमाम राग अलाप डाले। अनुचर-परिचर लोग रह-रहकर उद्विग्नताके साथ राजा-बहादुरके कानोंके पास फुस-फुस करके जतला रहे हैं कि अभी तक खानेवाले लोग काफी नहीं आये। आज पेंठका दिन है, दूसरे इलाकेसे जो पेंठ करने आये थे, उन्हींमेंसे कोई कोई पत्तल बिछी देखकर बैठ गये हैं। कंगले-भिखारी भी बहुत थोड़े आये हैं।

मधुसूदनने सूने तम्बूके अन्दर जाकर एक गहरा हुंकारा लिया—"हूँ!"

छोटे भाई राधूने आकर कहा—"भइया, अब हो चुका, चलो!"

"कहाँ?"

"कलकत्ते लौट चलें। ये लोग सब बदमाशी कर रहे हैं। इनसे भी बड़े-बड़े घरकी लड़कियाँ तुम्हारी जरा छँगुनीके हिलाते ही आ जायँगी। सिर्फ एक बार 'तू' करनेकी जरूरत है।"

---

* ब्याह-शादियोंमें बजनेवाले ढोल, ताशे, शहनाई आदि प्राचीन बाजोंकी चौकडी। —अ०

मधुसूदन गरजकर बोला—"जा, चला जा!"

सौ वर्ष पहले जैसी बीती थी, आज भी वैसी ही बीती। इस बार भी एक पत्तके आडम्बरकी चोटी बहुत ऊँची बनाई गई थी, दूसरे पत्तने उसे रास्तेसे निकलने न दिया, परन्तु असली हार-जीत बाहरसे देखनेमें नहीं आती। उसका त्तेत्र मानव-दृष्टिके अगोचर है।

चटर्जीकी रैयत ख़ूब हँस ली। विप्रदास रोग-शय्यापर थे; उनके कानों तक कुछ पहुँच ही न पाया।

[१७]

ब्याहके दिन, राजाका हुक्म है, लड़कीवालोंके घर जानेके रास्तेमें धूमधाम क़तई बन्द! रोशनी न हुई, बाजे भी न बजे, साथमें सिर्फ़ पुरोहित थे और दो भाट। पालकीमें बैठकर चुपके-से कब बरात आ गई, लोगोंको सहसा पता भी न चला। इधर मधुपुरीमें बड़े-भारी तम्बूके भीतर रोशनी जलाकर बैण्ड बाजेके साथ बड़ी धूम-धामसे बराती लोग भोजन और आमोद-प्रमोदमें लगे हुए हैं। नवगोपाल समझ गये, यह उसका उलटा जवाब है। ऐसे मौक़ोंपर कन्यापत्तकी ओरसे बड़ी आरज़ू-बिनती-के साथ वरपत्तको मनाना पड़ता है,—नवगोपालने कुछ भी न किया। एक बार मुँहसे पूछा तक नहीं कि बराती लोग कहाँ रह गये।

कुमुदिनी सज-धजकर विवाह-मण्डपमें जानेसे पहले भइयाको प्रणाम करने आई; उसका सारा शरीर काँप रहा है। विप्रदासको तब एक सौ पाँच डिग्री बुखार था; छाती और पीठपर राई-सरसोंका परलेप लगा हुआ था; उनके पैरोंपर सिर रखकर

कुमुदिनीसे रहा न गया, सिसक-सिसक कर रो उठी। क्षेमा-बुआने हाथसे उसका मुँह दाबकर कहा—"छिः, ऐसे नहीं रोया करते।"

विप्रदासने ज़रा उठकर कुमुदको हाथसे पकड़कर पासमें बिठाया, फिर उसके मुँहकी तरफ कुछ देर तक देखते रहे—दोनों आँखोंसे आँसू ढलक-ढलककर गिरने लगे। क्षेमा-बुआने कहा--"बखत तो हो चला।"

विप्रदासने कुमुदके सिरपर हाथ रखकर भर्राई हुई आवाज़में कहा—"सर्वशुभदाता कल्याण करें।" कहनेके साथ ही धपसे बिछौनेपर लेट गये।

विवाहके समय, शुरूसे अन्त तक कुमुदिनीकी आँखोंसे आँसू गिरते रहे। वरके हाथपर जब हाथ रखा, तब उसके हाथ बर्फ़से ठंडे और थर-थर काँप रहे थे। शुभ-दृष्टिके समय उसने क्या पतिका मुँह देखा है? शायद नहीं देखा। इन लोगोंके व्यवहारसे उसका हृदय पतिसे कुछ डर-सा गया है। चिरैयाको ऐसा मालूम पड़ रहा है कि मानो उसके लिए घोंसला नहीं है—जाल है।

मधुसूदन देखनेमें बदसूरत नहीं है, पर है बड़ा कठिन। काले मुँहपर दृष्टि डालते ही जो सबसे पहले नज़र आती है, वह है चिड़ियाकी चोंचकी-सी बड़ी बाँकी नाक—ओठोंके सामने तक झुककर जैसे पहरा दे रही हो! चौड़ा ढालू माथा घनी भौंहोंपर रुके हुए स्रोतकी तरह फूला हुआ है। उन भौंहोंकी छाया-तले, संकुचित तिरछी आँखोंकी तीव्र दृष्टि है। दाढ़ी और मूँछें उस्तरेसे साफ, ओठ दबे-हुए और ठोढ़ी भारी है। हब्सियोंकी तरह कुँकड़े हुए कड़े बाल हैं—सिरकी चमड़ीके पास तक खूब बारीक छँटे हुए हैं। खूब गठीला और चुस्त शरीर है; जितनी उमर है,

उससे कम ही जँचती है, सिर्फ दोनों कनपटियोंके ऊपरके बाल कुछ-कुछ सफेद हो गये हैं। क़दका नाटा है, खड़े होनेपर सिर कुमुदिनीके बराबर रहता है। हाथोंपर रोएँ बहुत हैं और देहके मुकाबले वे कुछ छोटे मालूम देते हैं। देखते ही मालूम हो जाता है कि आदमी बिलकुल ठोस है; सिरसे पैर तक हरवक्त जैसे कोई प्रतीज्ञा मनसूबे बाँधकर बैठी हो। मानो भाग्य-देवताकी तोपसे कोई गोला निकलकर एक ही गतिसे उड़ा जा रहा हो। देखते ही समझमें आ जाता है कि फजूलकी बात, फजूल विषय और फजूल आदमियोंकी तरफ ध्यान देनेको उसके पास बिलकुल भी समय नहीं है।

विवाह इस ढंगसे हुआ कि सभीको बुरा मालूम दिया। वरपक्ष और कन्यापक्षके पहले ही संस्पर्शमें ऐसी एक बेसुरी झन-कार उठी कि उसमें उत्सवका संगीत ही डूब गया। रह-रहकर कुमुदके मनका एक प्रश्न अभिमानसे कलेजेको ढकेलकर बाहर निकला आता है—"तो क्या भगवानने मुझे भरमा दिया?" संशयको जी-जानसे दाबे रखती, बन्द घरमें अकेली बैठकर बार-बार ज़मीनसे सिर छुआकर प्रणाम करती। मन-ही-मन कहती—"मन कमज़ोर न होने पावे।' सबसे ज्यादा कठिनाई आ पड़ती है भइयासे संशय छिपानेमें।

माकी मृत्युके बादसे कुमुदिनीकी सेवापर ही विप्रदास रह रहे थे। कपड़े-लत्ते, दिन-ख़र्चके लिए रुपये-पैसे, किताबोंकी आलमारी, घोड़ेका दाना, बन्दूकका माँजना-घिसना, कुत्तेकी सेवा-टहल, कैमेराकी हिफाज़त, बाजोंकी देख-भाल, सोने-बैठनेके कमरेकी सफाई—सब कुछ कुमुदिनीके ही हाथमें है। इतना अधिक अभ्यास हो गया है कि रोजके काम-धन्धोंमें कुमुदका हाथ कहींपर न होनेसे उन्हें कोई चीज़ रुचती ही नहीं। और

कुमुदकी यह दुःसाध्य कोशिश थी कि बिदा होनेसे पहले जो उसने रोग-शय्यापर भइयाकी अन्तमें कई दिन तक सेवा की है, उसपर उसकी अपनी चिन्ताकी कोई छाया न पड़े। कुमुदके 'इसराज' बजानेकी निपुणतापर विप्रदासको बड़ा गर्व है। लजवन्ती कुमुद सहजमें बजानेको राजी नहीं होती, परन्तु इधर उसने तो दो दिनसे अपने-आप भइयाको कनाडा मालकोषका राग सुनाया है। इसी रागमें उसके देवताका स्तवन था, उसकी प्रार्थना थी, उसकी आशंका थी, उसका आत्म-निवेदन था। विप्रदास चुपचाप आँखें मींचकर सुनते और बीच-बीचमें फरमाइश करते—सिन्धु, बिहाग, भैरवी,—जिन स्वरोंमें विच्छेद वेदनाका क्रन्दन बजता है। उन स्वरोंमें भाई-बहन दोनों की व्यथा एक होकर मिल जाती। मुँहसे दोनोंने कुछ नहीं कहा, न किसीको किसीने सान्त्वना दी, और न अपना दुःख ही व्यक्त किया।

विप्रदासका बुखार, खाँसी, छातीका दर्द दूर न हुआ, बल्कि बढ़ने लगा। डाक्टर कहता है—'इन्फ्लूएञ्जा है, सम्भव है न्यूमोनिया हो जाय, खूब सावधानीसे रहना चाहिए।' कुमुदके मनमें उद्वेगकी सीमा नहीं है। बात थी कि बढ़ारके दिन 'कालरात्रि'* यहीं बिताकर दूसरे दिन कलकत्ते रवाना होंगे, परन्तु अब सुनते हैं, मधुसूदनने अकस्मात् प्रतिज्ञा कर ली है कि ब्याहके दूसरे ही दिन कुमुदको लेकर चले जायँगे। कुमुदने समझा—यह रिवाजके लिहाजसे नहीं, जरूरतके लिए नहीं, प्रेमके लिए नहीं, बल्कि शासनके लिए किया जा रहा है। ऐसी दशामें अनुग्रहकी भीख माँगनेमें अभिमानिनियोंके सिरपर वज्र-

---

* बंगालकी एक वैवाहिक प्रथा जिसके अनुसार दूल्हा-दुलहिन चौबीस घंटे तक एक दूसरेको देख नहीं सकते। —अ०

सा पड़ता है। फिर भी कुमुदने सिर नीचा करके लज्जाको दूरकर काँपती हुई ज़बानसे विवाहकी रातको पतिके पास जाकर यह प्रार्थना की थी कि बस, सिर्फ दो दिन के लिए और उसे मायकेमें रहने दिया जाय, जिससे भइयाको वह ज़रा अच्छा देखकर जा सके। मधुसूदनने संक्षेपमें कहा—"सब तय्यारियाँ हो चुकी हैं।" ऐसी वज्रसे बँधी हुई इकतरफा तय्यारियां! कुमुदकी मर्मान्तिक वेदनाके लिए उसमें तिल-भर भी स्थान नहीं!

उसके बाद, मधुसूदनने रातको उससे बात करनेकी कोशिश की मगर उसने एकका जवाब न दिया, बिछौनेके एक किनारेसे मुँह फेरकर पड़ी रही।

तब तक अँधेरा था, चिड़ियोंकी पहली चुहचुहाहट सुनते ही वह बिछौनेसे उठकर चली गई।

विप्रदास सारी रात तड़फड़ाते रहे हैं। सन्ध्याके समय चढ़े-बुखारमें ही विवाह-मण्डपमें जानेको तय्यार हो गये थे। डाक्टरने बड़ी मुशकिलसे उन्हें सम्हाल रखा। बराबर आदमी भेजकर खबर लेते रहे। ये ख़बरें युद्धके समयकी ख़बरोंके समान अधिकांश बनावटी होती थीं। विप्रदासने पूछा—"बरात कब आई? बाजे-आजे तो नहीं सुनाई दिये?"

संवाददाता शिबूने कहा—"जमाई साहब बड़े समझदार हैं,—आप बीमार हैं, सुनकर बन्द करवा दिये—बरातियोंके पैरोंकी आहट तक न सुनाई दी।"

"क्योंरे शिबू, खाने-पीनेकी चीज-वस्त सब ठीक थी, पूर पड़ गई थी? मुझे उसीकी फिकर थी, यह तो कलकत्ता नहीं है, गाँव ठहरा!"

"ख़ूब, ख़ूब! कितनी तो फेंकनी पड़ी। अगर उतने ही और आ जाते, तो भी पूर पड़ जाती।"

"वे लोग खुश हुए या नहीं ?"

"एक भी शिकायत किसीके मुँहसे नहीं सुनी गई। जरा भी नहीं। और भी तो इतने ब्याह देखे हैं, बरातियोंकी ज्यादतियोंके मारे लड़कीवालेकी नाकमें दम आ जाता है। ये लोग ऐसे भलेमानस निकले कि कुछ मालूम भी न पड़ा।"

विप्रदासने कहा—"कलकत्तेके रहनेवाले हैं न, इसीसे इतनी भलमनसाहत पाई जाती है। वे समझते हैं, कि जिस घरसे लड़की लेंगे, उनका अपमान करना अपना ही अपमान है।"

"हाँ, हाँ, हुजूरने जो बात कही, उसे मैं उन लोगोंको सुना दूँगा। सुनकर खुश हो जायँगे।"

कुमुद कल शामको ही समझ गई थी कि बीमारी आगे बढ़ रही है। फिर भी वह भइयाकी सेवा न कर सकेगी, यह दुःख हरदम उसके हृदयके भीतर जालमें फँसी चिरैयाकी तरह छटपटाने लगा। कुमुदके हाथकी सेवा तो उसके भइयाके लिए दवासे भी बढ़कर है।

नहा-धोकर ठाकुरजीको फूल चढ़ाकर कुमुद जब भइयाके कमरेमें गई, तब सूर्य भी न निकले थे। कठिन रोगके साथ बहुत देर तक लड़ाई लड़नेके बाद क्षण-भरके लिए जो छुट्टी पानेके समय अवसादका वैराग्य आता है, उस वैराग्यसे विप्रदासका मन तब शिथिल हो रहा था। जीवनकी आसक्ति और घर-गिरस्तीकी चिन्ता, यह सब कटे हुए सूखे खेतकी तरह फीकी मालूम पड़ने लगी। सारी रात दरवाजा बन्द था, डाक्टरने तड़के ही आकर पूरबकी ओरका जंगला खोल दिया है। ओससे भीगे-हुए पीपलके पत्तोंकी आड़में अरुण आकाशकी आभा धीरे-धीरे शुभ्र होती जा रही है—पासकी नदीमें महाजनोंकी नावोंके थिगली-लगे पाल उस अरुण आकाशकी गोदमें फूले नहीं समाते। नौबतमें करुण-स्वरमें रामकेलि बज रही है।

कुमुदने पलंगके पास जाकर अपने दोनों ठंढे हाथमें भइयाके सूखे गरम हाथ उठाकर रख लिये। विप्रदासका टेरियर कुत्ता पलंगके नीचे उदास होकर चुपचाप सो रहा था। कुमुदके पलंगपर बैठते ही वह उठ खड़ा हुआ, और उसकी गोदमें आगेके दोनों पैर रखकर पूँछ हिलाता हुआ करुण आँखोंसे क्षीण आर्तस्वरमें न जाने क्या पूछने लगा।

विप्रदासके मनमें भीतर-ही-भीतर कोई एक चिन्ताकी धारा बह रही थी, इसीसे सहसा बिना किसी सिलसिलेके उनके मुँहसे निकल पड़ा—"बहन, असलमें कुछ भी नहीं है,—कौन बड़ा है, कौन छोटा; कौन ऊपर है, कौन नीचे! ये सब बनाई हुई बातें हैं। झागके अन्दर बुदबुदोंके लिये कहाँ किसका स्थान है,—इससे यह बनता बिगड़ता है! अपने भीतर आप सरल बनकर रहना,—कोई भी तुझे मार न सकेगा।"

"मुझे आशीर्वाद दो भइया, मुझे आशीर्वाद दो"—कहकर कुमुदने दोनों हाथोंसे अपना मुँह ढककर रोना छिपा लिया।

विप्रदास तकिएके सहारे ज़रा उठकर बैठ गये, और कुमुदका सिर अपनी ओर खींचकर उसका माथा चूमा।

डाक्टरने घरमें आकर कहा—"बस, रहने दो, कुमुद बहन, अब उन्हें ज़रा शान्त रहने की ज़रूरत है।"

कुमुदने रोगीके तकियेको ज़रा दाब-दूबकर ठीक कर दिया, अच्छी तरह कपड़े उढ़ा दिये; पासकी तिपाईपरकी चीजें सम्हाल दीं, फिर भइयाके कानोंके पास कोमल-स्वरसे कहा—"आराम होते ही कलकत्ते आना भइया, वहाँ तुम्हें मैं ज़रूर देखूँ।"

विप्रदासने अपनी बड़ी बड़ी स्नेहपूर्ण आँखोंको कुमुदके मुँहपर स्थिर रखकर कहा—"कुमू, पश्चिमके बादल आते हैं पूरबको, और पूरबके जाते हैं पश्चिमको,—यह सब-कुछ हवासे

होता है। संसारमें यही हवा चल रही है। बादलकी तरह इसे स्वाभाविक जान लेना, बहन। अबसे, हम लोगोंकी ज्यादा फ़िकर मत करना। जहाँ जा रही है, वहाँ तू लक्ष्मीका आसन घेरे रहना—यही मेरा सम्पूर्ण हृदयका आशीर्वाद है। तुझसे हम लोग और कुछ नहीं चाहते।"

भइयाके पैरोंके पास कुमुद सिर रखकर पड़ी रही। "मुझे अब और कुछ नहीं चाहिए। यहाँकी प्रतिदिनकी जीवन-यात्रामें मेरा ज़रा भी हाथ न रहेगा!"—क्षण-भरमें इतनी बड़ी विच्छेद-की बात उसके मनमें नहीं समा सकती। तूफान जब नावको किनारेसे खींच ले जाता है, तब लंगर जैसे मिट्टीको जकड़कर पकड़े रहना चाहता है, भइयाके पैरोंके पास कुमुदिनीका भी वैसा ही अन्तिम व्यग्रताका बन्धन था। डाक्टरने फिर आकर धीरेसे कहा—"बस करो, बहन।" कहकर अपनी अश्रुपूर्ण आँखें पोंछ डालीं। कुमुद—कमरेसे निकलकर, दरवाज़ेके बाहर जो चौकी बिछी थी उसपर बैठकर—आँचलसे मुँह ढककर रोने लगी। सहसा याद उठ आई भइयाके 'बेसी' घोड़ेकी; उसे वह अपने हाथसे खिलाकर जायगी, इसके लिये कल रातको ही उसने गुड़ मिले हुए आटेकी मीठी रोटी बना रखी है। सईस आज सुबह ही उसे पीछेके बगीचेमें छोड़ आया है। कुमुदने वहाँ जाकर देखा, घोड़ा आमड़ेके पेड़के नीचे घास खाता फिर रहा है। दूरसे कुमुदके पैरोंकी आहट सुनकर उसने कान खड़े कर दिये, और देखते ही उसे चींहीं-हींहीं करके पुकारने लगा। बायाँ हाथ उसकी गर्दनपर रखकर दाहिने हाथसे कुमुद उसे रोटी खिलाने लगी। खाते-खाते वह अपनी बड़ी-बड़ी काली डबडबाती हुई आँखोंसे कुमुदके मुँहकी ओर देखने लगा। खिला-पिलाकर कुमुदने 'बेसी' का माथा चूमा, और जल्दीसे वहाँ से भाग आई।

[१८]

विप्रदासको भरोसा था कि मधुसूदन इन दिनों ज़रूर एक बार आकर मिल जायगा। जब वह नहीं आया, तो उन्हें समझनेमें देर न लगी कि दोनों परिवारका यह विवाह-संबन्ध ही परस्परके विच्छेदमें खड्ग बनकर आया है। रोगकी अत्यन्त क्लान्तिमें भी यह बात स्वभावतः मान ली। डाक्टरको बुलाकर पूछा—"ज़रा इसराज बजा सकता हूँ।"

डाक्टरने कहा—"नहीं, आज रहने दीजिए।"

"तो कुमुदको बुला दो, वही ज़रा बजा देगी। अब न जाने कब उसके हाथका बाजा सुननेको मिलेगा, कौन कह सकता है।"

डाक्टरने कहा—"आज सबेरे नौ बजेकी गाड़ीसे उन लोगों को रवाना करना है, नहीं तो सूर्यास्तसे पहले वे कलकत्ते पहुँच नहीं सकेंगे। कुमुदको बुलानेका अब समय कहाँ है?"

विप्रदासने गहरी साँस लेकर कहा—"नहीं, यहाँ अब उसका समय निपट चुका। उन्नीस वर्ष काट चुकी है, अब एक घंटा भी नहीं कट सकता।"

विदाके समय पति-पत्नीकी युगल जोड़ी प्रणाम करने आई। मधुसूदनने भद्रताके साथ कहा—"सचमुच, आपकी तबीयत तो अच्छी नहीं मालूम होती।"

विप्रदासने कुछ उत्तर न देकर कहा—"भगवान तुम दोनों-का कल्याण करें।"

"भइया, अपने शरीरका ज़रा खयाल रखना"—कहकर कुमुद फिर विप्रदासके पैरोंपर सिर रखकर रोने लगी।

हुलुध्वनि*, शंखध्वनि, ढोल, ताशे, नौबत आदिने मिलकर

* बंगालकी स्त्रियोंकी आनन्द-सूचक मुखध्वनि, जो विवाह आदि मंगल-कार्योंमें की जाती है।

मानो निनादका साइक्लोन—तूफ़ान—खड़ा कर दिया। वर-वधूकी विदाई हो गई।

दोनों एक दूसरेके आँचल और दुपट्टेसे बँधे हुए जब जा रहे थे, तो वह दृश्य—न जाने क्यों—विप्रदासको वीभत्स लगने लगा। प्राचीन इतिहासमें लिखा है कि तैमूर और चंगेज़खाँने असंख्य मनुष्योंके कंकालोंका स्तम्भ बनवाया था; परन्तु यह जो दुपट्टे और आँचलकी गाँठ है, इसका बनाया हुआ जीवन्मृत्युका जय-तोरण यदि नापा जाय, तो उसकी चोटी किस नरकसे जाकर लगेगी! परन्तु यह कैसी चिन्ता है आज उनके मनमें!

पूजा-अर्चनामें विप्रदासका उत्साह कभी न था, तो भी आज हाथ जोड़कर मन-ही-मन वे प्रार्थना करने लगे।

एकाएक चौंककर बोल उठे—"डाक्टर, बुलाना ज़रा दीवानजीको।"

विप्रदासको सहसा एक बातकी याद आ गई। ब्याहसे कुछ दिन पहले जब सुबोधको रुपये भेजनेके बारेमें उनका मन अत्यन्त उद्विग्न था—हिसाबके काग़ज़ात उलटने-पुलटनेमें बड़े व्यस्त थे—खाये बिना ग्यारह बज चुके थे, ऐसे वक्तपर एक बिलकुल बेमरम्मत-सा आदमी उनके सामने आ खड़ा हुआ। बहुत दिनोंकी बढ़ी हुई हजामत थी, फीका उदास सूखा चेहरा था, हाथ-पैरोंमें सिर्फ़ हड्डियाँ और नसें चमक रही थीं, फटी-पुरानी मैली चद्दर कंधेपर थी, छोटीसी धोती पहने था। हाथ जोड़कर नमस्कार करके बोला—"बड़े बाबूजी, पहचाना मुझे?"

विप्रदासने ज़रा ग़ौरसे देखकर कहा—"अरे, बैकुण्ठ, तुम यहाँ कहाँ?"

विप्रदास बाल्यावस्थामें जिस स्कूलमें पढ़ते थे, उस स्कूलसे सटे हुए एक घरमें बैकुण्ठ स्कूलकी किताबें, कापियाँ, पेन्सिल,

कलम, चाकू, बैट-बाल, लट्टू और उसके साथ-साथ पुड़ियामें बाँधकर चीना-बादाम बेचता था। उसके घरमें लड़कोंका काफी जमाव रहता था—दुनिया-भरके अद्भुत असम्भव हँसानेवाले किस्से उसे याद थे।

विप्रदासने पूछा—"तुम्हारी ऐसी हालत क्यों है ?"

कई बरस हुए, बैकुण्ठने सम्पन्न गृहस्थके घर अपनी लड़की ब्याही है। उन्हें दहेजकी विशेष कोई आवश्यकता न थी, इसीलिए दूल्हेका पण भी बहुत ज्यादा था। बारह सौ रुपयेमें सौदा तय हुआ, साथ ही अस्सी तोले सोनेका जेवर भी। इकलौती लाड़ली बिटिया थी, इसीसे वह अपनी जानपर खेलकर इसपर राजी हुआ था। एक साथ सब रुपये न जुटा सका था, इससे लड़की बेचारीको कष्ट दे-देकर उन लोगोंने बापका खून सोखा है। पूँजी सब निबट गई, तबाह हो चुका, फिर भी अभी ढाई सौ रुपये देने ही हैं! अबकी तो लड़की बेचारी बहुत ही तंग आ गई, उसके अपमानका ठिकाना न रहा। जब कष्ट एकदम असह्य हो उठे, तो बेचारी मायके भाग आई। जेलके कैदीने जेलका नियम भंग कर डाला, इससे तो अपराध और भी बढ़ गया। पहले बाकीके ढाई सौ रुपये चुकाकर लड़कीकी जान बचा ले, तब कहीं उसे अपने मरनेकी बात सोचनेका समय मिले।

विप्रदास उदास हँसी हँसे। काफी सहायता देनेकी बात तो उस दिन वे सोच भी न सकते थे। कुछ देर तो इधर-उधर करते रहे, फिर उठकर सन्दूकमें-से थैली झाड़कर दस रुपयेका एक नोट निकालकर उसके हाथमें दिया। बोले—"और भी दो-चार जगह कोशिश कर देखो, अब मेरी शक्तिसे बाहर है।"

बैकुण्ठको इस बातपर जरा भी विश्वास न हुआ। पैर घसीटता हुआ चला गया, जूतेकी आहट बहुत ही खेदजनक थी।

उस दिनकी यह बात विप्रदास क़रीब-क़रीब भूल ही चुके थे, आज सहसा उन्हें उसकी याद उठ आई। दीवानजीको बुलाकर हुक्म दिया—"बैकुण्ठको आज ही ढाई सौ रुपये भेज दो।" दीवानजी चुपचाप खड़े-खड़े सिर खुजाने लगे। जिद्दाजिद्दीके कारण विवाहमें रुपये तो खूब खर्च किये जा चुके थे, पर अब बहुत दिनों तक उसका हिसाब निबटाना पड़ेगा, ऐसे समयमें ढाई सौ रुपये—बड़ी-भारी रक़म है।

दीवानजीके मुँहके भावको देखकर विप्रदासने उँगलीसे हीरेकी अँगूठी निकालकर कहा—"छोटे बाबूके नामसे बैंकमें जो रुपये जमा कराये हैं, उनमेंसे ये ढाई सौ रुपये लो, उसके बदले मेरी अँगूठी गहने रही। बैकुण्ठको रुपये कुमुदके नामसे भेजे जायँ, अच्छा।"

[१६]

विवाहके लंकाकांडका अन्तिम अध्याय अभी बाक़ी ही है। सवेरे ही कुशंडिका * समाप्त करके वर-वधूकी विदा होनेकी बात थी। नवगोपालने उसके लिये तमाम तय्यारियाँ कर रखी हैं। इतनेमें विप्रदासके कमरेसे निकलकर राजा-बहादुर बोल बैठे—"कुशंडिका हमारे यहाँ होगी, मधुपुरीमें।"

इस प्रस्तावकी उद्दण्डता नवगोपालको असह्य मालूम दी। और कोई होता, तो आज फौजदारी हो जाती। तो भी भाषाकी

---

* एक वैवाहिक अनुष्ठान, जिसमें वर-वधू परस्पर सम्बोधन करके प्रतीज्ञा करते हैं। वरः—"मैं तुम्हारे भरण-पोषणका तथा ऐहिक और पारलौकिक मंगलका भार अपने ऊपर लेता हूँ।" वधूः—"मैं पति और पति-कुलको हितैषिणी होकर सब काम करूँगी।" —अ०

धींगाधींगीमें नवगोपालका विरोध क़रीब लट्ठबाजीके पास तक पहुँचकर ही थमा था।

अन्तःपुरमें जाकर यह अपमान खूब ही खटका। दूर-दूरसे नाते-रिश्तेदार सब आये हैं, उनमें गृह-शत्रुओंकी कमी नहीं। सबके सामने ऐसा अत्याचार! क्षेमा-बुआ गुस्सेमें मुँह फुलाकर बैठ रहीं। वर-कन्या जब बिदा लेने आये, तो उनके मुँहसे आशीर्वाद मानो निकलना ही नहीं चाहता था। सभीने कहा—'इस कामको भी कलकत्ते ही कर लेते, तो कोई रोकने थोड़े ही जाता।' मायकेके अपमानसे कुमुद अत्यन्त सकुचित हो गई,—उसे मालूम होने लगा कि मानो वही अपराधिनी है अपने सभी पुरखोंके आगे। मन-ही-मन अपने देवतासे रूठकर बार-बार प्रश्न करने लगी—"मैंने तुम्हारे प्रति ऐसा कौनसा कसूर किया है, जिसकी इतनी बड़ी सज़ा है? मैंने तो तुमपर ही भरोसा करके सब-कुछ मान लिया है।"

वर-वधु गाड़ीपर सवार हुए। कलकत्तेसे मधुसूदन जो बैंड लाये थे, उसने ऊँचे स्वरसे नाचका गत बजाना शुरू कर दिया।

एक बड़े सामियानेके नीचे होमकी तय्यारियाँ हुईं। अंगरेज़ अभ्यागत मेम और साहब कुछ तो गद्दादार चौकीपर बैठे-बैठे और कुछ पास जाकर झुक-झुककर देखने लगे। यहीं उनके लिए चाय बिस्कुट भी आ गये। एक तिपाईपर बड़ा-भारी एक Wedding cake भी रखा हुआ है। अनुष्ठान समाप्त होनेपर ये लोग जब Congratulate करने लगे, कुमुद तब मुँह लाल किये और सिर झुकाये खड़ी रही। एक मोटी-सी प्रौढ़ा मेमने उसकी बनारसी साड़ीका आँचल उठाकर बड़े ग़ौरसे देखा; उसकी बाँहोंमें लटकते हुए सोनेके खूब मोटे-मोटे बाजूबन्द घुमा-घुमाकर देखनेमें भी उसे बड़ा कौतूहल मालूम दिया। अंगरेज़ी बोलीमें उनकी

प्रशंसा भी की। अनुष्ठानके बारेमें मधुसूदनसे एक दलने कहा—"How interesting" और दूसरेने कहा—"Isn't it ?"

इन्हीं मधुसूदनको कुमुदने अपने भइया तथा और-और रिश्तेदारोंसे बर्ताव करते देखा है,—आज उन्हें ही देखा अंगरेज़ मित्र-मण्डलीमें। बड़ी भलमनसाहत है, बहुत ही गद्‌गद् विनम्र भाव है, और हँसी तो मुँहमें समाती ही नहीं। चाँदमें जैसे एक तरफ निर्मल प्रकाश है और दूसरी तरफ चिर-अन्धकार, मधुसूदनका चरित्र भी ठीक वैसा ही है। अंगरेज़ोंकी तरफ उसका व्यवहार माधुर्य-पूर्ण चन्द्रमाके प्रकाशके समान ही उज्ज्वल और वैसा ही स्निग्ध है। दूसरी तरफ वह दुर्गम, दुर्दृश्य और जमी हुई बरफकी निश्चलताके समान दुर्भेद्य है।

सैलून गाड़ीमें अंगरेज़ मित्रोंके साथ मधुसूदन हैं, और दूसरे रिज़र्व किये हुए डब्बेमें स्त्रियोंके साथ कुमुदिनी। उनमेंसे कोई उसका हाथ उठाकर मसक देती, तो कोई ठोढ़ी उठाकर मुखश्रीकी समीक्षा करती ; कोई कहती 'लम्बी है', तो कोई कहती 'दुबली है।' और कोई बहुत ही भलमनसाहतसे पूछती—"क्यों जी, देहपर क्या रंग लगाती हो, तुम्हारे भाईने विलायतसे भेज दिया होगा, क्यों ?" सभोने मीमांसा की—आँखें बड़ी नहीं हैं, पैर स्त्रियोंके देखे बहुत बड़े हैं। शरीरका प्रत्येक गहना घुमा-फिराकर देखने लगीं, बोलीं—"पुराने ज़मानेकी चीज़ हैं, वज़नमें भारी हैं, सोना पक्का है"—"उँह ! बलिहारी है फैशनकी !"

औरतोंके डब्बे में प्लेटफार्मसे उलटी तरफकी खिड़कियाँ खुली थीं, कुमुदिनी उसी ओर देखती रही ; कोशिश करने लगी कि इनकी बातें उसके कानोंमें न घुसने पावें। देखा एक पैरसे लँगड़ा एक कुत्ता तीन पैरोंसे लँगड़ाता हुआ मिट्टी सूँघता फिर रहा है। अहा, अगर कुछ खानेकी चीज़ उसके हाथमें होती ! कुछ भी न

थी। कुमुद मन-ही-मन सोचने लगी—एक पैर कट जानेसे बेचारेके लिए जो कुछ सहज था, सब कठिन हो गया। इतनेमें कुमुदके कानोंमें एक भनक पड़ी, सैलून गाड़ीके सामने खड़ा हुआ एक भलामानस कह रहा था—"देखिये इस किसानकी लड़कीको बहकाकर आरकाटी लोग आसामके चाय-बगानको लिये जा रहे थे, यह भाग आई है। ग्वालन्द तकका किराया इसके पास है, इसका घर है डुमराँव, अगर थोड़ीसी सहायता करें, तो बेचारी बच जाय।" सैलून गाड़ीमें से कुमुदने एक कड़ी घुड़कीकी आवाज़ सुनी। उससे रहा न गया; उसी वक्त दाहिनी ओरकी खिड़की खोलकर, अपने मोतियोंके बने हुए बटुएमेंसे दस रुपये निकालकर उस लड़कीके हाथपर रख दिये और चटसे खिड़की बन्द कर ली। यह देख एक औरत बोल उठी—"हमारी बहूजीका खरचीला हाथ देखा?" एक दूसरी बोल उठी—"खरचीला हाथ नहीं बहन, दरवाजा है दरवाज़ा—लक्ष्मीको विदा करनेका।" तीसरी बोली—"रुपये उड़ाना ही सीखा है, जोड़ना सीखतीं तो काम आते।" इसे उन लोगोंने 'शेख़ी' क़रार दी,—"बाबू लोगोंने जिसे एक पैसा भी नहीं दिया, आपने उसके लिए झन्नसे दस रुपये फेंक दिये, इतनी ठसक काहेकी!" उन लोगोंको मालूम हुआ कि यह भी शायद उसी चटर्जी-घोषालोंकी हमेशाकी अदावतका एक अंग है।

इसी समय उनमेंसे एक मोटी-ताजी काली लड़की—बड़ी-बड़ी आँखें थीं, स्नेहरससे भरा हुआ मुँह था, कुमुदके बराबरकी होगी—उसके पास आकर बैठ गई। चुपकेसे बोली—"मन नहीं लगता, क्यों बहन? इन लोगोंकी बातोंपर ख्याल मत करना, दो-चार दिन तक इसी तरह मसका-मसकी बोली-ठीली चलती रहेगी, फिर कंठसे ज़हर उतर जानेपर सब ठंढी हो जायँगी।"

यह लड़की कुमुदकी मँझली दीरानी है, नवीनकी स्त्री। नाम है निस्तारिणी, उसे सब कोई 'मोतीकी मा' कहा करते हैं।

मोतीकी माने ज़िक्र छेड़ा—"जिस दिन मैं नूरनगर आई, स्टेशनमें तुम्हारे बड़े भइयाको देखा था।"

कुमुद चौंक उठी। उसके भइया स्टेशनपर स्वागतके लिए गये थे, उसने यह खबर पहले-ही-पहल सुनी।

"अहा, कैसा शरीर था! ऐसा कभी मैंने आँखोंसे नहीं देखा। किस गीतमें सुना था—हाँ, कीर्तनमें—

श्री चैतन्य-रूपकी आई ऐसी बाढ़ महान,

बहा ले गई जो नदियाको नारीगणके प्रान।*

मुझे उसीकी याद आ गई।"

क्षणमें कुमुदका मन पिघल गया। मुँह तिरछा करके खिड़कीकी ओर देखती रही,—बाहरका मैदान, वन, आकाश सब-कुछ आँसुओंकी भाफसे धुँधला दिखाई देने लगा।

मोतीकी माको समझनेमें देर न लगी कि किस जगह कुमुदके दर्द है; इसीसे घुमा-फिराकर वह उसके भइयाकी ही बातें करने लगी। पूछा—"भइयाका ब्याह हो गया है क्या?"

कुमुदने कहा—"नहीं तो।"

मोतीकी मा बोल उठी—"अरे, कहती क्या हो! ऐसा देवताके समान रूप! और अभी तक घर खाली ही है। किस भाग्यवतीके लिए है वह वर!"

कुमुद सोच रही थी—भइया गये थे सारा अभिमान छोड़कर सिर्फ मेरे लिए। उसके बाद ये लोग ज़रा देखने भी नहीं गये!

---

* बंगला में है—"गोरार रूपे लागलो रसेर बान—
भासिये निये जाय नदियार पुरनारीर प्राण।"

सिर्फ धनके मदमें ऐसे आदमीकी भी अवज्ञा करनेपर उतारू हो गये ! उनका शरीर शायद इसीलिए टूट-सा गया है।

वृथा पश्चात्तापके साथ बार-बार मन-ही-मन कहने लगी— भइया क्यों स्टेशन गये ! क्यों अपनेको छोटा बनाया ! मेरे लिए ? मैं मर क्यों नहीं गई ?

जो बात हो चुकी है, अब लौट नहीं सकती, उसीपर उसका मन सिर धुनने लगा। बार-बार याद आने लगा—रोगसे क्लान्त वह मुख, आशीर्वादसे भरी हुई स्निग्ध गम्भीर वे दोनों आँखें।

[२०]

रेल-गाड़ी जब हवड़ा पहुँची, तब क़रीब चार बजे थे। चादर और दुपट्टेमें गँठजोड़ बाँधे दूल्हा-दुलहिन बैठे जाकर ब्रूहम-गाड़ीमें। कलकत्ता शहरके दिनके प्रकाशमें असंख्य आँखें थीं, उनके सामने कुमुदका शरीर और मन संकुचित बना रहा। इस उन्नीस वर्षके कुमारी-जीवनमें उसके अंग-अंगमें जो एक महान शुचिता गहराईके साथ व्याप्त थी, उसे वह कर्णके स्वाभाविक कवचके समान किस तरह सहसा हटा दे ? ऐसा मंत्र है, जिस मंत्रसे यह कवच पलक मारते ही अपने-आप खिसक पड़े। परंतु वह मन्त्र हृदयमें अभी तो गूँजा नहीं है। बगलमें जो आदमी बैठा हुआ है, मनके अन्दर वह तो अब भी बाहरका आदमी है। अपना आदमी बननेमें उसकी तरफसे सिर्फ़ बाधाएँ ही पड़ रही हैं। उसके भावमें, व्यवहारमें जो एक कठोरता है, उसने तो कुमुदको अभी तक सिर्फ धक्के दे-देकर दूर ही रखा है।

इधर, मधुसूदनके लिए कुमुदिनी एक नया आविष्कार है। स्त्री-जातिका परिचय प्राप्त कर सके, ऐसा अवसर अब तक इस

कमेरे आदमीको बहुत ही कम मिला है। उसके पण्य-जगत्की * भीड़में पण्य-नारीकी † परछाईं भी उसपर नहीं पड़ी है। किसी स्त्रीने उसके मनको कभी विचलित ही नहीं किया, यह बात सच नहीं ; लेकिन भूडोल तक ही हुआ है—इमारत जख्मी नहीं हुई। मधुसूदनने स्त्रियोंको बहुत ही संक्षेपमें देखा है, घरकी बहू-बेटियोंमें। वे घरका काम-धन्धा करती हैं, कलह फैलाती हैं, काना फूँसी करती हैं, मामूली-सी बातपर रोना-धोना भी मचा देती हैं। मधुसूदनके जीवनमें इनका संस्रव बहुत ही थोड़ा है। उसकी स्त्री भी संसारके उसी न-कुछ-से विभागमें स्थान पायेगी और दैनिक गार्हस्थ्यकी तुच्छतामें छायाच्छन्न होकर दीवालकी ओटमें मालिकोंके इशारेपर चलनेवाली नारी-सुलभ जीवन-यात्रा बितावेगी, इससे ज्यादा कुमुदके लिए वह और कुछ न सोच सका था। स्त्रीके साथ बर्ताव करनेका भी जो एक कला-नैपुण्य है, उसके भीतर भी मिलने या खोनेकी कोई कठिन समस्या हो सकती है, यह बात उसके हिसाब-दक्ष सतर्क मस्तिष्कके एक कोनेमें भी उदित न हुई थी ; पेड़ोंके लिए तितली जैसे फिजूल है, फिर भी तितलीका संसर्ग जैसे पेड़ोंको मान लेना पड़ता है, भावी स्त्रीको भी मधुसूदनने वैसा ही सोचा था।

अब मधुसूदनने व्याहके बाद पहले-पहल कुमुदिनीको देखा। एक तरहका सौन्दर्य है, जो मालूम देता है मानो एक दैवी आविर्भाव है, संसारकी साधारण घटनाकी अपेक्षा कहीं अधिक बढ़कर है,—प्रतिक्षण मानो वह आकांक्षासे परे है। कुमुदका सौन्दर्य इसी श्रेणीका है। वह मानो शेष-रात्रिके शुक्रतारेके समान है, रात्रिके जगत्से न्यारी है, प्रभातके जगत्के उसपार है। मधुसूदनने अपने अवचेतन मनमें, अपनेसे अगोचरमें, कुमुदको

---

* वाणिज्य-जगत्।

† पणप्रथाके अनुसार दहेज लेकर ब्याही हुई स्त्री।

एक तरहसे अपनेसे श्रेष्ठ समझा; कम-से-कम एक चिन्ता उठी—इसके साथ किस तरहका बर्ताव करना चाहिए, कौनसी बात किस ढंगसे कहना ठीक होगा।

क्या कहकर बातचीत शुरू करें, यह सोचते-सोचते मधुसूदन सहसा पूछ बैठा—"इधरसे धूप आ रही है, क्यों ?"

कुमुदिनीने कुछ भी जवाब न दिया। मधुसूदनने दाईं तरफका परदा खींच दिया।

कुछ देर फिर सन्नाटा रहा। फिर खामखाह बोल उठा—"जाड़ा तो नहीं लगता ?" कहते हुए उत्तरकी प्रतीक्षा न कर सामनेकी सीटपरसे विलायती कम्बल खींचकर कुमुदके और अपने घुटनोंपर डालकर उसके साथ एक-आवरणकी सहयोगिता स्थापन की। शरीर और मन पुलकित हो उठा। चौंककर कुमुदिनी कम्बलको हटाना ही चाहती थी, इतनेमें अपनेको उसने सम्हाल लिया, गद्दीके एक किनारेसे सकुचाकर बैठी रही।

कुछ समय इसी तरह बीता, इतनेमें सहसा कुमुदके हाथोंपर मधुसूदनकी दृष्टि पड़ी।

"देखूँ, देखूँ"—कहते हुए उसका बायाँ हाथ अपनी ओर खींच लिया, बोला—"तुम्हारी उँगलीमें यह अँगूठी काहेकी है ? यह तो नीलम मालूम पड़ता है।"

कुमुदिनी चुप बनी रही।

"देखो, नीलम मुझे नहीं छाजता, इसे तुम्हें छोड़ना पड़ेगा।"

किसी समय मधुसूदनने नीलम ख़रीदा था, उसी साल उसका एक पटसनका भरा हुआ बोट हवड़ा-पुलसे टकराकर डूब गया था। तभीसे नीलम उसकी आँखों लड़ता है।

कुमुदिनीने धीरेसे हाथ छुड़ाना चाहा, पर मधुसूदनने नहीं छोड़ा; बोला—"इसे मैं निकाले लेता हूँ।"

कुमुद चौंक पड़ी; बोली—"नहीं, रहने दो।"

एक बार शतरंजके खेलमें उसकी जीत हुई थी; तब भइयाने उसे अपने हाथकी अँगूठी उतारकर इनाममें दी थी।

मधुसूदन मन-ही-मन हँसा, अँगूठीके ऊपर बड़ा मोह मालूम होता है; यहाँपर अपने साथ कुमुदके साधर्म्यका परिचय पाकर मानो कुछ आराम मालूम हुआ। समझ लिया, वक्त-बेवक्त माँग, कण्ठहार, कड़े और बाजुओंके जरिये अभिमानिनीके साथ बात-चीत करनेका मार्ग निकल आया करेगा—इस मार्गमें मधुसूदनका प्रभाव बिना माने दूसरी गति ही नहीं, फिर उनकी उमर चाहे भले ही कुछ ज्यादा हो।

अपनी उँगलीसे एक बहुमूल्य हीरेकी अँगूठी उतारते हुए मधुसूदनने हँसते-हँसते कहा—"डरो मत, इसके बदले और एक अँगूठी तुम्हें पहनाये देता हूँ।"

कुमुदिनीसे अब रहा न गया—जरा कोशिश करके हाथ छुड़ा लिया। अब तो मधुसूदनका मन झुँझला उठा। कर्तृत्वमें बाधा उन्हें असह्य थी। सूखे हुए गलेसे, जरा जोर लगाकर बोले—"सुनती हो, यह अँगूठी तुम्हें उतारनी ही पड़ेगी!"

कुमुदिनी सिर झुकाये चुपचाप बैठी रही, चेहरेपर सुर्खी आ गई।

मधुसूदनने फिर कहा—"सुनती हो? मैं कहता हूँ उसे उतार देना ठीक है। दो, मुझे दो।" कहते हुए उसका हाथ अपनी ओर खींचना चाहा।

कुमुदने हाथ हटाकर कहा—"मैं उतारे लेती हूँ।"

अँगूठी उतार ली।

"दो, उसे मुझे दो।"

कुमुदिनीने कहा—"उसे मैं ही रख दूँगी।"

मधुसूदनने झुँझलाकर कुछ कठोर स्वरमें कहा—"रखनेसे फायदा ? सोचती हो, यह बड़ी कीमती चीज़ है। इसे तुम किसी भी तरह नहीं पहन सकतीं, कहे देता हूँ।"

कुमुदिनीने कहा—"मैं नहीं पहनूँगी"—कहते हुए उसने अपने मोतीके बने हुए बटुएमें अँगूठी रख ली।

"क्यों, इस ज़रासी चीज़पर इतना दर्द क्यों ? तुम्हारी ज़िद तो कम नहीं मालूम पड़ती।"

मधुसूदनकी आवाज़ खरखरी है ; कानोंको खटकती है, मानो मटीले कागज़को कोई पक्की ज़मीनपर घिस रहा हो। कुमुदिनीकी सारी देहमें फुरफुरी-सी फैल गई।

"यह अँगूठी तुम्हें दी किसने ?"

कुमुदिनी चुपकी बैठी रही।

"तुम्हारी माने ?"

कुमुदिनीने देखा कि जवाब दिये बिना बनेगी नहीं, इसलिए अर्द्धस्फुट स्वरमें कहा—"भइयाने।"

"भइयाने ! सो तो साफ ज़ाहिर हो रहा है।" भइयाकी कैसी हालत है, मधुसूदन अच्छी तरह जानता है। उन्हीं भइयाकी यह अँगूठी शनिग्रहका सेंध मारनेका औज़ार है,—इस घरमें उसका प्रवेश नहीं हो सकता; परन्तु इससे भी बढ़कर उसे यह बात खटक रही है कि अभी तक कुमुदिनीके हृदयमें उसके भइया ही सबसे बढ़कर हैं। यह स्वाभाविक है, इसलिये सह्य है, सो बात नहीं। पुराने ज़मींदारकी ज़मींदारी जब नया धनी महाजन नीलाममें खरीद लेता है, तो भक्त प्रजाजन पुराने अमलकी बातें याद कर-करके दीर्घ-निःश्वास छोड़ते रहते हैं, यह बात नये अधिकारीको बड़ी नागवार गुज़रती है ; मधुसूदनकी भी वही दशा है। आजसे मैं ही उसका एकमात्र सब-कुछ हूँ, यह बात जितनी जल्दी हो, उसे

जता देनी चाहिये। उसके सिवा तेल-ताईकी जीमनवारमें वरका जो अपमान किया गया है, उसमें विप्रदासका हाथ नहीं था, इस बातपर मधुसूदन किसी तरह विश्वास ही नहीं कर सकता। यद्यपि नवगोपालने ब्याहके दूसरे ही दिन उससे कह दिया था—"भाई साहब, विवाहमण्डपमें तुम्हारी हाटखोलेकी आढ़तसे जो चाल-चलनकी आमदनी हुई थी, उस बातको इशारेमें भी भाई साहब न कहना: वे इस बारेमें कुछ भी नहीं जानते, उनकी तबीयत बहुत खराब है।"

अंगूठीको बात फिलहाल स्थगित रखी, मगर वह याद रही। इधर सुन्दर रूपके सिवा औरभी एक कारणसे सहसा कुमुदिनी-की क़द्र बढ़ गई है। नूरनगरमें रहते ही ठीक ब्याहके दिन मधुसूदनका तार मिला था कि इस बार जो तीसीका काम किया था, उसमें क़रीब बीस लाखका मुनाफा हुआ है। अब सन्देह न रहा कि यह नई बहूके ही सौभाग्यसे है। स्त्रीके भाग्यसे धन आता है, इसका प्रमाण हाथोंहाथ मिल गया। इसीसे कुमुदिनीके साथ गाड़ीमें बैठकर भीतर-ही-भीतर उसे इस बातका परम सन्तोष था कि भावी मुनाफेकी एक जीता-जागती भाग्यकी दी हुई सनद लिये घर लौट रहा हूँ। ऐसा न होता, तो आजकी इस ब्रूहम-गाड़ीकी रथयात्रामें अपघात हो सकता था।

[२१]

जबसे राजाकी उपाधि मिली है, तभीसे कलकत्तेके घोषाल-भवनके द्वारपर नया नाम खुद गया है—"मधु-प्रासाद"। उस प्रासादके लोहेके फाटकके एक किनारे आज नौबत बैठाई गई है, और बगीचेमें एक तम्बूके अन्दर बैंड बज रहा है। गेटपर

अर्धचन्द्राकारमें गैसके पाइपोंमें लिखा है—"प्रजापतये नमः"। सन्ध्या समय आलोक-शिखासे यह लेख प्रकाशमय हो जायगा। ड्योढ़ीसे मकान तक जो लाल कंकड़ीली सड़क गई है उसके दोनो तरफ देवदारुकी पत्तियों और दाकी मालाओंसे खूब सजाया गया है, मकानकी पहली मंज़िलकी उँची ज़मीनपर चढ़नेकी सीढ़ियोंपर लाल कपड़ा बिछा हुआ है। आत्मीय-स्वजनोंकी भीड़में होकर वर-वधूकी बग्घी मकानके सामनेवाले बरामदेमें आकर ठहर गई। शंख, उलुध्वनि (मंगल-ध्वनि), ढोल, ताशे, घंटा, घड़ियाल, नौबत, बैंड सब एक साथ बज उठे,—मानो दस-पन्द्रह तरहकी आवाज़की मालगाड़ियाँ एक जगह ज़ोरोंसे टकरा गई हों। एक परिपक्व वृद्धा, जो रिश्तेमें मधुसूदनकी नानी लगती हैं—माँगमें खूब मोटा सिन्दूर भरकर, चौड़ी लाल पाड़की साड़ी तथा मोटे सोनेके कड़े और शंखकी चूड़ियाँ पहने हुए—हाथमें एक पानी-भरा चांदीका लोटा लिये बग्घीके सामने आ खड़ी हुई, और बहूके पैरोंपर लोटेसे पानी छिड़ककर उन्हें आँचलसे पोंछा, हाथमें 'नोआ' * पहनाया, फिर बहूके मुँहमें ज़रासा मधु देकर बोली—"अहा, इतने दिनों बाद निकला हमारे नील-गगनमें पूनोंका चाँद, अब खिला नील सरोवरमें सोनेका कमल।" इसके बाद दूल्हा-दुलहिन गाड़ीसे उतरे। युवक अभ्यागतोंकी दृष्टि ईर्ष्यान्वित हो गई। एकने कहा—"अरे, दैत्य स्वर्ग लूट लाया है स्वर्ग, अप्सरा सोनेकी जंज़ीरसे बँधी है।" दूसरेने कहा—"पुराने ज़मानेमें ऐसी लड़कियोंके लिए राजाओंमें युद्ध छिड़ जाता था, अब तो तीसीके मुनाफेसे ही कार्य-सिद्धि हो जाती है। कलियुगमें देवता लोग भी अरसिक होते हैं, और भाग्यचक्रके ग्रह-नक्षत्र तो सब वैश्यवर्ण हैं ही।"

---

* सुहाग-सूचक लोहेका पतली चूड़ी।

उसके बाद वरण, स्त्री-आचार आदि वैवाहिक प्रथाएँ समाप्त होते-होते जब शाम हो आई, तब बड़ी मुश्किलसे काल-रात्रिके समय तक सब क्रियाएँ समाप्त हुईं।

सिर्फ़ एक बड़ी बहनके ब्याहकी बात कुमुदको साफ़-साफ़ याद है, पर उसने अपने घर किसी नई बहूको आते नहीं देखा। यौवनारम्भके पहलेसे ही वह कलकत्तेमें—भइयाके निर्मल स्नेहके वेष्टनमें—रह रही है। बालिकाके मनका कल्पना-जगत् साधारण संसारके मोटे ढाँचेमें नहीं ढल पाया है। बाल्यावस्थामें पतिकी कामनासे जब वह शिवकी पूजा करती थी, तब उसने पतिके ध्यानमें उसी महातपस्वी रजतगिरिनिभ शिवको ही देखा है। साध्वी नारीके आदर्श रूपमें वह अपनी माको ही जानती थी। कैसी स्निग्ध शान्त कमनीयता थी, कितना धैर्य, कितना दुःख, कैसी देव-पूजा, मङ्गलाचरण और अथक सेवा थी। दूसरी ओर उनके (माताके) पतिकी तरफ व्यवहारमें त्रुटि थी, चरित्रका स्खलन था; इतना होते हुए भी चरित्र उदारतामें बृहत् और पौरुषमें दृढ़ था, उसमें हीनता कपटताका लेशमात्र भी नहीं था, उनमें जो एक मान-मर्यादा था, वह मानो सुदूर कालके पौराणिक आदर्शका। उनके जीवनके अन्दर प्रतिदिन यही प्रमाणित हुआ था कि प्राणोंसे मान बड़ा है और धनसे ऐश्वर्य। वे और उनकी बराबरीके लोग बड़े पैमानेके आदमी थे। उनके बस यही था कि अपनी हानि करके भी अक्षत सम्मानके गौरवकी रक्षा करना—अक्षत सञ्चयके अहंकारका प्रचार नहीं।

कुमुदकी जिस रोज़ बाईं आँख फड़की, उस दिन वह अपनी सम्पूर्ण भक्तिको लेकर आत्मोत्सर्गका पूर्ण संकल्प लिये तैयार खड़ी थी। यह बात उसकी कल्पनामें भी न आई थी कि कहीं भी कुछ बाधा या ओछापन आ सकता है। दमयन्तीने किस तरह

पहले ही से जान लिया था कि विदर्भ-राज नलको ही वरण करना होगा! उनके मनके भीतर निश्चित वार्ता आ पहुँची थी—वैसी निश्चित वार्ता क्या कुमुदको नहीं मिली? वरणका आयोजन सब ठीक था, राजा भी आये, किन्तु मनमें जिसे स्पष्ट देखा था, बाहर वह दीखा कहाँ? रूपसे भी कुछ बनता बिगड़ता न था, उमरसे भी हानि कुछ न थी। किन्तु राजा? वह सचमुच का राजा कहाँ है?

उसके बाद आज, जिस अनुष्ठानके द्वारसे कुमुद अपने नये संसारमें आई है, उसमें ऐसी कोई वज्र-गम्भीर मङ्गलध्वनि क्यों न हुई, जिसके भीतरसे यह नव-वधू आकाशके सप्तर्षियोंका आशीर्वाद-मंत्र सुन पाती! सारे अनुष्ठानको परिपूर्ण करके ऐसा बन्दन-गान उदात्त स्वरसे क्यों न जाग उठा—

"जगतः पितरौ बन्दे पार्वती परमेश्वरौ"

वही "जगतः पितरौ" जिनके अंदर चिर-पुरुष और चिर-नारी वाक्य और अर्थकी तरह एकत्र मिले हुए हैं?

[२२]

मधुसूदन जब कलकत्ते रहने आये थे, तब पहले-पहल उन्होंने एक पुराना मकान ख़रीदा था; वही चौकसे सटा हुआ मकान ही आज उनका अन्तःपुर या भीतरी महल है। उसके बाद उसीके सामने कलकतिया फैशनका एक बड़ा भारी नया भवन इसीके साथ जोड़ दिया गया है, यह बैठकखाना है। यद्यपि ये दोनों महल सटे हुए हैं, लेकिन फिर भी ये बिलकुल अलहदे—दो जाति के—हैं। बाहरवाले महलमें सर्वत्र संगमर्मर बिछा हुआ है, उसपर विलायती कारपेट है, दीवालोंपर रंगीन चित्रित काग़ज़ सटे हुए हैं, और उनपर तरह-तरहकी तसवीरें लटक रही हैं, कोई

एनग्रेविंग है, तो कोइ ओलिओग्राफ, कोई आएलपेन्टिंग। उनका विषय है—हिरणोंका पीछा करते हुए शिकारी कुत्ते, डर्बीकी घुड़दौड़में जीते हुए प्रसिद्ध घोड़े, विदेशी लैन्डस्केप या नहाती हुई नग्न स्त्रियाँ इत्यादि। इनके सिवा दीवालोंपर कहीं चीनी बरतन हैं, तो कहीं मुरादाबादी पीतलके थाल, कहीं जापानी पंखे हैं, तो कहीं तिब्बती चँवर, इत्यादि तरह-तरहकी बेसिलसिलेकी चीज़ोंका अव्यवस्थित समावेश है। इन सब चीज़ोंका पसन्द करना, खरीदना—और सजाने आदिका भार मधुसूदनके अंग्रेज़ असिस्टेन्ट पर है। इसके सिवा मखमल या रेशमसे मढ़ी हुइ कुर्सियों और सोफ़ाओंकी भरमार है। काँचकी आलमारियोंमें चटकदार बाइंडिग की हुई अंगरेज़ी किताबें हैं, झाड़नेवाले बैराके सिवा कोई भी उनपर हाथ नहीं लगाता,—एक तिपाईपर 'अलबम' रखे हुए हैं,—किसीमें घरवालोंकी तसवीरें हैं, किसीमें विदेशिनी ऐक्ट्रेसोंकी।

अन्तःपुरमे पहली मंज़िलके कमरोंमें अँधेरा रहता है, ठंढक भी काफ़ी है, जाले और धुआँसे वे काले पड़ गये हे। आँगनमें बहुतसा कूड़ा-करकट पड़ा हुआ है, वहीं पानीका नल है; बासन भी यहीं मँजते हैं और कपड़े भी वहीं धोये जाते हैं; जब नलसे कुछ काम नहीं होता, तब भी वह अक्सर खुला ही रहता हैं। ऊपरके बरामदे पर से औरतोंकी साड़ियाँ नीचे तक लटकती रहती हैं, और अड्डेपरसे पहाड़ी तोतेकी जूँठन बिखर-बिखर कर गिर रही है आँगनमें। बरामदेकी दीवालपर जहाँ-तहाँ पानकी दाग़ और अनेक तरहकी मलिनताके अक्षय स्मृति-चिह्न लग रहे हैं। आँगनके पीछेवाले चबूतरेके पीछे रसोई-घर है, वहाँसे रसोईकी गन्ध और कोयलेका धुआँ ऊपरके कमरोंमें जाकर सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। रसोई-घरके बाहर चहारदीवारीसे घिरी हुई थोड़ीसी ज़मीन है, उसके एक कोनेमें जले-हुए कोयले, चूल्हेकी

राख, फूटे गमले, टूटी हुई बैंतकी पुरानी टोकरियों और चूल्हेकी पुरानी झँझरियोंका ढेर लगा है; दूसरे कोनेमें दो-तीन गाय और उनके बछड़े बँधे हुए हैं, उनके आस-पास पुआल और गोबर जमा हुआ है, और सारी दीवाल कंडोंसे छा गई है। एक किनारेसे नीमका पेड़ है, उससे गायें बाँध-बाँधकर उसकी छाल सब उड़ा दी गई हैं, और लगातार लग्गी चला-चलाकर उसके पत्ते छीनकर उसे ज़ेरबार कर डाला है। अन्तःपुरमें बस यही ज़रा-सी ख़ाली ज़मीन है, बाकी सब ज़मीन बाहरकी तरफ़ है, और वह लताओंके मंडपसे, विचित्र फूलोंकी क्यारियोंसे, छँटे हुए हरे घासदार मैदानसे, लाल कंकड़ और सुरखीके बने हुए रास्तेसे, पत्थरकी मूर्तियों और लोहेकी बेन्चोंसे सुशोभित है।

ज़नानख़ानेमें तीसरी मंजिलपर कुमुदिनीका सोनेका कमरा है। महगनी काठका बड़ा-भारी पलंग है; फ्रेमपर जालीदार मसहरी है, उसमें रेशमकी झालर है। बिछौनेके पाँयतेकी तरफ़ एक पूरे मापकी नग्न स्त्रीकी तसवीर टँगी है, छातीपर दोनों हाथ दाबे हुए वह लज्जाका बहाना कर रही है। सिरहानेकी तरफ मधुसूदनका अपना ऑएलपेन्टिंग है, उसमें उनके काश्मीरी दुशालेकी दस्तकारी ही सबसे ज्यादा प्रकाशमान है। एक तरफ दीवालसे सटी हुई कपड़े रखनेकी दराज़-दार अलमारी है, उसपर आईना लगा हुआ है। आईनेके दोनों तरफ चीनी-मिट्टीके दो शमादान हैं, सामने चीनी मिट्टीकी रकाबी पर पाउडरका डिब्बा, चाँदीकी जड़ैमा कंघी, तीन-चार तरहके एसेन्स, एसेन्स छिड़कने-की पिचकारी तथा और भी तरह तरहकी शृंगारकी सामग्रियाँ रखी हैं—विलायती असिस्टेन्टकी ख़रीदी हुई। अनेक शाखा-युक्त गुलाबी काँचकी फूलदानोमें फूलोंका गुच्छा रखा हुआ है, और दूसरी तरफ लिखनेकी टेबिल है, उसपर बहुमूल्य पत्थरका कलमदान और कटे हुए काग़ज़ रखे हुए हैं। इधर-उधर मोटी

गद्दीवाले सोफे और आराम-कुरसियाँ पड़ी हुई हैं, बीच-बीचमें तिपाइयाँ पड़ी हुई हैं, जिनपर चाय पी जाती है, चाहें तो ताश भी खेल सकते हैं। नई महारानीके योग्य शयन-गृह कैसा होना चाहिए, यह बात मधुसूदनको खास तौरसे सोचनी पड़ी है। अन्तःपुरका सबसे ऊपरकी मंजिलका यह घर ऐसा लगने लगा, जैसे कि मैली कँथड़ी ओढ़े हुए भिखारी के सरपर जवाहरातसे जड़ी हुई जरीदार पगड़ी।

अन्तमें जब शोर-गुल और धूमधामकी बाढ़वाला दिन खत्म हुआ, तब रातको कुमुद उस कमरेमें पहुँची। उसे ले आई थी मोतीकी मा। वह उसके साथ आज रातको सोयेगी, यह तय हो चुका है। और भी लड़कियोंका एक झुण्ड साथ आ रहा था। उनका कौतूहल और मनोरंजनका नशा छूटना ही नहीं चाहता,—मोती की माने उन्हें विदा कर दिया है। कमरेमें आते ही उसने कुमुदके गलेमें बाँह डालकर कहा—"मैं थोड़ी देरके बगलके कमरे में जाती हूँ;—तुम ज़रा, रो लो बहन,—आँखोंके आँसू तुम्हारी छाती में जमे जा रहे हैं।"—कहकर वह चली गई।

कुमुद चौकीपर बैठ गई। रोयेगी पीछे, अभी उसे सख्त ज़रूरत है अपनेको ठीक करनेकी। भीतर-ही-भीतर जो सबसे बड़ी वेदना उसके हृदयमें चुभ रही थी, वह है अपने सामने अपना अपमान। इतने दिनोंसे वह जो संकल्प करती आई है, उसका विद्रोही मन बिलकुल उल्टी तरफ चला गया है। उस मनपर शासन करनेका उसे ज़रा भी समय नहीं मिल रहा था—'भगवान्, बल दो, बल, मेरे जीवनको काला न कर देना। मैं तुम्हारी दासी हूँ, मुझे विजयी बनाओ, वह विजय तुम्हारी ही है।'

एक पूरी उमरकी सुडौल देहवाली श्यामवर्ण सुन्दरी विधवाने घरमें घुसते ही कहा—"मोतीकी माने ज़रा तुम्हें छुट्टी दे दी इसीसे,

चली आई हूँ; किसीको पास तो आने ही नहीं देती, घेरे रहती है तुम्हें—जैसे हम सेंध लगानेका हथियार लिए फिरती हैं, उसका बेंड़ा काटकर तुम्हें चुरा ले जायँगी। मैं तुम्हारी जेठानी हूँ, श्यामासुन्दरी ; तुम्हारे दूल्हा मेरे देवर लगते हैं। हमने तो सोचा था आखिर तक जमा-खर्चकी बही ही उनकी बहू होगी, पर उस बहीमें कुछ जादू है बहन, इतनी उमरमें ऐसी सुन्दरी उसी बहीके जोरसे ही मिली है। अब हजम हो जाय तब है। वहाँ बहीका मन्तर नहीं चलनेका। सच कहना बहन, हमारे बूढ़े देवर तुम्हें पसन्द हैं तो ?"

कुमुद दंग रह गई, क्या जवाब दे, कुछ समझमें न आया। श्यामा कहने लगी—"समझ गई, पर अब क्या होता है—पसन्द हों चाहे नहीं,—सात फेरे जब लगा चुकी हो, तो इक्कीस फेरे उल्टे लगानेपर भी गांठ न खुलेगी।

कुमुदने कहा—"यह क्या कह रही हो जीजी !"

श्यामाने जवाब दिया—"क्यों, खुलासा कहनेसे ही क्या दोष हो जाता है, बहन? चेहरा देखनेसे क्या मालूम नहीं होता ?—पर तुम्हें दोष न दूँगी।—वे हमारे घर के हैं, इससे क्या आँखें थोड़े ही फूट गई हैं ?—बड़े कठोरसे पाला पड़ा है, बहू समझ-बूझकर चलना।"

इतनेमें मोतीकी माको अन्दर आते देख बोल उठी—"डरो मत, डरो मत वकुल-फूल, जाती हूँ मैं। मैंने सोचा कि तुम नहीं हो इसी मौकेपर जरा अपनी नई ब्याहलीको देख आऊँ।—है तो बात ठीक, कंजूसका धन है, होशियारीसे रखना पड़ेगा।—सखीसे मैं कह रही थी कि हमारे देवरको तो अधकपालीका दर्द समझो ; बहूको लिया है उनके बाईं तरफके पानेके-कपालने, अब

दाहनी ओरके रखनेका कपाल अगर रख सके, तब कहीं पूर पड़ेगी।"

इतना कहकर वह जल्दीसे घरसे निकल गई, और तुरन्त ही फिर वापस आकर कुमुदके सामने पानकी डिबिया खोलकर बोली—"लो, एक खा लो। तमाखू खानेकी आदत है?"

कुमुदने कहा—"नहीं।"

श्यामासुन्दरीने एक चुटकी तमाखू उठाकर अपने मुँहमें डाली, और धीमी चालसे बाहर चली गई।

"अभी आई मैं, ज़रा बड़ी-मौसीको खिलाकर विदाकर आऊँ, देर न करूँगी।"—कहकर मोतीकी मा चली गई।

श्यामासुन्दरीने कुमुदके मनमें एक बड़ी भारी स्वादहीन बात जगा दी। आज कुमुदको सबसे ज्यादा ज़रूरत थी मायाके आवरणकी; उसीको वह अपने मनमें गढ़ने बैठी थी, और जो सृष्टिकर्त्ता द्युलोक-भूलोकमें अनेक रंग लिये रूपकी लीला करते हैं, उन्हें भी सहायक बनानेकी कोशिश कर रही थी, इतनेमें श्यामाने आकर उसके स्वप्नके बुने जालमें आघात किया। कुमुद आँखें मींचकर खूब ज़ोरसे अपनेको कहने लगी—"पतिकी उमर ज्यादा है; इसलिए उन्हें प्रेम नहीं करती, यह बात कभी सच्ची नहीं हो सकती—लज्जा, लज्जा आती है! यह तो ओछी स्त्रियोंका काम है!" शिवके साथ सतीके सम्बन्धकी बात क्या उसे याद नहीं? शिव-निन्दकोंने उनकी उमरके बारेमें ताना मारा था, पर उस बातको सतीने सुनी-अनसुनी कर दी थी।

पतिकी उमर या रूपके बारेमें अब तक कुमुदने कोई चिंता ही नहीं की। साधारणतः जिस प्रेमको लेकर स्त्री-पुरुषका विवाह सत्य होता है, जिसमें रूप-गुण देह-मन सब कुछ मिला हुआ है, उसकी कोई आवश्यकता है, यह बात कुमुदने कभी सोची नहीं है।

पसन्द करके वर लेनेकी बातको ही रंग पोतकर दबा देना चाहती है।

इसी समय फूलदार कोट और ज़री पाड़की धोती पहने एक छै-सात वर्षका लड़का घरमें आतेके साथ ही कुमुदकी देहसे सटकर खड़ा हो गया। बड़ी-बड़ी मुग्ध करनेवाली आँखोंसे कुमुदके मुंहकी तरफ देखकर उसने डरते-डरते धीरेसे मीठे स्वरमें कहा—"ताईजी।"

कुमुदने उसे अपनी ओर गोदमें खींचकर कहा—"क्यों बेटा, तुम्हारा नाम क्या है ?"

बालकने बड़ी शानके साथ, नामके आगे पीछे पुछल्ला लगाकर, कहा—"श्री मोतीलाल घोषाल।"

सब कोई उसे 'हाबलू' कहकर पुकारा करते हैं, इसीलिए उपयुक्त देश-काल-पात्रमें अपने सम्मानकी रक्षाके लिए पितृ-दत्त नामको उसे इतना सुसम्पूर्ण करके कहना पड़ता है। उस समय कुमुदका अन्तस्तल पके फोड़ेकी तरह टीस मार रहा था, इस बच्चेको छातीसे लगाकर।मानो वह जी गई। एकाएक ऐसा मालूम हुआ, मानो इतने दिनोंसे मन्दिरमें वह जिन गोपालजीको फूल चढ़ाती आई है, इस बालकके रूपमें वे ही उसको गोदमें आ बैठे हैं। ठीक जिस समय वह उन्हें बुला रही थी, उस दुःखके समयमें ही आकर उन्होंने कहा—"यह देख, मैं हूँ तो सही—तेरी सान्त्वना।" मोतीके गोल-गोल गाल मसककर कुमुदने कहा—"गोपाल, फूल लोगे ?"

कुमुदके मुंहसे गोपालके सिवा और कोई नाम न निकला। सहसा अपने नामान्तरसे हाबलूको कुछ आश्चर्य मालूम हुआ, परन्तु ऐसा स्वर उसके कानोंमें पहुँचा है कि उसके मनमें कोई आपत्ति ही नहीं आ सकती।

इतनेमें बगलके कमरेसे लड़केकी आवाज़ सुनकर मोतीकी मा दौड़ी आई, बोली—"क्यों रे लंगूर, तू यहाँ भी आ गया !" अब तो

'श्री मोतीलाल घोषाल' का सब मान जाता रहा। दाहिने हाथसे ताईका अंचल दाबे, शिकायत-भरी आँखें उठाकर वह चुपचाप अपनी माके मुंहकी ओर ताकता रहा। कुमुदने हाबलूको अपने बायें हाथसे घेरकर कहा—"नहीं-नहीं, रहने दो।"

"ना बहन, बहुत रात हो गई है। अब जाकर सोने दो—इस घरमें उसे बड़ी आसानीसे पाओगी, उस-सा सस्ता लड़का और कोई नहीं है।"—कहकर मोतीकी मा अनिच्छुक लड़केको सुलानेके लिए ले गई। बस, इतने-ही-भरसे कुमुदके मनका भार हलका हो गया। उसे मालूम हुआ, मानो प्रार्थनाका जवाब वह पा गई, जीवनकी समस्या अब सरल होकर दिखाई देगी—इसी छोटे से बच्चेकी तरह।

[२३]

बहुत रात बीते मोतीकी माकी नींद खुल गई; देखा तो कुमुद अपने बिस्तरपर उठकर बैठ गई है, दोनों हाथ जोड़कर गोदमें रख लिये हैं, ध्यानाविष्ट नेत्र मानो सामने किसीको देख रहे हैं। ज्यों-ज्यों उसे मधुसूदनको अपने हृदयमें विराजमान करनेमें बाधा आती जाती है, त्यों-त्यों वह अपने देवताओंके द्वारा पतिको घेरे रहना चाहती है। स्वामीको उपलक्ष्य करके अपनेको वह दान करना चाहती है देवताको। देवताने उसकी पूजा बड़ी कठिन कर दी है, यह प्रतिमा स्वच्छ नहीं है, किन्तु यही तो भक्तिकी परीक्षा है। शालग्राम-शिला तो कुछ दिखाती नहीं; भक्ति जो उस रूप-हीनताके अन्दर बैकुण्ठनाथका रूप प्रकट करती है वह सिर्फ़ अपने बलसे। जहाँ दिखाई नहीं पड़ती, वहीं देखूँगी—यही हो मेरी साधना। जहाँ भगवान् छुपके रहते हैं, वहीं जाकर उनके चरणोंमें अपनेको दान करूँगी, वे मुझे धोखा नहीं दे सकते।

"मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई"—

भइयासे सीखे हुए मीरा बाईके इस गीतको वह बार-बार मन-ही-मन गाने लगी।

मधुसूदनका अत्यन्त कठोर परिचय जो उसने पाया है, उसे वह 'कुछ नहीं' कहकर—पानीका बुद्बुदा जानकर—उड़ा देना चाहती है;—चिरकालके जो सत्य हैं, सब-कुछ आवृत किये हुए वे ही तो हैं—"दूसरा न कोई, दूसरा न कोई।" इसके सिवा और एक व्यथा है, उसे भी वह माया समझना चाहती है—वह है उसके जीवनकी शून्यता। आज तक जिनको लेकर उसका सब-कुछ बनकर तैयार हुआ है, जिनके छोड़ देनेसे उसके जीवनका कोई अर्थ ही नहीं रह जाता, उनके साथ विच्छेद,—वह अपनेको समझाती है, यह शून्य भी पूर्ण है,—

"तात छाँड़ी, मात छाँड़ी, छाँड़ी सगा सोई"
मीरा प्रभु लगन लागी होनी होइ सो होई।"

छोड़ी तो बापने है—माने छोड़ी है, किन्तु उन्हींके भीतर जो चिरकालके हैं, उन्होंने तो नहीं छोड़ी। प्रभु, और भी जो कुछ छुड़ाना चाहें, छुड़ा लें; तुमने शून्यको भर देनेके लिए ही छुड़ाया है। मेरी लगन तो तुम्हींमें है, जो होगा सो होता रहेगा!—मनका गान कब उसके कण्ठमें खिल उठा, उसे पता भी नहीं—दोनों आँखोंसे आँसू टपकने लगे।

मोतीकी माने चूँ तक न की, चुपचाप देखती रही, और उसके बाद कुमुद जब बहुत देर तक नमस्कार करके एक गहरी उसास लेकर सो गई, तब मोतीकी माके मनमें एक चिन्ता दिखाई दी, जिसे पहले कभी उसने सोचा ही न था।

वह सोचने लगी—हमारा जब ब्याह हुआ था, तब तो मैं ज़रा-सी बच्ची थी,—'मन' कहानेवाली कोई बला थी ही नहीं।

छोटा बच्चा जैसे फलको चटसे बिना विचारे मुँहमें ठूँस लेता है, पतिकी गिरस्तीने उसी तरह बिना विचारे हमें लील लिया है, कहीं भी जरा अटका नहीं। साधना करके हम नहीं ली गई थीं, हमारे लिए तो बस मुहुर्त्त शोधना आवश्यक था। जिस दिन कह दिया 'आज सुहाग-रात है', उसी दिन हुई सुहाग-रात, क्योंकि सुहाग-रातका कोई अर्थ न था, वह था एक खेल। कल ही तो है सुहाग-रात,—किन्तु इस लड़कीके लिए यह कितनी बड़ी विडम्बना है! जेठजी अभी तक पराये हैं; अपने होनेमें बहुत समय लगता है। इस तक पहुँचेंगे कैसे? यह लड़की उस अपमानको सहेगी कैसे? धन पानेमें जेठजीको कितना समय लग गया, और मन पानेमें दो दिनका सबर न होगा? उस लक्ष्मीके द्वारपर दौड़-धूप करते-करते मर-मिटे हैं, इस लक्ष्मीके द्वारपर एक बार हाथ ही न पसारेंगे?

वैसे इतनी बात मोतीकी माके मनमें न आती। आई है उसका कारण यह है कि कुमुदिनीको देखते ही उसने उसे सारे अन्तःकरणसे अपना लिया है—वह उसे हृदयसे चाहती है। इस प्रेमकी पूर्व-भूमिका तभीसे हो चुकी थी, जब स्टेशनपर उसने विप्रदासको देखा था। मानो महाभारतसे भीष्म उतर आये हों। शूर-वीरके समान तेजस्वी मूर्त्ति थी, तापसके समान शान्त मुखश्री थी, उसके साथ थी एक विषाद-भरी नम्रता। मोतीकी माके मनमें आई थी कि अगर कोई कुछ न कहे, तो एक बार जाकर उनके पैर छू आवे। उस रूपको वह आज भूल नहीं सकी है। उसके बाद जब उसने कुमुदको देखा, मन-ही-मन बोली—है तो भाईकी ही बहन।

एक तरहका जातिभेद है, जो समाजका नहीं, रक्तका है,—वह जात किसी तरह तोड़ी नहीं जा सकती। यह जो रक्तगत

जातिका असामंजस्य है, यह स्त्रीको जैसा चुभा-चुभाकर मारता है, उस तरह पुरुषको नहीं। थोड़ी उमरमें ब्याह होनेके कारण मोतीकी माको यह रहस्य अपनेमें समझनेका समय नहीं मिला, किन्तु कुमुदके भीतर जाकर इस बातका उसने निश्चित रूपमें अनुभव किया। उसकी देहमें मानो फुरफुरी-सी उठने लगी, मानो उसने एक विभीषिकाका चित्र देखा—जहाँ एक अपरिचित जानवर अपनी लालायित जीभ लटकाये चुपचाप सिमटा हुआ बैठा है, उसी अन्धकारमय गुफाके सामने कुमुदिनी खड़ी-खड़ी देवताको पुकार रही है। मोतीकी माको क्रोध आ गया, वह मन-ही-मन बोल उठी—"देवताके मुँहपर खाक! जिस देवताने उसपर आफ़त ला दी है, वही उसका उद्धार करेगा? हाय रे!"

[२४]

दूसरे दिन सवेरे ही कुमुदको भइयाका तार मिल गया—"भगवान् तुझे आशीर्वाद देवें।" उस तारके काग़ज़को उसने अपनी कुरतीके भीतर छातीके पास रख लिया। इस तारमें मानो भइयाके दाहने हाथका स्पर्श था, परन्तु भइयाने अपनी तबीयतका हाल कुछ क्यों नहीं लिखा? तो क्या बीमारी बढ़ गई है? भइयाका सब हाल क्षण-क्षणमें जिसके लिए प्रत्यक्षगोचर था, आज उसके लिए वह सब बन्द है।

आज सुहागरात है, आदमियोंके मारे घरमें मेला-सा लग गया है। घरकी स्त्रियाँ दिन-भर कुमुदको हिलाती-डुलाती रहीं। किसी तरह उसको ज़रा भी अकेले न रहने दिया। आज अकेले रहनेकी बड़ी ज़रूरत थी।

सोनेके कमरेके पास ही नहानेका कमरा है; वहाँ नहानेका नल है और धारा-स्नानके लिए उसमें झँझरी लगी हुई है। ज़रा

मौक़ा मिलते ही बकसमेंसे भगवानकी युगल जोड़ीका चित्रपट निकालकर कुमुद नहानेके कमरेमें घुस गई और भीतरसे दरवाजा बन्द कर लिया। सफ़ेद पत्थरकी जल-चौकीपर चित्र रखकर उसके सामने ज़मीनपर बैठकर अपने मनमें बार-बार कहने लगी—"मैं तुम्हारी ही हूँ, आज तुम्हीं मुझे ग्रहण करो। वह और कोई नहीं, वह तुम्हीं हो, तुम्हीं हो, तुम्हीं तो हो। तुम्हारा ही युगल रूप प्रकट हो मेरे जीवनमें।"

डाक्टरोंका कहना है कि विप्रदासका इन्फ्लूएञ्जा निमोनियामें परिणत हो गया है। नवगोपाल अकेले कलकत्ते आये—सुहागरातकी सौगात भेजनेका इन्तज़ाम करने। खूब धूम-धामके साथ सौगात भेजी गई। विप्रदास खुद होते तो इतना आडम्बर न करते।

कुमुदके व्याहमें, उसकी चारों बड़ी बहनोंको बुलाया था; पर बदनामी-सी फैल गई है कि घोपाल लोग सद्ब्राह्मण नहीं हैं, इसलिये उनके घरवाले उन्हें इस व्याहमें किसी भी तरह भेजनेको राज़ी न हुए। कुमुदकी तीसरी बहन पतिसे लड़-झगड़कर व्याहके दूसरे दिन किसी तरह कलकत्ते आई भी, तो, नवगोपालने उससे कह दिया—"उनके यहाँ तुम जाओगी तो हमारी इज्ज़तमें बट्टा लगेगा।" ब्याहकी रातवाली बातको वे अब तक नहीं भूल सके हैं। इसीसे, केवल निमन्त्रणकी रक्षाके लिए कुछ इधर-उधरकी छोटी-छोटी लड़कियोंको एक बुढ़िया नौकरानीके साथ भेज दिया। कुमुदने समझा कि सन्धि अभी तक हुई नहीं है, शायद कभी होगी भी नहीं।

कुमुदिनी नवीन वस्त्राभूषणोंसे लाद दी गई। जिनके साथ हँसी-दिल्लगीका रिश्ता था, उनकी हँसी-ठठोली भी समाप्त हो चुकी। अब मेहमानोंको खिलाने-पिलानेकी बारी है। मधुसूदनने

पहले ही से कहला रखा था कि ज़्यादा रात न होने पावे, कल हमें बहुत काम करना है। नौ बजते ही आज्ञानुसार नीचेके आँगनसे ज़ोरका घंटा बज उठा। बस, अब एक मिनट भी नहीं। समय अतिक्रम करनेकी सामर्थ्य किसीमें न थी। सभा भंग हो गई। आकाशसे बाज़की छाया देखकर कबूतरकी जैसे दशा होती है, कुमुदका हृदय वैसे ही काँपने लगा। उसके ठंढे हाथोंमें पसीना आ रहा है, मुँह उसका फीका पड़ गया है। कमरेसे बाहर निकलते ही मोतीकी माका हाथ थामकर बोली—"मुझे थोड़ी देरके लिए ज़रा कहीं ओटमें ले चलो। दस मिनटके लिए मुझे अकेली रहने दो।" मोतीकी मा उसे झटपट अपने सोनेके कमरेमें ले गई और बाहरसे दरवाज़ा बन्द कर दिया। बाहर खड़ी-खड़ी वह आँचलसे अपनी आँखें पोंछती हुई बोली—"तेरी ऐसी तक़दीर!"

दस मिनट बीते, पन्द्रह मिनट बीते। आदमी आया,—'दूल्हा सोनेके कमरेमें पहुँच गया, दुलहिन कहाँ है?' मोतीकी माने कहा—"इतनी जल्दबाज़ी क्यों करते हो? बहू गहने कपड़े न उतारे?" मोतीकी मा शक्ति-भर उसे समय देना चाहती है। अन्तमें जब देखा कि अब नहीं बनेगी, तब उसने दरवाज़ा खोल दिया; देखा, तो बहू ज़मीनपर बेहोश पड़ी है।

शोर-गुल मच गया। उठाकर सहारेसे बिस्तरपर लिटाई गई; कोई पानीके छींटे मारने लगी, तो कोई पंखा करने। कुछ देर बाद जब होश आया, तो कुमुद समझ न सकी कि वह कहाँपर है,—पुकार उठी—"भइया!" मोतीकी माने जल्दीसे उसके मुँहके पास अपना मुँह ले जाकर कहा—"डरो मत जीजी, मैं हूँ तो सही।"—कहकर उसका मुँह गोदमें उठाकर छातीसे चिपका लिया। सबसे कहा—"तुम लोग भीड़ न करो, मैं अभी इन्हें

लेकर आती हूँ।" कुमुदके कानमें कहने लगी—"डरो मत बहन, डरो मत !"—कुमुद धीरेसे उठी। मन-ही-मन भगवानका नाम लेकर नमस्कार किया। पास ही दूसरे बिछौनेपर हाबलू गहरी नींद में पड़ा सो रहा था—उसके पास जाकर कुमुदने उसका माथा चूमा। मोतीकी माने उसे मधुसूदनके कमरे तक पहुँचाकर पूछा—"अब भी डर लगता है, जीजी ?"

कुमुदने हाथकी मुट्ठियाँ ज़रा कड़ी करके हँसते हुए कहा—"नहीं तो, मुझे नहीं लगता।" मन-ही-मन बोली—"यही मेरा अभिसार है, बाहर अन्धकार है, भीतर प्रकाश।"

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई"—

[२५]

इतनेमें श्यामसुन्दरी हाँफती-हाँफती आई और मधुसे बोली—"बहूको मूर्च्छा आ गई है।" मधुसूदनका मन भयसे जल उठा; बोला—"क्यों, उसे हो क्या गया ?"

"सो तो नहीं कह सकती, वह तो 'भइया भइया' करके बावली हो रही है। हाँ, तो तुम ज़रा देखने चलोगे ?"

"क्या होगा ! मैं तो उसका भइया नहीं हूँ।"

"झूठमूठको गुस्सा करते हो देवरजी, ये सब बड़े घरकी लड़कियाँ हैं; ज़रा देरसे वशमें आयेंगी।"

"रोज़-रोज़ वे मूर्च्छित हों और मैं उनके सिरपर हकीमी तेलकी मालिश किया करूँ—क्यों, इसीलिए तो मैं उन्हें ब्याहके लाया हूँ ?"

"देवरजी, तुम्हारी बातें सुनकर तो हँसी आती है। हाँ, तो इसमें बुराई कौनसी है, हमारे वक्तोंमें तो बात-बातमें मानिनियों-को मनाना पड़ता था, अब तो सिर्फ मूर्च्छा ही छुटानी पड़ेगी।"

मधुसूदन गुम्म होकर बैठ रहा। श्यामासुन्दरीने मारे करुणाके विगलित हो पास आकर हाथ थामकर कहा—"देवरजी, ऐसा जी खराब मत करो, देखकर मुझसे सहा नहीं जाता।"

श्यामामें इससे पहले इतनी हिम्मत न थी कि वह मधुसूदनके इतने पासमें जाकर उसे धीरज बँधावे। प्रगल्भा श्यामा उनके सामने बिलकुल चुप बनी रहती थी, जानती थी मधुसूदनको ज्यादा बात सह्य नहीं होती। स्त्री-सुलभ सहज बुद्धिसे श्यामा समझ गई कि मधुसूदन आज वह मधुसून नहीं है। आज वह दुर्बल है, अपने सम्मानके बारेमें उतनी सावधानी उसमें नहीं रही। देवरके हाथसे हाथ मिलाकर वह समझ गई कि यह उन्हें बुरा नहीं लगा है। नव-वधूने उसके अभिमानपर जो चोट पहुँचाई है, किसी एक जगहसे उसकी चिकित्सा पाकर भीतर ही भीतर उसे ज़रा-कुछ आराम-सा मालूम हुआ है,—श्यामा कमसे कम उनका अनादर नहीं करती, यह भी तो नितान्त तुच्छ बात नहीं है। श्यामा क्या कुमुदसे कुछ कम सुन्दर है,—यह भले ही कह लो कि उसका रंग ज़रा साँवला है,—पर उसकी आँखें, उसके बाल, उसके रसीले ओठ!

श्यामा बोल उठी—"वो देखो, आ रही है बहू, मैं जाती हूँ अब ; पर देखना, उससे गुस्सा-गुस्सी मत करना,—अहा, बेचारी अभी लड़की ही तो है!"

कुमुदके घरमें घुसते ही मधुसूदनसे फिर रहा न गया, बोल उठा—"मायकेसे मूर्च्छाका अभ्यास कर आई हो, क्यों? पर हमारे यहाँ इसका रिवाज नहीं है। तुम्हें अपनी यह नूरनगरी चाल छोड़नी पड़ेगी।"

कुमुदिनी एकटक पतिके मुँहकी ओर देखती हुई चुपचाप खड़ी रही, एक बात भी न कही।

मधुसूदन उसके मौनसे और भी गुस्सा हो गया। उसके मनकी खूब गहराईमें इस लड़कीका मन पानेके लिए एक आकांक्षा जाग उठी है—इसीसे उसका यह तीव्र निष्फल क्रोध है। बोल उठा—"मैं काम-काजी आदमी हूँ, फुरसत कम है, हिस्टीरिया-वाली औरतकी खिदमतगारीके लिए मेरे पास वक्त नहीं, साफ़ कहे देता हूँ।"

कुमुदने धीरेसे कहा—"तुम मुझे अपमानित करना चाहते हो? मुझे हार माननी होगी। तुम्हारे अपमानको मैं मनमें न लाऊँगी।"

कुमुद किससे ये सब बातें कह रही है? उसके विस्फारित नेत्रोंके सामने कौन खड़ा हुआ है? मधुसूदन दंग रह गया, सोचने लगा—यह औरत लड़ती क्यों नहीं? इसका इरादा क्या है?

मधुसूदनने वक्रोक्तिसे कहा—"तुम अपने भइयाकी चेली हो, पर याद रखना, मैं तुम्हारे उस भइयाका महाजन हूँ, उसे इस हाट खरीदकर उस हाट बेच सकता हूँ।"

कुमुदके मनपर इस बातको अंकित कर देनेके लिए कि वह उसके भइयासे श्रेष्ठ है, मूढ़को और कोई शब्द ढूँढ़े नहीं मिले।

कुमुदने कहा—"देखो, निठुर बनो तो बनो, पर छोटे मत बनो।" कहकर सोफेपर बैठ गई।

कर्कश स्वरमें मधुसूदन बोल उठा—"क्या कहा! मैं छोटा हूँ! और तुम्हारा भइया मुझसे बड़ा है?"

कुमुदने कहा—"तुम्हें बड़ा जानकर ही तुम्हारे घर आई हूँ।"

मधुसूदनने व्यंगसे कहा—"बड़ा जानकर आई हो, या रुपयेके लोभसे?"

तब कुमुदिनी सोफेपरसे उठकर बाहर निकल आई, और खुली छतपर ज़मीनपर जाकर बैठ गई।

कलकत्तेमें, जाड़ोंकी कंजूस रात है—धुआँ और कुहरेसे धुँधली हो गई है। आकाश अप्रसन्न है, तारोंका प्रकाश ऐसा लगता है जैसे बैठे हुए गलेका स्वर। कुमुदका मन तब अनुभूति-शून्य हो रहा था, कोई चिन्ता नहीं, कोई वेदना नहीं। एक घने कुहरेमें मानो वह लुप्त हो गई हो।

मधुसूदनने इस बातकी कल्पना भी न की थी कि कुमुदिनी इस तरह चुपचाप कमरेमेंसे निकलकर बाहर चली जायगी। अपनी इस हारके लिए सबसे ज्यादा गुस्सा आया कुमुदके भइयापर। चाकीपर बैठकर शून्य आकाशकी ओर उसने एक घूँसा उठाया। कुछ देर बैठा रहा, फिर धैर्य न रख सका। भड़भड़ाकर उठ खड़ा हुआ और छतपर निकलकर उसके पीछे जाकर बोला—"बड़ी बहू।"

कुमुद चौंक पड़ी और घूमकर खड़ी हो गई।

"जाड़ेमें बाहर यहाँ ओसमें खड़ी खड़ी क्या कर रही हो? चलो भीतर।"

कुमुद बिना किसी संकोचके मधुसूदनके चेहरेकी ओर ताकती रही। मधुसूदनमें जो कुछ प्रभुत्वका जोर था, वह उड़ गया। कुमुदका बायाँ हाथ पकड़कर धीरेसे बोला—"आओ, भीतर चलो।"

दायें हाथमें उसके भइयाका आशीर्वादका टेलीग्राम था, उसे उसने छातीसे लगा लिया। पतिके हाथमेंसे अपना हाथ खींचा नहीं, चुपचाप धीरे-धीरे सोनेके कमरेमें चली गई।

[२६]

दूसरे दिन तड़के ही जब कुमुद बिस्तरपर उठकर बैठी, तब उसके पति सो रहे थे। कुमुदने उनके मुँहकी ओर न देखा, शायद कहीं मन बिगड़ न जाय। बड़ी सावधानीसे उठकर पैरोंके पास प्रणाम किया, फिर वह नहानेके कमरेमें चली गई। नहा चुकनेपर पीछेकी ओरका दरवाज़ा खोलकर छतपर जाकर बैठ गई, तब कुहरेके भीतरसे पूर्व-आकाशमें एक मलिन सोनेकी रेखा चमक रही थी।

दिन चढ़ा, जब घाम निकला तो कुमुदने धीरे-धीरे सोनेके कमरेमें आकर देखा—उसके स्वामी तो उठकर चल दिये हैं। आईनेके दराजपर उसका मोतीका बुना हुआ बटुआ रखा था। भइयाका तार रखनेके लिए जो उसे खोला, देखा तो उसमें नीलम की अगूठी नहीं !

सबेरेकी मानस-पूजाके बाद उसके चेहरेपर जो एक शान्तिका भाव आया था वह बिला गया—आँखोंमें आग जल उठी। कुछ मिठाई और दूधका कलेवा करानेके लिए मोतोका मा उसे बुलाने आई। कुमुदके मुँहसे जवाब न निकला—जैसे कठिन पत्थरकी मूर्ति हो।

मोतीकी मा डरकर पास आकर बैठ गई, पूछा—"क्या हुआ, बहन ?" कुमुदके मुँहसे बात न निकली, ओठ काँपने लगे।

"बताओ, जीजी, मुझे बता दो, कहाँ तुम्हारे पीड़ा पहुँची है ?"

कुमुदने रूँधे हुए कंठसे कहा—"ले गये हैं चुराकर।"

"क्या ले गये, जीजी ?"

"मेरी अंगूठी, भइयाको दी हुई आशीर्वादकी अंगूठी।"

"कौन ले गया ?"

कुमुद उठकर खड़ी हो गई और किसीका नाम बिना लिये ही बाहरकी ओर इशारा किया।

"शान्त हो बहन, हँसी की होगी तुम्हारे साथ, फिर लौटा देंगे।"

"न लूँगी अब, देखूँ कितना अत्याचार कर सकते हैं वे।"

"अच्छा, यह पीछे होता रहेगा, अभी ज़रा कुछ मुँहमें डाल लो, चलो।"

"नहीं, मुझसे नहीं होगा, यहाँका खाना गलेसे उतरेगा नहीं!"

"लक्ष्मी बहन कैसी हो, मेरी खातिरसे खा लो।"

"एक बात पूछती हूँ, आजसे मेरी अपनी कहनेको तो कोई चीज़ रही ही नहीं ?"

"नहीं, नहीं रही। जो कुछ है, सब स्वामीकी मरजी पर। जानती नहीं, चिट्ठीमें 'दासी' लिखकर दस्तखत करने पड़ेंगे।"

दासी! रघुवंशकी इन्दुमतीकी बात याद उठ आई—

गृहिणी सचिवः सखीमिथः
प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ—

इस तालिकामें दासी तो कहीं नहीं लिखा है। सत्यवानकी सावित्री क्या दासी थी ? या 'उत्तर-रामचरित्र' की सीता ?

कुमुदने कहा—"स्त्रियाँ जिनकी दासी हैं वे किस जातिके आदमी हैं ?"

"उनको अभी तुमने पहचाना नहीं है। केवल दूसरेसे ही गुलामी कराते हों, सो नहीं, वे खुद अपनी गुलामी आप करते हैं। जिस दिन वे आफिस नहीं जा पाते, उनके अपने हाथ-खर्चसे

उस दिनके रुपये कट जाते हैं। एक बार बीमार पड़ गये थे, तो एक महीनेका हाथ-खर्च बन्द रहा था। उसके बाद दो-तीन महीनोंमें खाने-पीने तकका खर्च घटाकर नुकसान बराबर कर लिया। इतने दिनोंसे मैं घर-गिरस्तीका काम चला रही हूँ, इसके लिए मेरा भी माहवारी बँधा हुआ है। आत्मीय-स्वजन वे किसीको नहीं मानते। इस घरमें मालिकसे लेकर नौकर-नौकरानी तक सभी गुलाम हैं।"

कुमुदने ज़रा चुप रहकर कहा—"मैं वही गुलामी ही करूंगी। मैं अपने खाने-पहरनेके खर्चके अनुसार रोज़का रोज़ अपना फर्ज अदा करती रहूँगी। इस घरमें मैं बिना तनखाकी स्त्री-बाँदी होकर न रहूँगी। चलो, मुझे कामपर भरती कर लो। घर-गिरस्ती का भार तो तुम्हींपर है न,—मुझे तुम अपनी आधीनता में काम करा लिया करो, कोई मुझे 'रानी' कहकर मेरी हँसी न उड़ावे, बस।"

मोतीकी माने हँसते हुए कुमुदकी ठोड़ी पकड़कर कहा—"तो फिर तुम्हें मेरी बात माननी पड़ेगी। मैं हुक्म देती हूँ, चलो अब खाने चलो।"

घरसे निकलते-निकलते कुमुदने कहा—"देखो बहन, मैं अपनेको देनेके लिए ही तैयार होकर आई थी, परन्तु उन्होंने किसी तरह देने ही नहीं दिया। अब दासीको लेकर ही रहें। मुझे नहीं पायेंगे।"

मोतीकी माने कहा—"लकड़हारा पेड़को काटना ही जानता है, उसे पेड़ नहीं मिलता—मिलती है लकड़ी। माली वृक्षकी रक्षा करना जानता है, उसे मिलते हैं फूल, मिलते हैं फल। तुम लकड़हारेके पाले पड़ी हो, वे तो रोजगारी हैं। उनके मनमें दर्द नहीं है कहीं भी।"

किसी समय अपने सोनेके कमरेमें लौटकर कुमुदने देखा कि उसकी तिपाईपर एक शीशी 'लौजेन्जस' की रखी है। हाबलू

अपने त्यागके अर्घ्यको चुपकेसे चढ़ाकर स्वयं कहीं दुबक गया है। यहाँ पत्थरकी सँधमेंसे भी फूल खिलते हैं। बालककी इस लौजेञ्ज सकी भाषाने एक साथ उसे रुलाया और हँसाया। बच्चेको ढूँढ़नेके लिये बाहर आई, तो देखा कि वह दरवाज़े की ओटमें चुपचाप खड़ा है। माने उसे उस कमरेमें जाननेकी मनाई कर दी थी। उसे डर था कि कहीं किसी कारणसे मालिक साहब नाराज़ न हो जायँ। बात यह थी कि मधुसूदनका खास अपना कोई काम हो तो दूसरी बात है, नहीं तो अन्य बातोंमें उनसे बिलकुल दूर रहना ही निरापद है, यह बात घरके सब-कोई जानते हैं।

कुमुद हाबलूको पकड़कर कमरेमें ले आई और उसे अपनी गोदमें बिठा लिया। कमरेकी सजावटके अन्दर खिलौना-जातीय जितनी भी चीज़ें थीं, उन्हें दोनों जने मिलकर हिलाने-डुलाने लगे। कुमुद समझ गई कि यह काग़ज़ दबानेका काँच (पेपर-वेट) हाबलूको बहुत पसन्द है—काँचके भीतरसे रंगीन फूल किस तरह दिखाई दे रहा है, यह बात उसकी समजमें नहीं आ रही—इससे वह दंग रह गया है।

कुमुदने कहा—"इसे लोग, गुपाल ?"

इतनी बड़ी अचिन्तनीय बात उसने अपनी उमरमें कभी नहीं सुनी। ऐसी चीज़की भी क्या कभी वह आशा कर सकता है ? आश्चर्यसे संकोचसे वह कुमुदके मुँहकी ओर चुपचाप देखता रहा।

कुमुदने कहा—"इसे तुम ले जाना, भला !"

हाबलू मारे खुशीके फूला न समाया,—उसे हाथमें लेकर चटसे ऊलता हुआ भाग गया।

उस दिन शामको हाबलूकी माने आकर कहा—"तुमने यह किया क्या, बहन ? हाबलूके हाथमें काँचका 'काग़ज़-दबाना'

(पेपर-वेट) देखकर जेठजीने तो जौहर मचा दिया है। छिड़ा तो खैर लिया ही, फिर ऊपरसे चोर कहकर पीट डाला बेचारेको। लड़का भी ऐसा है कि तुम्हारा नाम तक नहीं लिया। सुन लेना, पीछे कभी यह भी बात उठेगी कि हाबलूको मैं ही चीज़-वस्त चोरी करना सिखाती हूँ।"

कुमुद काठकी मूर्तिकी तरह कठिन होकर बैठ रही।

इतनेमें बाहरसे जूतेकी मच-मच आहट सुनाई दी—मधुसूदन आ रहा है। मोतीकी मा झटपट वहाँसे भागकर चली गई! मधुसूदन काँचका 'कागज़-दाबना' हाथमें लिये कमरेमें आया और धीरेसे उसे जहाँ-का-तहाँ सजाकर रख दिया। उसके बाद निश्चित-विश्वासके साथ शान्त-गंभीर स्वरमें बोला—"हाबलू तुम्हारे घरसे यह चुरा ले गया था। चीज़-वस्त ज़रा सावधानीसे रखना सीखो।"

कुमुदने तीखे स्वरमें कहा—"उसने चुराया नहीं है।"

"अच्छा, न सही, उठा ले गया था।"

"नहीं, मैंने ही उसे दिया है।"

"इसी तरह तुम उसका सत्यानाश करने बैठी हो, क्यों? एक बात याद रखना, बिना मेरे हुक्मके कोई चीज़ किसीको न देने पाओगी। मैं बेसिलसिलेको कोई चीज़ पसन्द नहीं करता।"

कुमुद खड़ी हो गई, बोली—"तुमने नहीं ली मेरी नीलमकी अँगूठी।"

मधुसूदनने कहा—"हाँ, ली है।"

"उससे भी तुम्हारे कांचके ढेलेका दाम नहीं चुका?"

"मैंने तो कह दिया था, उसे तुम नहीं रख सकतीं।"

"तुम्हारी चीज़ तुम रख सकोगे, और मेरी चीज़ मैं नहीं रख सकूँगी?"

"इस घरमें तुम्हारी अलग समझी जानेवाली कोई चीज़ नहीं है।"

"कोई चीज़ नहीं ? तो यह रहा तुम्हारा घर, सम्हालो।"

कुमुदके जातेके साथ ही श्यामाने कमरेमें आकर पूछा—"बहू कहाँ गई ?"

"क्यों ?"

"सबेरेसे उसका कलेवा लिये बैठी हूँ, इस घरमें आकर बहू क्या खाना भी बन्द कर देगी ?"

"सो हुआ क्या ? नूरनगरकी राजकन्याने न खाया, तो न सही ? तुम लोग उनकी बाँदी हो क्या ?"

"अरे चलो रहने दो, ज़रासी लड़कीपर कहीं इतना गुस्सा नहीं किया जाता। वह इस तरह बिना खाये-पिये दिन काटेगी, यह हम लोगोंसे देखा नहीं जाता। उस दिन गश क्या यों ही आ गया था ?"

मधुसूदन गरज उठा—"कुछ नहीं करना होगा, जाओ, चली जाओ ! भूख लगनेपर आप ही खायगी।"

श्यामा मानो बहुत ही उदास होकर चली गई।

मधुसूदनके माथेमें खून चढ़ने लगा। जल्दीसे उसने नहानेके कमरेमें जाकर पानीकी झँझरी खोलकर उसके नीचे अपना सिर लगा दिया।

[२७]

शाम हो आई, उस दिन कुमुद कहीं ढूँढ़े नहीं मिली। अंतमें पता लगा कि भंडार-घरके पास एक छोटीसी कोनेकी कोठरीमें—जहाँ चिराग़, दीवट, तेलके लैम्प वग़ैरह इकट्ठे किये जाते हैं—ज़मीनपर चटाई बिछाकर बैठी हुई है।

मोतीकी माने आकर पूछा—"यह तुमने क्या किया, जीजी ?"

कुमुदने कहा—"इस घरमें मैं बत्ती साफ़ किया करूँगी, बस, यहीं मेरा स्थान है।"

मोतीकी माने कहा—"काम तो तुमने अच्छा ही लिया है, बहन, इस घरमें तुम उजाला करनेको तो आई ही हो, पर इसके लिये तुम्हें बत्तियोंके निरीक्षण करनेकी ज़रूरत नहीं। चलो अब, उठो।"

कुमुद किसी भी तरह टस-से-मस न हुई।

मोतीकी माने कहा—"तो मैं भी तुम्हारे पास सोती हूँ।"

कुमुदने दृढ़ताके स्वरमें कहा—"नहीं।"

मोतीकी माने देखा कि इस भलीमानस लड़कीके अन्दर हुक्म चलानेका ज़ोर है। उसे चला जाना पड़ा।

मधुसूदनने रातको आकर सोते समय कुमुदकी सुध ली। जब सुना कि वह बत्ती-घरमें है, तो पहले सोचा—'अच्छी बात है, रहने दो उसी घरमें, देखें कितने दिन रहती है; मनानेसे ज़िद बढ़ जायगी।'

यह सोचकर बत्ती बुझा दी और सोने चला गया; परन्तु किसी तरह नींद ही नहीं आती। प्रत्येक शब्दसे मालुम होता कि शायद आ रही है। एक बार जान पड़ा, मानो दरवाजेके बाहर खड़ी है। बिछौनेसे उठकर बाहर जाकर देखा, तो कोई कहीं नहीं। ज्यों-ज्यों रात बीतने लगी, मन-ही-मन छटपटाने लगा। कुमुदकी अवज्ञा करना चाहता है, पर किसी भी तरह उतनी शक्ति उसे नहीं मिल रही है। किंतु फिर भी, खुद आगे बढ़कर उसके सामने हार मानना, यह उनकी 'पालिसी'के विरुद्ध है। ठंडे पानीसे मुँह धोकर फिर सो रहे' पर नींद नहीं आई।

इधरसे उधर करवट बदलते-बदलते आखिर उठ ही बैठा—किसी भी तरह कौतूहलको सम्हाल न सका। हाथमें एक लालटेन लेकर सोते हुए कमरोंको चुपकेसे पार करता हुआ अन्तःपुरके उसी बत्ती-घरके सामने पहुँचा; और दरवाज़ेके पास कान लगाकर खड़ा हो गया, परन्तु भीतरसे कोई आवाज़ न सुन पड़ी, बिलकुल सन्नाटा था। सावधानीसे दरवाज़ा खोलकर देखा, तो कुमुद ज़मीनपर एक चटाई बिछाये सो रही है, उस चटाईके एक पल्लेको ज़रासा लपेटकर उसका तकिया बना लिया है। जैसे मधुसूदनकी आँखोंमें नींद नहीं, उसी तरह कुमुदकी आँखोंमें भी नींद न होनी चाहिये थी; परन्तु देखा कि वह तो आरामसे सो रही है; यहाँ तक कि उसके मुँहपर जब लालटेनका प्रकाश डाला, तब भी उसकी नींद न छूटी। इतनेमें कुमुदने ज़रा असखसाकर करवट बदली। गृहस्थके जागनेके लक्षण देखकर चोर जैसे भागता है, उसी तरह मधुसूदन वहाँसे जल्दीसे भाग आया। डर गया—कहीं कुमुद उसकी पराजयको देखकर मन-ही-मन हँस न।

बत्ती-घरसे निकलकर मधुसूदन बरामदेमें होकर जा रहा था कि सामने श्यामा मिल गई। उसके हाथमें एक चिराग़ था।

"अरे, तुम यहाँ कहाँसे आये देवरजी ?"

मधुसूदनने इसका कुछ जवाब न देकर कहा—"तुम कहाँ जा रही हो, भाभी ?"

"कल जो मेरा व्रत है, ब्राह्मण-भोजन कराना है, उसीकी फिराकमें जा रही हूँ—तुम्हारा भी निमन्त्रण रहा; पर तुम्हें दक्षिणा देने लायक शक्ति मुझमें नहीं है भइया।"

मधुसूदनकी ज़बानपर एक जवाब आ रहा था, उसे वह दाब गया।

पिछली रातके इस अन्धकारमें उस चिरागके उजेलेमें श्यामा सुन्दर दीख रही थी। श्यामाने ज़रा हँसते हुए कहा—"आज बिछौनेसे उठते ही तुम जैसे भाग्यवान् पुरुषका मुँह देखा है, मेरा आजका दिन अच्छा ही बीतेगा। व्रत सफल होगा।"

भाग्यवान् शब्दपर ज़रा जोर दिया—मधुसूदनके कानोंमें यह शब्द विड़म्बनाके समान जान पड़ा। श्यामाको कुमुदके विषयमें स्पष्टतया कुछ पूछनेकी हिम्मत न पड़ी—"हाँ, तो कल मेरे यहाँ जीमनेको आना, तुम्हें सौगंद है"—कहकर वह चली गई।

अपने कमरेमें आकर मधुसूदन बिस्तरपर लेट गया। बाहर लालटेन रख दी, शायद कुमुद आवे। कुमुदिनीका वह सोता हुआ मुख किसी तरह मनसे दूर नहीं होना चाहता, और बारबार याद आती है दुशालेसे बाहर निकले हुए उसके अतुलनीय उस हाथकी। विवाहके समय उस हाथको जब उसने अपने हाथमें लिया था, तब उसे वह अच्छी तरह देख नहीं पाया था—आज देखते-देखते उसकी आस ही नहीं मिटती। इन हाथोंका अधिकार उसे कब मिलेगा? बिछौनेपर कल न पड़ी; उठ बैठा। बत्ती जलाकर कुमुदके डेस्कका दराज़ा खोला। उसका मोतियोंका बुना हुआ बटुआ निकालकर देखा। उसमें से पहले ही निकल आया विप्रदासका टेलिग्राम—"ईश्वर तुझे आशीर्वाद दें"—उसके बाद निकला एक फोटोग्राफ, कुमुदके दोनों भाइयोंकी तसवीर—और एक काग़ज़का टुकड़ा, विप्रदासके हाथका लिखा हुआ गीताका श्लोक :—

> यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहौषि ददासि यत्,
> यत् तपस्यसि, कौन्तेय, तत् कुरुष्व मदर्पणम्।

ईर्षासे मधुसूदनका मन घायल होने लगा। दाँत पीसकर मन-ही-मन उसने विप्रदासका अस्तित्व मिटा दिया। उसे निश्चित

मालूम है कि मिटनेका वह दिन कभी-न-कभी आयेगा ज़रूर,—धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा स्क्रू कसना होगा; परन्तु कुमुदिनीके उन्नीस बरस जो मधुसूदनके अधिकारके बाहर हैं, विप्रदासके हाथसे घड़ी-भरमें ही छीन ले सके, तब कहीं उसके मनमें शान्ति हो। और कोई रास्ता जानता नहीं सिवा ज़बरदस्तीके। मोतियोंका बटुआ आज हिम्मत करके फेंक न सका—जिस दिन अँगूठी चुराई थी, उस दिन उसका साहस और भी ज़्यादा था। तब तक उसे यही मालूम था कि कुमुदिनी साधारण औरतोंकी तरह स्वभावसे ही शासनके अधीन रहेगी, यहाँ तक कि शासन ही उसे पसन्द होगा। यह बात आज उसकी समझमें आ गई कि कुमुदिनी क्या कर सकती है और क्या नहीं कर सकती, कुछ कहा नहीं जा सकता।

कुमुदिनीको अपने जीवनके साथ कठिन बन्धनमें लपेटनेका सिर्फ एक ही उपाय है—सन्तानकी मा बना देना, बस। उसी कल्पना में उसकी सान्त्वना है।

इसी तरह घड़ीमें पाँच बज गये; परन्तु जाड़ोंकी रात है, अन्धकार अभी तक दूर नहीं हुआ है। थोड़ी देर बाद ही उजेला हो जायगा, आजकी रात हो जायगी व्यर्थ। मधुसूदन झटपट घरसे निकलकर चल दिया,—बत्ती-घरके सामने पैरोंकी आहट जान-बूझकर ज़रा कुछ जोरसे की—दरवाज़ा भी कुछ धक्का देकर आवाज़के साथ खोला—देखा तो, कुमुद है ही नहीं! कहाँ है वह?

आँगनके नलसे पानी गिरनेका शब्द सुनाई पड़ा। बरामदेमें खड़े होकर देखा, दुनिया-भरकी पुरानी जंग लगी हुई बेकामकी दीवटें निकालकर उन्हें इमलीकी खटाईसे माँज रही है। यह सिर्फ जान-बूझकर कार्यका भार बढ़ानेकी कोशिश है—जाड़ेके दिनोंमें सवेरेके वक्त निद्रा-हीन दुःखको बढ़ाना-मात्र है।

मधुसूदन बड़े अचम्भेमें पड़कर ऊपरके बरामदेसे खड़ा-खड़ा देखता रहा। अबलाके बलको किस तरह परास्त किया जाय, यही उसकी चिन्ता है। सबेरे ही उठकर घरके लोग जब देखेंगे कि कुमुद दीवटें माँज रही है, तो मनमें क्या सोचेंगे। जिस नौकरपर माँजने-घिसनेका भार है, वह अपने मनमें क्या कहेगा? तमाम घरवालोंके सामने उसे हास्यास्पद बनानेका ऐसा सरल तरीक़ा तो और हो ही नहीं सकता।

पहले तो मधुसूदनके मनमें आई, उससे अभी समझ ले; परन्तु फिर सबेरके वक़्त बीच आँगनमें दोनोंमें कहा-सुनी हो और घर-भरके लोग बिस्तर छोड़-छोड़कर तमाशा देखने आवें, इस प्रहसनकी कल्पना करके वह पीछे हट गया। मझले भाई नवीनको बुलाकर कहा—"घरमें क्या-क्या वारदात होती है, कुछ खबर रखते हो?"

नवीन था घरका मनेजर। बेचारा डर गया, बोला—"क्यों, क्या हुआ भइया?"

नवीन जानता है, भइयाको जब गुस्सा होनेका कोई कारण मिल जाता है, तो उसे उतारनेके लिए एक आदमीकी ज़रूरत पड़ती है। दोषी अगर हाथसे निकल जाय, तो निर्दोष होनेसे भी काम चल जाता है—नहीं तो 'डिसिप्लिन' (नियंत्रण) नहीं रहती, नहीं तो गृहस्थीमें उसके राष्ट्रतन्त्रकी 'प्रेस्टिज' (गौरव) चली जाती है।

मधुसूदनने कहा—"बड़ी बहू जी पागलकी तरह अंट-संट काम कर रही हैं, तुम समझते हो कि उसका कारण हमें मालूम ही नहीं?"

बड़ी बहू क्या पागलपन कर रही हैं, पूछनेकी उसे हिम्मत न पड़ी, खासकार इसलिए कि न जानना ही कहीं उसके लिए एक अपराध न समझा जाय।

मधुसूदनने कहा—"मझली बहू उनका दिमाग़ खराब कर रही हैं, इसमें शक नहीं।"

बहुत संकोचके साथ नवीनने कहनेकी कोशिशकी—"नहीं तो—मझली बहू तो—"

मधुसूदन बोल उठा—"मैंने अपनी आँखोंसे देखा है।"

इसपर कोई बात नहीं चल सकती। 'अपनी आँखोंसे देखने' के अन्दर उस काग़ज़ दबानेके कांचका इतिहास मौजूद था।

[२८]

मोतीकी माने जब कुमुदिनीको अपने अकृत्रिम प्रेमके साथ अपनाना शुरू किया था, नवीन तभी समझ गया था कि इसका निभाना कठिन है; घरकी औरतें इसके विरुद्ध कान भरे बिना न रहेंगी। नवीनने सोचा—ऐसी ही कोई बात हुई होगी, परन्तु मधुसूदनके कोरमकोर अन्दाज़पर क़ायम अभियोगके प्रतिवादसे कोई लाभ नहीं, उससे ज़िद और बढ़ जायगी।

असलमें बात क्या हुई, मधुसूदनने साफ़-साफ़ नहीं बताई—शायद कहनेमें शरम मालूम पड़ती होगी; क्या करना होगा, सो भी अस्पष्ट रहा। उसमें स्पष्ट था तो केवल इतना ही कि सारी ज़िम्मेवारी मझली बहूपर ही है, इसलिए दाम्पत्यके आपेक्षिक सम्मानके अनुसार जवाबदेहीका सबसे भारी हिस्सा आ पड़ता है नवीनके भाग्यमें।

नवीनने जाकर मोतीकी मासे कहा—"एक फ़साद और उठ खड़ा हुआ?"

"क्यों, क्या हुआ?"

"सो तो अन्तर्यामी परमात्मा जानते होंगे, या भाई साहब, या शायद कुछ-कुछ तुम भी; पर डाँट शुरू हुई है मेरे ऊपर।"

"क्यों, सो कैसे ?"

"सो ऐसे कि मेरे द्वारा तुम्हारी ग़लती सुधर जाय, और तुम्हारे ज़रिये सुधरे उनके नये व्यवसायकी नई आमदनीकी।"

"अच्छा, तो मुझपर तुम अपना सुधार शुरू करो, देखूँ, बड़े भाईसे बढ़कर तुममें क्या करामात है।"

नवीनने दीन भावसे कहा—"भाई साहबके उड़िया नौकरने उनके क़ीमती डिनर-सेटका एक 'पिरिच' तोड़ दिया था, उसके जुरमानेका सबसे बड़ा हिस्सा मुझे ही देना पड़ा था, मालूम है न,—क्योंकि चीज़ें सब मेरे ही जिम्मे हैं, लेकिन अबकी जो चीज़ घरमें आई है, क्या वह भी मेरे ही जिम्मे है ?—तो भी जुरमाना हमें और तुम्हें मिलकर देना पड़ेगा, इसलिए जो करना हो, सो करो ; मुझे अब मत सताओ, मझली बहू।"

"जुरमानेसे मतलब ? ज़रा सुनूँ तो सही।"

"रजबपुरको चालान कर देंगे। बीच-बीचमें डर तो ऐसा ही दिखाया करते हैं।

"डरते हो, इसीसे डराया करते हैं। एक बार तो भेज दिया था, फिर रेल-किराया गाँठसे देकर बुलाना पड़ा था न ? तुम्हारे भाई साहब गुस्सेमें भी हिसाबमें नहीं चूकते। वे जानते हैं, मुझे घरके काम धन्धेसे बरख़ास्त करनेसे ज़रा भी किफ़ायत न होगी। और, अगर कहीं एक पैसेका भी नुकसान हो गया, तो उन्हें वह सह्य न होगा।"

"समझ गया, पर अभी क्या करना चाहिए, सो तो बताओ।"

"अपने भाई साहबसे कहना कि वे राजा चाहे कितने ही बड़े हों, पर तनख़्वाह देकर आदमी रखके रानीका मान भंजन नहीं कर सकते—मानका बोझा खुद ही को सिरपर लादकर

उतारना पड़ेगा। सुहाग-कुटीरके मामलेमें भाड़ेके मजदूर बुलानेकी मनाई कर देना।"

"मझली बहू, उनको उपदेश देनेके लिए मेरी जरूरत न पड़ेगी, कुछ दिन बाद खुद ही होश आ जायगा। तब तक दूतीका काम करती हो, फल हो चाहे न हो। दिखा तो सकेंगे कि नमक खाकर उसे चुपचाप हजम नहीं करते।"

मोतीकी मा गई कुमुदको ढूँढ़ने। जानती थी, सवेरेके वक्त वह छतपर मिलेगी। छतके चारों तरफ ऊँची दीवाल है, उसमें गोल-गोल छोटे-छोटे झरोखे-से बने हुए हैं। कुछ गमले इधर-उधर पड़े हुए हैं, पर उनमें पौधे नहीं हैं। एक कोनेमें लोहेकी जालीका एक बड़ा-भारी चौखूँटा टूटा हुआ पिंजड़ा पड़ा है, उसका लकड़ीका पेंदा बिलकुल सड़-सा गया है। किसी जमानेमें उसमें ख़रगोश या कबूतर रखे जाते थे,—अब वह अचार, अमावट आदिको कौओंकी चौर्यवृत्तिसे बचाकर घाममें सुखानेके काम आता है। इस छतसे सिर्फ सिरके ऊपरका आकाश ही दिखाई देता है, चारों तरफ़की दिशाएँ नहीं दीख पड़तीं। पश्चिम आकाश में किसी कारखानेकी एक लोहेकी चिमनी है। दो दिन कुमुद छतपर जाकर बैठी है, उस चिमनीसे निकलता हुआ काला धुआँ ही उसके देखनेकी एकमात्र वस्तु थी,—सारे आकाशमें सिर्फ वही एक मानो सजीव पदार्थ है, मानो वह किसी एक आवेगसे फूल-फूलकर चक्कर लगा रहा है।

दीवट वगैरह माँज-मूँजकर अँधेरा रहते ही कुमुद नहा-धो ली और छतपर जाकर पूरबकी तरफ मुँह करके बैठ गई। भीगे बाल पीठपर फैला दिये,—शृङ्गारका तो आभास तक न था। एक मोटे सूतकी सफेद साड़ी पहने थी—काली पतली किनारीकी, और जाड़ेके बचावके लिए एक मोटी अंडी (रेशमकी चादर) ओढ़े थी।

कुछ दिनसे यह युवती प्रत्याशित प्रियतमके काल्पनिक आदर्शको अन्तःकरणके बीचमें रखकर अपने हृदयकी क्षुधा मिटाने बैठी थी। उसकी जितनी भी पूजा थी, जितने भी व्रत थे, जितनी भी पुराण-कहानी थी—सबने इस काल्पनिक मूर्तिको सजीव बना रखा था। वह थी अभिसारिणी अपने मानस वृन्दावनमें,—तड़केही उठकर उसने गाना गाया है रामकेली रागिणीमें,—

"हमारे तुम्हारे सँग प्रीति लगी है
सुन मनमोहन प्यारे——"

जिस अनागत पुरुषके लिए वह अपने आत्म-निवेदनका अर्घ्य देना चाहती है, उसके सामने आनेसे पहले ही मानो वह उसके पास प्रतिदिन अपना प्याला भेजती रही हो। वर्षाकी रातमें पीछेके बग़ीचेके वृक्षोंने अविश्राम धारा-पतनके आघातसे जब अपने पल्लवों-द्वारा शोर मचाना शुरू किया, तब उसे अपना कनाड़ास्वरका गीत याद आया :—

"बाजै झननन मेरी पायरिया
कैस कर जाऊँ घरवा रे।"

उसका उदास मन हर क़दमपर नूपुर बजाता चलता है झननन—उद्देशहीन मार्गपर निकल पड़ा है, कभी लौटेगा भी घरको, तो कैसे ? जिसे रूपमें देखना चाहती थी, उसे इसी तरह कितने ही दिनोंसे वह गानेके स्वरमें देख रही थी। निगूढ़ आनन्द-वेदनाकी परिपूर्णताके दिन यदि वह अपने मनका-सा किसीको अकस्मात् अपने पास पाती, तो हृदयके सारे गूँजते हुए गानोंको उसी समय रूपमें प्राण मिल जाते। कोई पथिक उसके द्वारपर आकर खड़ा नहीं हुआ। कल्पनाके निभृत निकुंजमें वह बिलकुल ही अकेली थी। यहाँ तक कि उसकी बराबरीकी सहचरियोंमेंसे भी कोई न थी। इसीसे इतने दिनों तक उसके रुके हुए प्रेमने

श्यामसुन्दरके पैरोंके पास पूजाके फूलके आकारमें अपने लापता प्रेमिकका पता ढूँढ़ा है! इसीलिए, घटक जब विवाहकी बात करने आया था, तब कुमुदने अपने देवतासे ही आज्ञा माँगी थी,—पूछा था—"अब तो तुम्हें ही पाऊँगी ?" अपराजिताके फूलने कहा—"ये लो, पा तो गई।"

हृदयकी इतने दिनोंकी इतनी तैयारियाँ व्यर्थ हुईं—एकाएक ठनक उठा पत्थर, भरी नाव डूब गई एक ही क्षणमें। व्यथित यौवन आज फिर ढूँढ़ने चला है—कहाँ चढ़ा वे अपना फूल! थालीमें जो उसका अर्घ्य था, वह आज भारी बोझ-सा मालूम होने लगा! इसीसे आज वह इस तरह जी-जानसे गा रहा है—"मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरा न कोई।"

पर आज यह गान शून्यमें घूम रहा है, कहीं भी पहुँचा नहीं। इस शून्यतामें कुमुदका मन भयसे भर गया। आजसे लेकर जीवनके अन्तिम दिन तक मनकी गहरी आकांक्षा क्या उस धुएँकी कुंडलीकी तरह ही अकेले निःश्वासके रूपमें निकलती रहेगी?

मोतीकी मा कुछ दूरीपर उसके पीछे बैठी रही। सवेरेके निर्मल प्रकाशमें सूनी छतपर इस असज्जिता सुन्दरीकी महिमाने उसे विस्मित कर दिया है। वह सोचने लगी—इस घरमें यह कैसे शोभा पायेगी? यहाँ जो स्त्रियाँ हैं, इसकी तुलनामें वे किस जातिकी हैं? वे अपने-आप ही इससे अलग जा पड़ी हैं। इसपर गुस्सा तो करती हैं, पर उससे मेल करनेकी हिम्मत नहीं पड़ती।

बैठे-बैठे सहसा मोतीकी माने देखा कि कुमुद दोनों हाथोंसे अपनी चादरका अंचल मुँहपर दबाकर रो रही है। उससे अब रहा न गया, पास जाकर गलेमें बाँह डालकर बोली—"मेरी जीजी कैसी हो, मेरी लक्ष्मी-बहन, क्या हुआ—जरा बताओ तो मुझे।"

कुमुदिनीसे कुछ देर तो बोला न गया। अपनेको ज़रा सम्हालकर बोली—"आज भी भइयाकी चिट्ठी नहीं मिली; उनको क्या हो गया, कुछ समझमें नहीं आता।"

"चिट्ठी पानेका समय क्या हो गया, बहन?"

"ज़रूर हो गया। मैं उनकी बीमारी देख आई हूँ। वे जानते हैं कि समाचार पानेके लिए मेरा मन कैसा तड़फ रहा होगा।"

मोतीकी माने कहा—"तुम सोच मत करो, समाचार जाननेके लिए मैं कोई उपाय करती हूँ।"

कुमुदने तार देनेकी बात कई बार सोची है, पर किसके हाथ भेजे। जिस दिन मधुसूदनने अपनेको उसके भइयाका महाजन कहकर अपनी बड़ाईकी थी, उस दिनसे मधुसूदनके सामने अपने भइयाका ज़िक्र करनेमें कुमुदकी ज़बान रुक जाती है। आज मोतीकी मासे उसने कहा—"तुम अगर भइयाको मेरे नामसे तार भिजवा सको, तो मैं जी जाऊँ।"

मोतीकी माने कहा—"अच्छा, भिजवा दूँगी, इसमें डर किस बातका?"

कुमुदने कहा—"तुम्हें तो मालूम ही है, मेरे पास एक भी रुपया नहीं है।"

"जीजी, तुम तो ऐसी बातें करती हो, जिसका ठीक नहीं। घरू खर्चके लिए जो रुपये मेरे पास रहते हैं, वे तो तुम्हारे ही हैं। आजसे मैं तुम्हारा ही नमक खा रही हूँ।"

कुमुद ज़ोरके साथ बोल उठी—"न न न, इस घरमें कुछ भी मेरा नहीं है, एक छदाम भी नहीं।"

"अच्छा तो रहने दो, बहन, तुम्हारे लिए मैं अपने रुपयों-मेंसे ही कुछ ख़र्च करूँगी।—चुप क्यों हो रहीं? इसमें बुराई क्या? रुपया अगर मैं घमंडसे देती, तो तुम्हारा अभिमानसे न

लेना ठीक भी था। प्यारसे अगर दूँ, तो प्यारसे तुम लोगी क्यों नहीं ?"

कुमुदने कहा—"लूँगी।"

मोतीकी माने पूछा—"जीजी, तुम्हारा सोनेका कमरा क्या आज भी सूना रहेगा ?"

कुमुदने कहा—"वहाँ मेरे लिए जगह नहीं।"

मोतीकी माने दबाव नहीं डाला। उसके मनका भाव यह था कि दबाव डालना उसका काम नहीं; जिसका काम है, वह करेगा। सिर्फ धीरेसे कहा—"थोड़ासा दूध ला दूँ तुम्हारे लिए ?"

कुमुदने कहा—"अभी नहीं, और थोड़ी देर बाद।"—अपने देवताके साथ उसका फैसला होना अभी बाकी है। अभी तक अपने मनके अन्दर वह कोई जवाब नहीं पा रही है।

मोतीकी माने अपने कमरेमें जाकर नवीनको बुलाकर कहा—"सुनो, एक बात सुनो। जेठजीके बाहरवाले कमरेमें उनके डेस्क पर ज़रा देख तो आओ, जीजीकी कोई चिट्ठी आई है या नहीं,—दराज़ खोलकर भी देखना।"

नवीनने कहा—"मार डाला !"

"तुम अगर न जाओ, तो मैं जाऊँगी।"

"यह तो झाड़ीके अन्दरसे भालूका बच्चा पकड़वाना है, देवीजी !"

"भाई साहब आफिस गये हैं, उनको लौटते-लौटते एक बजेगा, इसी बीचमें—"

"देखो, बात यह है कि दिनमें तो यह काम मुझसे कैसे भी न होगा, अभी चारों तरफ आदमियोंका आना-जाना है। आज रातको मैं तुम्हें खबर दे सकता हूँ।"

मोतीकी माने कहा—"अच्छा, ऐसा ही सही ; पर नूरनगरको अभी तार देकर पूछना होगा कि विप्रदास बाबूकी कैसी तबियत है।"

"अच्छी बात है, तो भइयाको जताकर करना होगा न ?"

"नहीं।"

"मझली बहू, तुम तो मालूम होता है, जानपर खेलकर डटना चाहती हो ? इस घरमें तो छिपकली मक्खीको भी नहीं पकड़ सकती बिना मालिकके हुक्मके, और मैं—"

"जीजीके नामसे तार जायगा, इसमें तुम्हारा क्या ?"

"जायगा तो मेरे ही मारफ़त ?"

"जेठजीके आफिसके ढेरों तार तो रोज़ जाया करते हैं दरवानके हाथ, उनमें एक यह भी रख देना। यह लो रुपया, जीजीने दिया है।"

कुमुदिनीके विषयमें नवीनका भी मन अगर करुणासे व्यथित न हुआ होता, तो इतने बड़े खतरनाक कामका भार वह अपने ऊपर कदापि नहीं ले सकता था !

[२६]

अपने नियमके अनुसार दोपहरके एक बजे मधुसूदन अन्तः-पुरमें खाने आया। नियमानुसार घरकी स्त्रियाँ उसे घेर बैठीं, कोई पंखासे मक्खी बिड़ारने लगी, तो कोई भोजन परोसने। पहले ही कह चुके हैं कि मधुसूदनके अन्तःपुरकी व्यवस्थामें ऐश्वर्यका आडम्बर नहीं था। उसके खाने-पीनेका आयोजन पुराने अभ्यासके अनुसार ही है ; मोटे चावलोंका भात न हो, तो उसे रुचता नहीं, न पेट ही भरता है। परन्तु बरतन सब क़ीमती हैं। चाँदीकी थाली, चाँदीका कटोरा और चाँदीका ही

गिलास। साधारणतः चनेकी दाल, मछलीका झोर, इमलीकी चटनी, भंजिया, यही उसका खाना है। खानेके बाद ऊपरसे एक बड़ा कटोरा-भर मीठा दूध—उसकी अन्तिम बूँद तक—चढ़ा जाना, और फिर पानके डंठलपर ज़रासा चूना लेकर एक पान मुँहमें और दो पान डिब्बेमें भरकर पन्द्रह मिनट हुक्का पीते हुए आराम करना ; बस, फिर उसी वक्त चट उठकर आफिस चल देना। अपेक्षाकृत गरीबी हालतसे लेकर आज तक—इतने लम्बे समयमें—इसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। भोजनमें मधुसूदनके भूख है, लाभ नहीं।

श्यामासुन्दरी दूधके कटोरेमें मीठा घोल रही थी। उसका अनुज्ज्वल श्यामवर्ण, मोटा नहीं किन्तु परिपुष्ट शरीर अपनेको मानो ज़रा अच्छी तरहसे घोषित कर रहा है। सिवा एक सफेद साड़ीके और कुछ पहने न थी, परन्तु देखनेसे मालूम होता है कि हर वक्त सफाईसे रहती है। उमर क़रीब-क़रीब यौवनके किनारे पहुँच चुकी है, किन्तु मानो जेठके अपराह्नकी तरह दिन छिपना चाहता है, पर गोधूलिकी छाया अभी नहीं पड़ी है। घनी भौंहोंके नीचे तीक्ष्ण काली आँखें हैं, मानो वे सामनेसे किसीको देखती ही नहीं, थोड़ासा देखकर सब-का-सब देख लेती हैं। उसके रसीले ओठोंमें एक प्रकारका भाव है, मानो बहुतसी बातें उन्होंने दबा रखी हैं। गिरस्तीने उन्हें अधिक-कुछ रस नहीं दिया है, फिर भी वे भरे हुए हैं। अपनेको वे तो कीमती ही समझते हैं, कंजूस भी नहीं हैं ; किन्तु उनकी बहुमूल्यता काममें न आई, इस कारण अपने आसपास पर उन्हें एक अहंकृत अश्रद्धा-सी हो गई है। मधुसूदनके ऐश्वर्यकी उभारके समय ही श्यामाने इस घरमें प्रवेश किया है। यौवनके जादू-मंत्रसे इस गिरस्तीकी शिखरपर वह अपने लिए जगह कर लेगी, ऐसा उसका सकल्प भी था। मधुसूदनका मन किसी दिन डिगा ही न हो, यह भी नहीं कहा जा

सकता। परन्तु मधुसूदनने किसी भी तरह हार नहीं मानी; उसका कारण यह है कि मधुसूदनको जमींदारी-दुनियावी केवल 'बुद्धि' ही नहीं बल्कि उसे तो 'प्रतिभा' कहना चाहिए। इस प्रतिभाके जोरसे ही उसने अपनी सम्पत्ति बनाई है, और उसीके परम आनन्दमें वह गहराई तक डूबा हुआ है। इस प्रतिभाके जोरसे ही वह निश्चित जानता था कि धन-सृष्टिकी जिस तपस्यामें वह नियुक्त है, इन्द्रदेवने उसे भंग करनेके लिए प्रबल विघ्न भेजे हैं—क्षण-क्षणमें तपोभंगके धक्के लगे हैं, बार-बार वह उसने अपनेको सम्हाला है। सुविधा सिर्फ इतनी ही थी कि व्यापारका तब मध्यान्हकाल था, फ़ुरसत मरने तककी न थी। ऐसे कठिन परिश्रमके बीचमें—आँखोंसे देखने और कानोंसे सुननेमें—श्यामाका जो कुछ भी थोड़ा-बहुत संग एकान्तमें मिलता, उससे मानो मधुसूदनकी क्लान्ति दूर हो जाती थी। उत्सवोंमें लेन-देनके विषय में श्यामासुन्दरीकी तरफ उसके पक्षपातका भार शायद कुछ ज्यादा झुका-हुआ-सा जान पड़ता है; किन्तु किसी दिन श्यामाको उसने ऐसा ज़रा भी प्रश्रय नहीं दिया, जिससे अन्तःपुरमें उसकी स्पर्धा बढ़ जाय। श्यामाने मधुसूदनके मनके झुकावको ठीक पकड़ लिया है, लेकिन फिर भी उसकी तरफसे उसका भय नहीं मिटा।

मधुसूदनके जीमनेके समय श्यामासुन्दरी रोज़ ही उपस्थित रहती है, आज भी थी। हाल ही नहाकर आई है—उसके स्याह काले घने लम्बे बाल पीठपर बिखरे हुए हैं—उसपर से सफेद साड़ी सिरके ऊपर तक खिची हुई है—भीगे हुए बालोंमें से मसा-लेदार तेलकी मृदु मन्द सुगन्ध आ रही है।

श्यामाने दूधके कटोरेपर से बिना दृष्टि हटाये ही धीमे स्वर में कहा—"देवरजी, बहूको बुला दूँ?"

मधुसूदनने मुँहसे कुछ नहीं कहा, और अपनी भौजाईके मुँहकी तरफ गम्भीर दृष्टिसे देखने लगा। उसकी भौजाई श्यामा-

सुन्दरी डरके मारे सकपका-सी गई, प्रश्नकी व्याख्या करके बोली—"जीमते वक्त तुम्हारे पास आकर बैठे तो अच्छा है, थोड़ी-बहुत सेवा-टहल—"

मधुसूदनके चेहरेके भावका कोई अर्थ न समझ सकनेके कारण श्यामासुन्दरी पूरी बात बिना कहे ही चुप रह गई। मधुसूदन फिर सिर नीचा करके जीमने लगा।

कुछ देर पीछे थाली परसे बिना मुँह उठाये ही पूछा—"बड़ी बहू अभी है कहाँ?"

श्यामासुन्दरी व्यस्त होकर बोल उठी—"मैं अभी देखकर आती हूँ।"

मधुसूदनने भौंहें सिकोड़कर उँगली हिलाते हुए मना किया। प्रश्नका उत्तर पानेके लिए मन उत्सुक है, परन्तु इसके मुँहसे सुनना असह्य है—साथ ही मनमें कौतूहल भी काफ़ी है। जीमकर जब वह तिमंजलेपर अपने सोनेके कमरेमें गया, तब उसके मनमें एक कोनेमें क्षीण आशा थी। एक बार छतपर घूम आया। बगलके गुसलखानेमें घुसकर कुछ देरके लिए सन्नाटेमें आकर खड़ा रहा। उसके बाद बिस्तरपर लेटकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। निर्दिष्ट पन्द्रह मिनट बीत गये—बीस मिनट पार होकर जब आध घंटा पूरा होने आया, तो ऊपरकी जेबमेंसे घड़ी निकालकर एक बार समय देखा। वर्षपर वर्ष बीत गये हैं, परन्तु आफिस जानेसे पहले कभी पाँच मिनटकी भी देरी नहीं हुई थी। आफिसमें एक रजिस्टर है, जिसमें कौन किस वक्त आया और गया, सबका हिसाब लिखा रहता है। उस हिसाबके साथ-साथ वेतनकी मात्रा-रेखा चढ़ती-उतरती रहती है। आफिसके समस्त कर्मचारियोंमें मधुसूदनके जुरमानेकी रक़म सबसे कम होती है। साथ ही इस विषयमें अपने प्रति उसका कोई पक्षपात नहीं। वास्तवमें अपनेसे

वह कर्मचारियोंकी अपेक्षा डबल जुरमाना वसूल करता है। मन-ही-मन आज उसने प्रतिज्ञा कर ली कि शामकी आफिसका समय खतम होनेके बाद अतिरिक्त समयमें काम करके क्षति-पूर्ति कर देगा; परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा, त्यों-त्यों कामसे उसकी तबीयत उचटने लगी। बल्कि आज आध घटे पहले ही काम छोड़कर घर लौट आया। बार-बार उसका मन चाहता कि एक बार सोनेके कमरेमें बेवक्त ही हो आऊँ, शायद किसीसे मुलाक़ात हो जाय। दिनमें वह कभी उस कमरेमें नहीं जाता। आज आफिसकी पोशाक पहने ही उसने अन्त:पुरमें प्रवेश किया।

मोतीकी मा उस समय छतपर थी—सूखती हुई आमकी खटाई बीन-बीनकर टोकरीमें रख रही थी। मधुसूदनको असमयमें सोनेके कमरेमें घुसते देख उसने घूँघट खींच लिया और उसके भीतर खूब हँसने लगी। मझली बहूके सामने उसको यह अनियमित कार्रवाई पकड़ी जानेके कारण उसे बड़ी लज्जा और साथ ही गुस्सा आया। मनमें तरकीब सोची थी, बहुत ही साव-धानीसे घरमें घुसूँगा,—हाँ, कहीं भीरु हरिणीकी तरह चौंककर वह भाग न जाय; सो नहीं हुआ। कौतुक-दृष्टिकी चोटसे बचनेके लिए वह खुद ही जल्दीसे घरमें घुस गया। देखा कि उसका आफिससे भाग आना बिलकुल व्यर्थ हुआ। कमरेमें कोई न था, और न उसके पीछे किसीके वहाँ आनेके कोई लक्षण ही दिखाई दिये। क्षण-भरमें उसका अधैर्य मानो असह्य हो उठा। यद्यपि वह जेठ लगता है, और किसी दिन उसने मझली बहूके साथ एक बात भी नहीं की,—तो भी उसे बुलाकर कुमुदके बारेमें कुछ कहनेके लिए उसका मन छटपटाने लगा। एक बार निकल भी आया, किन्तु मोतीकी मा तब तक नीचे चली गई थी।

नई बहूके द्वारा छोड़े हुए सोनेके कमरेमें अकारण और असमयमें अकेले आनेके असम्मानसे रक्षा पानेके लिए वह बाहरके

कमरेकी ओर तेज़ीसे दनदनाता हुआ चला गया। एक बड़े ज़रूरी कामका बहाना बनाकर, वह डेस्कपर झुककर बैठ गया। सामने था एक छोटासा रजिस्टर। साधारणत: उसे वह कभी देखता भी नहीं, देखता है आफिसका हेड-बाबू। आज लोगोंको आँखोंको धोखा देनेके लिए उसे वह खोल बैठा। इस रजिस्टरमें उसके घरकी चिट्ठी-पत्री और तारोंके रवाना होनेकी तारीख वग़ैरह दर्ज रहती है। रजिस्टर खोलते ही आजकी तारीखके तारोंकी लिस्टमें विप्रदासके नामपर उसकी नज़र पड़ी। भेजनेवाली हैं स्वयं मालिकिन साहिबा—कुमुदिनी।

"बुलाओ दरवानको।"

दरवान हाज़िर हुआ।

"यह तार किसने दिया था—भेजने ?"

"मझले बाबूने।"

"बुलाओ मझले बाबूको।"

मझले बाबू अपना पीला-सा मुँह लिये हाज़िर हुए।

"बिना मेरी इज़ाजतके तार भेजनेके लिए किसने कहा ?"

जिसने कहा था, शासनकर्त्ताके सामने उसका नाम ज़बानपर लाना मामूली बात न थी। क्या कहे, कुछ समझमें न आनेके कारण नवीन व्याकुल हो उठा—ऐसे जाड़ेके दिनोंमें उसके माथेसे पसीना छूटने लगा।

नवीनको चुप देखकर मधुसूदनने खुद ही पूछा—"शायद मझली बहूने क्यों ?"

मुँह नीचा किये चुपचाप खड़े रहनेसे ही उत्तर स्पष्ट हो गया। चटसे माथेका खून खौल उठा, मुँह पड़ गया लाल सुर्ख—इतना क्रोध आया कि मुँहसे बात भी न निकली। ज़ोरसे हाथ

हिलाकर नवीनको घरसे बाहर निकल जानेका इशारा करके कमरेमें इधरसे उधर जल्दी-जल्दी टहलने लगा।

[३०]

नवीनने भीतर मोतीकी माके पास जाकर सूखे मुँहसे कहा—"सुनती हो, बस, अब बाँधो बोरिया-बँधना।"

"क्यों, क्या हुआ?"

"बस, अब चलनेकी तैयारी करो।"

"तुम्हारी अक्लपर भरोसा करके अगर बाँधू, तो कल ही फिर खोलना पड़ेगा। क्यों, तुम्हारे भाई-साहबका मिजाज़ ठीक नहीं है क्या?"

"मैं तो उन्हें जानता हूँ। अबकी मालूम होता है, हम लोगों-पर चोट है।"

"तो चले चलना। इतना सोच किस बातका? वहाँ जानेसे कुछ पानीमें थोड़े ही डूब जाओगे।"

"मुझे क्यों कहती हो चलनेके लिए? अबकी हुक्म होगा—मझली बहूको देश भेज दो।"

"उस हुक्मको तुम नहीं मान सकते, मैं जानती हूँ।"

"तुमने कैसे जाना?"

"मैं ही अकेले क्यों, सब घर तुम्हें स्त्रैण समझता है। मर्द किस तरह स्त्रैण हो सकते हैं, अब तक तुम्हारे भाई-साहबके दिमाग़में यह बात न आई थी। अब उनकी खुदके समझनेकी पारी आई है।"

"सचमुच?"

"मैं तो देखती हूँ, तुम्हारे वंश-भरमें यह रोग मौजूद है। अब तक बड़े भाई पकड़ाई नहीं दिये थे। बहुत दिनोंसे इकट्ठा

हो रहा है, इसलिए उसमें तीखापन बहुत ज्यादा होगा, देख लेना, मैं कहे देती हूँ। जिस ज़ोरके साथ वे दुनियाको भूलकर रुपयोंकी थैलीको जकड़े हुए थे, उनका वह सारा जोर अब बहूपर ही पड़ेगा।"

"अच्छा है, पड़ने दो। बड़े स्त्रैण अपना रंग जमावें, मगर छोटे स्त्रैणके प्राण कैसे बचें ?"

"इसका भार मेरे ऊपर रहा। अब जो मैं तुमसे कहूँ, सो करो। तुम्हें उनकी दराज़ खोलकर देखनी होगी।"

नवीनने हाथ जोड़कर कहा—"दुहाई है तुम्हारी, मझली बहू, साँपके बिलमें कहतीं तो मैं हाथ डाल देता, पर उनकी दराज़में नहीं।"

"साँपके बिलमें हाथ देना होता तो मैं खुद देती, लेकिन दराज तुम्हें ही देखनी होगी। तुम्हें तो मालूम ही है, इस घरकी तमाम चिट्ठियाँ पहले वे ही देखते हैं—बिना उनके हुक्मके किसीको नहीं दी जातीं। मेरा मन कह रहा है कि चिट्ठी आ गई है, लेकिन उन्होंने दबा रखी है।"

"मेरा मन भी यही कहता है, लेकिन साथ ही यह भी कह रहा है कि अगर तुमने उस चिट्ठीमें हाथ लगाया, तो फिर भाई साहबको कोई दंड ही ढूँढ़े न मिलेगा। शायद सात वर्षके लिए कड़ी फाँसीका हुक्म हो जायगा।"

"तुम्हें कुछ न करना होगा, चिट्ठीमें हाथ लगानेकी ज़रूरत नहीं, सिर्फ़ एक दफे देख आओ कि जीजीके नामकी चिट्ठी है या नहीं।"

मझली बहूपर नवीनकी अगाध भक्ति है; यहाँ तक कि अपनेको वह अपनी स्त्रीके अयोग्य ही समझता है। इसलिए

उसपर अगर कोई असाध्य काम आ पड़ता, तो उसे डर चाहे कितना भी हो, खुशी भी काफ़ी होती है।

उसी रातको नवीनके ज़रिये मझली बहूको खबर मिली कि कुमुदके नामकी एक चिट्ठी और तार दराज़में है।

जिस उत्तेजनाका पहला धक्का खाकर कुमुद अपना सोनेका कमरा छोड़कर दासी-वृत्तिमें प्रवृत्त हुई थी, उसका वेग अब रुक गया है। अपमानकी विरक्ति दूर हो गई है और अब विषादकी म्लानतासे उसका मन छायाच्छन्न हो गया है। समझ गया है कि हमेशाकी अवस्था यह नहीं है। फिर भी उस तरहकी कोई व्यवस्था हुए बिना कुमुद जीयेगी कैसे? संसारमें मौतके दिन तक रात-दिन ज़ोर करके इस तरह असंलग्न भावसे रहना तो सम्भव नहीं।

कुमुदिनी बत्ती-घरके किवाड़ बन्द करके यही बात सोच रही थी। यह कोठरी बारामदेके एक कोनेमें है, और काठके बेड़ेसे घिरी हुई है। प्रवेशके दरवाज़ेको छोड़कर कोठरीका बाक़ी हिस्सा चारों तरफ़से बन्द है। दीवारपर भी काठके तख्ते लगे हुए हैं। उनपर बत्ती जलानेके विचित्र सामान रखे हुए हैं। तेल और मैलसे सारी कोठरी चिपचिपा रही है। जिधर दरवाजा है, उधरकी दीवारपर किसी नौकरने मोमबत्तीके बंडलके ऊपरसे तसवीरें काट-काटकर चुपका दी थीं; अवश्य ही यह काम उसने अपने सौन्दर्य-बोधकी तृप्तिके लिये ही किया था। एक कोनेमें टीनके बकसमें खड़ियामिट्टी रखी हुई है; उसके बग़लमें एक टोकनीमें सूखी इमली और कुछ मैली झाड़नें पड़ी हैं। दीवारसे सटे हुए बहुतसे मिट्टीके तेलके कनस्तर रखे हुए हैं, जिनमें अधिकांश खाली हैं, दो या तीन कनस्तर भरे हैं।

आज सवेरेसे ही कुमुद अनिपुण हाथोंसे अपने काममें लगी हुई थी। कोठारका काम ख़त्म करके मोतीकी माने उझककर

एक बार कुमुदकी कर्म-तपस्यामें आये हुए दुःसाध्य संकटको खड़े-खड़े देखा। समझ गई कि दो-एक क्षणभंगुर चीज़ोंका अपघात शीघ्र ही होनेवाला है। इस घरमें चीज़-बस्तकी मामूलीसी खोट भी निगाह और हिसाबसे अछूती नहीं रह सकती।

मोतीकी मासे अब रहा नहीं गया, बोली—"काम-काज कुछ था नहीं हाथमें, इसीसे चली आई हूँ। सोचा, चलो जीजीके काममें ही कुछ मदद करना, पुण्य तो भी होगा।" कहकर उसने काँचके ग्लोब और चिमनियोंकी टोकनी अपनी तरफ खींच ली और लगी उन्हें पोंछने।

कुमुदमें अब एतराज़ करनेका तेज़ नहीं रहा, क्योंकि इस बीचमें अपनी दुर्बलताके विषयमें उसका आत्म-आविष्कार लगभग सम्पूर्ण हो चुका है। मोतीकी माकी सहायता पाकर वह जी गई, लेकिन मोतीकी माके अशिक्षित-पटुत्वकी भी सीमा है। मिट्टीके तेलके लैम्पोंमें ठीक हिसाबसे बत्ती डालना उसके लिये असाध्य है। काम यह होता उसीकी देखरेखमें है, नियमानुसार तेल वगैरह देनेका माप भी उसीके हाथमें है, परन्तु अपने हाथसे बत्ती काटनेका काम उसने आज तक कभी नहीं किया। इसीसे अब उसने बूढ़े बंकू फराशको सहयोगिताके लिये बुलानेकी बात छेड़ी।

हार माननी पड़ी। बंकू फराश आया, और उसने चटपट जल्दी-जल्दी हाथ चलाकर थोड़ी ही देरमें सब काम पूरा कर दिया। शाम होनेसे पहले ही सब बत्तियाँ घर-घरमें पहुँचा दी जाती हैं। उस कामके लिए पूर्व नियमानुसार उसे यथासमय आना पड़ेगा या नहीं, बंकूने पूछा। बंकू आदमी तो सरल प्रकृतिका है, परन्तु फिर भी उसके प्रश्नमें शायद कुछ श्लेष (द्विअर्थक भाव) था। कुमुदिनीके कानकी लोलकियाँ लाल हो उठीं।

उसके जवाब देनेसे पहले ही मोतीकी माने कहा—"आ गया नहीं तो क्या ?" कुमुदिनीके समझनेमें ज़रा भी कसर न रही कि काम करनेके बजाय वह सिर्फ काममें विघ्न डाल रही है।

[३१]

दोपहरको भोजनके बाद किवाड़ देकर कुमुदिनी बैठी-बैठी प्रतिज्ञा-सी करने लगी—मनके अन्दर क्रोधकी अग्नि अब वह किसी भी तरह न जलने देगी। कुमुद अपने मनमें कहने लगी—बस, आजका दिन लगेगा मनको स्थिर करनेमें ; भगवान का आशीर्वाद लेकर कल सवेरेसे अपने गार्हस्थ्य-धर्मके सत्य मार्गमें लग जाऊंगी। दोपहरको खानेके बाद काठकी कोठरीके किवाड़ बन्द करके वह अपने साथ समझौता करने बैठ गई। इस काममें उसकी सबसे अधिक सहाय थी उसके भइयाकी स्मृति। उसने तो देखी है अपने भइयाके धैर्यकी आश्चर्यजनक गम्भीरता ; उनके मुँहका वह विषाद, जो उनके अन्तरके महत्त्व-की छाया थी,—भइया भी कैसे, उस ज़मानेके शिक्षित समाजमें प्रचलित पोज़िटिविज़्म ही जिनका धर्म था, देवताको बाहरसे नमस्कार करनेकी जिनकी आदत ही न थी, फिर भी देवता आप ही जिनके जीवनको पूर्ण करके आविर्भूत होते थे।

तीसरे पहर बंकू फराशने आकर जब दरवाज़ा खटखटाया, तब घर खोलकर कुमुदिनी बाहर चली गई। मोतीकी मासे जाकर बोली—"आज रातको मैं खाऊँगी नहीं।" मनको शुद्ध करनेके लिए ही उसने यह उपवास किया है। मोतीकी माको कुमुदका मुँह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उस मुँहपर आज हृदय-ज्वालाकी रक्तच्छटा न थी। ललाट और नेत्रोंमें थी प्रशान्त स्निग्ध दीप्ति। अभी हाल ही मानो वह पूजा समाप्त करके,

तीर्थ-स्नान करके आई है। अन्तर्यामी देवताने मानो उसका सारा अभिमान हर लिया है ; हृदयके अन्दर मानो वह निर्माल्य फल रख लाई है, और उसीकी सुगन्धने उसे घेर रखा है। इसीसे कुमुदने जब उपवास करना चाहा, मोतीकी मा तभी समझ गई कि यह अभिमानका आत्म-पीड़न नहीं है, इसीलिए उसने कुछ आपत्ति भी नहीं की।

अपने देवताकी मूर्तिको हृदयमें विराजमान करके वह छतपर जाकर एक कोनेमें बैठ गई। आज वह स्पष्ट समझ सकी है कि दुःख अगर उसे इस तरह धक्का न देता, तो वह अपने देवताके इतने पास हरगिज़ न आ सकती थी। अस्त होनेवाले सूर्यकी आभाकी ओर हाथ जोड़कर कुमुदने कहा—"प्रभो, अब कभी तुमसे मेरा विच्छेद न हो. तुम मुझे रुला-रुलाकर अपनी बना लो।"

जाड़ेका दिन देखते-देखते म्लान हो गया। धूल, कुहरा और मिलोंके धुएँके एक मिश्रित आवरणने सन्ध्याकी स्वच्छ तिमिर-गम्भीर महिमाको आच्छन्न कर रखा है। जैसे वह आकाश एक परिव्याप्त मलिनताका बोझ लेकर ज़मीनकी ओर उतर पड़ा है, उसी तरह भइयाके लिए एक दुश्चिन्ताके दुःसह भारने कुमुदिनीके मनको नीचेकी तरफ खींच रखा है।"

इस तरह, एक ओर अभिमानके बन्धनसे छुटकारा पानेसे मुक्तिके आनन्दका और दूसरी ओर भइयाके लिए चिंतासे पीड़ित हृदयका भार लिये कुमुदिनीने फिर उसी अँधेरी कोठरीमें प्रवेश किया। उसकी बड़ी इच्छा है कि इस निरुपाय चिन्ताके बोझको भी वह अपने अटल विश्वाससे बिलकुल भगवानपर ही छोड़ दे, परन्तु अपनेको बार-बार धिक्कारकर भी किसी भी तरह उसे यह अवलम्बन नहीं मिल रहा है। तार तो पहुँच गया होगा,

उसका जवाब क्यों नहीं आ रहा—यह प्रश्न हरदम उसके मनमें लगा ही हुआ है।

नारी-हृदयके आत्म-समर्पणकी सूक्ष्म बाधापर मधुसूदनसे कहीं हाथ लगाते नहीं बनता। जिस विवाहित स्त्रीके शरीर और मनपर उसका पूरा अधिकार है, वह भी उसके लिए अत्यन्त दुर्गम हो गया है। भाग्यके ऐसे अकल्पनीय षड्यन्त्रपर वह किस तरफसे और कैसे आक्रमण करे, कुछ समझमें नहीं आता। कभी किसी भी कारणसे मधुसूदनका ध्यान अपने व्यवसायसे नहीं हटा था, अब वह दुर्लक्षण भी दिखाई देने लगा। अपनी माकी बीमारी और मृत्युसे भी मधुसूदनके काममें ज़रा भी बाधा नहीं आई, इस बातको सब जानते हैं। उस समय उसकी अविचलित दृढ़-चित्तताकी बहुतोंने प्रशंसा की है। मधुसूदन आज सहसा अपना एक नया परिचय पाकर खुद ही दंग रह गया है। बँधे हुए मार्गके बाहर जो शक्ति उसे इस तरह खींच रही है, वह उसे किस तरफ ले जायगी, कुछ समझमें नहीं आता।

रातको खा-पीकर मधुसूदन ऊपर सोने आया। यद्यपि विश्वास नहीं था, फिर भी आशा थी कि शायद आज वहाँ कुमुदसे भेंट हो जायगी। इसीलिए नियमित समयके बाद ही वह सोने आया। उसका सोनेका टाइम ठीक बँधा हुआ है, एक मिनट भी इधर-उधर नहीं होता। कहीं आज उस टाइमपर नींद न आ जाय नहीं तो कुमुद आकर भी लौट जायगी, इस आशंकासे वह पलंग-पर नहीं लेटा। कुछ देर तक सोफ़ेपर बैठा रहा, फिर छतपर टहलने लगा। नौ बजे मधुसूदनके सोनेका वक्त है,—आज, जब सुना कि ड्योढ़ीके घड़ियालमें ग्यारह बज रहे हैं, तो वह चौंक उठा। शरम मालूम हुई, परन्तु बार-बार वह पलंगके पास तक जाता और चुपचाप खड़ा रहता, सोनेकी तबीयत ही नहीं होती।

तब उसने निश्चय किया कि बाहरके घरमें जाकर उसी रातको नवीनसे निबट ले।

बाहरके घरके सामने बरामदेमें जाकर देखा कि भीतर बत्ती जल रही है। वह भीतर घुसना ही चाहता था कि इतनेमें देखा तो भीतरसे लालटेन हाथमें लिए हुए नवीन निकला रहा है। दिन होता तो दिखाई देता कि नवीनका मुँह उस समय जैसा फ़क पड़ गया है।

मधुसूदनने पूछा—"इतनी रातको तुम यहाँ कैसे ?"

नवीनके दिमाग़में एक बहाना सूझ आया, बोला—"सोनेसे पहले ही तो मैं घड़ीमें चाभी दिया करता हूँ और तारीखके कार्ड ठीक करा देता हूँ।"

"अच्छा भीतर आओ, सुनो।"

नवीन घबरा गया, कटघरेके आसामीकी तरह चुपचाप खड़ा रहा।

मधुसूदनने कहा—"बड़ी बहूके कानोंमें मंत्र फूँकनेवाला कोई हो, इसे मैं पसन्द नहीं करता। हमारे घरकी बहू हमारे इच्छानुसार चलेगी, न कि किसी दूसरेकी सलाहसे,—नियम ऐसा ही है।"

नवीनने गम्भीरताके साथ कहा—"यह तो ठीक बात है।"

"इसलिए मैं कहता हूँ, मझली बहूको देश भेज दिया जाय।"

नवीनने, ऐसा भाव दिखलाते हुए कि मानो वह निश्चिन्त हो गया है, कहा—"यह अच्छा हुआ, मैं भी पूछना चाहता था, पर यह सोचकर रह गया कि शायद तुम्हारी राय न हो।"

मधुसूदनने विस्मित होकर पूछा—"इसके मानी ?"

नवीनने कहा—"कई दिन से मझली बहू देश जानेके लिए ज़िद कर रही हैं, चीज़-बस्त सब सम्हाल ली हैं, साइत देखनाभर बाक़ी है।"

कहना न होगा कि यह बात बिलकुल बनाई हुई है। अपने घरमें मधुसूदन जिसे चाहे स्वयं विदा कर सकता है, लेकिन इसके मानी यह नहीं कि कोई चाहे तो अपनी इच्छासे चला जा सकता है, यह बिलकुल बेदस्तूर बात है। उसने नाराज़ीके स्वरमें कहा—"क्यों, जानेके लिए उन्हें इतनी जल्दी किस बातकी है ?"

नवीनने कहा—"घरकी मालिकिन घरमें आ गई, अब इस घरका सारा भार तो उन्हें ही लेना चाहिए। मझली बहू कहती हैं, उनके रहनेसे न जाने कब क्या बात उठ खड़ी हो।"

मधुसूदनने कहा—"इन सब बातोंके विचारका भार क्या उसीपर है ?"

नवीनने भलेमानसकी तरह कहा—"क्या बतावें, औरतोंकी ज़िद है। मुमकिन है, उसने सोचा हो कि किसी बातपर तुम्हीं किसी दिन अचानक उसे हटा दो, उस अपमानको वह सह न सकेगी—इसीसे उसने बिलकुल प्रण कर लिया है कि जायगी ही। अगली तेरसको साइत अच्छी है—इसी बीच में वह सब काम-काज और हिसाब-किताब निबटा देना चाहती है।"

मधुसूदनने कहा—"देखो नवीन, मझली बहूको सिरपर चढ़ा-चढ़ाकर तुम्हींने बिगाड़ दिया है। उसमे ज़रा कड़ाईके साथ ही कहना कि उसका जाना हरगिज़ नहीं हो सकता। तुम मर्द हो, घरमें तुम्हारा शासन न चले, यह बात हमसे देखी नहीं जाती।"

नवीनने सिर खुजलाते हुए कहा—"कोशिश करके देखूँगा, परन्तु—"

"अच्छा, मेरा नाम लेकर कह देना, इस समय उसका जाना नहीं हो सकता। जब वक्त होगा, तो जानेका दिन मैं स्वयं निश्चित कर दूँगा।"

नवीनने कहा—"तुम्हींने तो कहा था कि मझली बहूको देश भेज दो, इसीसे मैं सोच रहा था—"

मधुसूदन उत्तेजित हो उठा, बोला—"मैंने क्या कहा था, अभी—इसी घड़ी भेज दो ?"

नवीन धीरे-धीरे वहाँसे चला आया। मधुसूदन गैसकी बत्ती जलाकर लम्बी आरामकुरसीपर बैठ गया। मकानका चौकीदार रातको बीच-बीचमें कभी-कभी घरोंके सामनेसे टहल जाया करता है। मधुसूदनको ज़रा उँघाई-सा आ गई थी, इतनेमें अचानक चौंककर उसने देखा, चौकीदार घरमें घुसकर लालटेन ऊँची किये उसके मुँहकी तरफ ही ग़ौरसे देख रहा है। शायद वह सोच रहा था, या तो महाराजको मूर्छा आ गई है, या फिर खतम ही हो चुके हैं। मधुसूदन लज्जित होकर कुरसी पर से भड़भड़ाकर उठ बैठा। सद्य-विवाहित राजा बहादुरका इस तरह बाहर के आफिस-रूममें बैठकर रात बिताना, और उस शोकजनक दृश्यका चौकीदार द्वारा देखा जाना, मधुसूदनके लिए बड़ी भारी दुर्घटना थी; इस असम्मानका खयाल आते ही वह मर-सा गया। उठनेके साथ ही उसने गुस्सेके स्वरमें कहा—"घर बन्द करो।" मानो घर बन्द न होनेमें उसीका अपराध था। ड्योढ़ीके घड़ियालमें दो बजे।

मधसूदनने घरसे निकलनेसे पहले फिर एक बार अपनी टेबिलकी दराज़ खोली। इधर-उधर करते-करते कुमुदके नामका तार जेबमें रखकर वह अन्तःपुरकी ओर चल दिया। फिर तीसरे मँज़िलेके ज़ीनेके सामने जाकर कुछ देर तक खड़ा रहा।

गहरी रातकी पहली नींदसे जागकर आदमी अपनी शक्तिको पूर्ण नहीं पाता। इसीसे उसके दिनके चरित्रके साथ रातके चरित्रमें इतना अन्तर है। रातको दो बजेके वक्त, जब कि चारों

तरफ सन्नाटा छाया हुआ है, और अपने सिवा वह संसारमें और किसीके लिए जिम्मेदार ही नहीं है,—तब कुमुदके सामने मन-ही-मन हार मान लेना उसके लिए कोई असम्भव बात नहीं रही।

[३२]

जीनेके नीचेसे मधुसूदन लौट आया, उसकी छातीका खून उफनने लगा। एक बन्द कमरेके सामने मिट्टीके तेलकी लालटेन जल रही थी। उसे हाथमें लेकर वह चुपकेसे बत्ती-घरके सामने जाकर खड़ा हो गया। आहिस्तेसे दरवाजा ढकेला, किवाड़ फिरे हुए थे, खुल गये। कुमुद उसी चटाईपर चद्दर ओढ़े गहरी नींदमें सो रही है—बायाँ हाथ छातीपर रखा है। मधुसूदनने लालटेन एक कोनेमें दीवालसे सटाकर रख दी, और वह कुमुदके मुँहके सामने बाई तरफ़ बैठ गया। यह मुँह जो इतनी प्रबल शक्तिसे मनको अपनी ओर खींचता है, उसका कारण है मुँहके अन्दर उसकी एक अनिर्वचनीय सम्पूर्णता! कुमुदको अपने अंदर अपना विरोध कभी नहीं मालूम हुआ। भइयाकी गिरस्तीमें अभावके दु:खसे वह दु:खित हुई है, किन्तु वह वाह्य अवस्थाके कारण: उससे उसका प्रकृतिपर कोई धक्का नहीं पहुँचा। जिस गिरस्तीमें वह थी, वह उसके स्वभावके लिए सब तरफ़से अनुकूल थी। इसीलिए उसके मुँहपर ऐसी अनवच्छिन्न सरलता है, उसके चलने-फिरनेमें, उसके व्यवहारमें ऐसी अक्षुण्ण मर्यादा है। जिस मधुसूदनको जीवनकी साधनामें जो-जानसे केवल लड़ाई ही लड़नी पड़ी है, प्रतिदिन प्रस्तुत संशयके कारण निरन्तर जिसे सतर्क रहना पड़ता है, उसके लिए कुमुदकी यह सर्वाङ्गीण सुपरिणतिकी अपूर्व गम्भीरता परम आश्चर्यका विषय है। वह खुद जरा भी स्वाभाविक नहीं है, औ

कुमुदिनी मानो बिलकुल देवताके समान सहज है। उसके साथ कुमुदिनीकी यह प्रतिकूलता ही उसे इस तरह प्रबल वेगसे खींच रही है। ब्याहके बाद बहूके पहले-पहल ससुराल आते ही जो वारदात हुई, उसका पूरा चित्र जब वह अपने मनमें देखता है, तो उसे अपनी तरफ़ व्यर्थ प्रभुत्वकी क्रुद्ध अक्षमता दिखाई देती है, और दूसरी तरफ़ बहूके मनमें अनमनीय आत्म-सम्मानका सहज प्रकाश। साधारण स्त्रियोंकी तरह उसके व्यवहारमें कहीं ज़रा भी अशोभन प्रगल्भता नहीं दिखाई दी। यदि ऐसा न होता, तो उसे अपमानित करनेका जो स्वामित्व उसमें मौजूद है, उस अधिकारको काममें लानेमें मधुसूदन रत्ती-भर भी दुबिधा न करता। पर न जाने क्या हो गया है, उसकी कुछ समझमें ही नहीं आता ; न मालूम किस एक अद्भुत कारणसे कुमुदिनी उसके पकड़ने-छूनेमें नहीं आती।

मधुसूदन ने निश्चय किया कि कुमुदिनीको बिना जगाये ही सारी रात वह उसके पास इसी तरह जगता हुआ बैठा रहेगा। कुछ देर बैठे-बैठे फिर उससे किसी तरह बैठा न गया,—आहिस्तेसे कुमुदकी छातीपरसे उसका हाथ उठाकर अपने हाथपर रख लिया। कुमुद नींदकी खुमारीमें हाथ खींचकर मधुसूदनकी उल्टी तरफ़ करवट लेकर सो गई।

मधुसूदनसे अब रहा न गया, कुमुदके कानके पास मुँह ले जाकर बोला—"बड़ी बहू, तुम्हारे भइयाका तार आया है।"

कानमें भनक पड़ते ही कुमुद जल्दीसे उठकर बैठ गई, आश्चर्यसे आँखें खोलकर मधुसूदनके मुँहकी ओर यों ही देखती रह गई। मधुसूदनने तार सामने रखकर कहा—"तुम्हारे भइया ने भेजा है।" कहकर कोनेसे लालटेन उठा लाया।

कुमुदिनीने तार पढ़ा, उसमें अंगरेजीमें लिखा है—"मेरे लिए घबराना मत ; धीरे-धीरे आराम हो रहा है ; तुम्हें मेरा

आशीर्वाद।" कठिन उद्वेगके इस महान् दुःखमें ऐसी सान्त्वनाकी बात पढ़कर उसकी आँखोंमें पानी भर आया। आँखें पोंछकर उसने तारको जतनके साथ आँचलमें बाँध लिया। उससे मधुसूदनके हृदयमें मानो मोच आ गई। उसके बाद वह क्या कहे, उसकी कुछ समझमें नहीं आया। कुमुद ही बोल उठी—"भइयाकी क्या चिट्ठी नहीं आई?"

अब तो मधुसूदनसे किसी भी तरह नहीं कहा गया कि चिट्ठी आई है। चटसे कह दिया—"नहीं तो, चिट्ठी नहीं आई।"

इस कोठरीमें आधी रातके वक्त मधुसूदनके साथ बैठे रहनेमें कुमुदको संकोच मालूम हुआ। वह उठना ही चाहती थी, इतनेमें सहसा मधुसूदन बोल उठा—"बड़ी बहू, मुझपर गुस्सा मत होओ।"

यह तो प्रभुका उपरोध नहीं है, यह तो प्रणयीकी प्रार्थना है, और उसमें मानो अपराधीकी आत्म-ग्लानि भरी हुई है। कुमुद आश्चर्यमें आ गई; उसे मालूम हुआ कि यह दैवकी ही लील है। क्योंकि उसने भी तो बार-बार कहा है, "तू गुस्सा मत हो।" वही बात आज आधी रातके समय अप्रत्याशित भावसे किसीने मधसूदनसे कहलवा ली।

मधुसूदनने फिर उससे कहा—"तुम क्या अब भी मुझपर नाराज़ हो?"

कुमुदने कहा—"नहीं तो, मैं नाराज़ नहीं हूँ, बिलकुल नहीं।"

मधसूदन उसके मुँहकी तरफ देखकर आश्चर्यमें पड़ गया। मानो वह मन-ही-मन किसीसे बातें कर रही है; अनुद्दिष्ट किसीके साथ उसकी बातें हो रही हैं।

मधुसूदनने कहा—"तो फिर चलो यहाँसे, अपने कमरेमें चलो।"

कुमुदिनी आज रातके लिए तैयार न थी। नींदसे जागकर सहसा मनको बाँध लेना कठिन है। उसने संकल्प किया था कि कल सवेरे नहा-धोकर देवताके समक्ष अपने प्रतिदिनका प्रार्थना-मन्त्र पढ़कर, तब, कलसे वह घर-गिरस्तीमें अपनी साधना शुरू करेगी। तब उसने सोचा,—देवताने मुझे समय नहीं दिया, आज आधी रातमें ही बुलाया है! उनसे कैसे कहूँ कि नहीं। मनके अंदर जो एक बड़ी भारी अनिच्छा हो रही थी, उसे अपराध समझकर वह जोरसे उठ खड़ी हुई; बोली—"चलो।"

ऊपर जाकर अपने सोनेके कमरेके सामने पहुँचते ही वह ठिठककर खड़ी हो गई, बोली—"मैं अभी आती हूं, देर न करूँगी।"

कहकर वह छतके एक कोनेमें जाकर बैठ गई। कृष्णपक्षका खंड चन्द्रमा उस समय मध्य-आकाशमें था।

कुमुदिनी अपने मनमें ही बार-बार कहने लगी—"प्रभु, तुमने बुलाया है मुझे, तुमने बुलाया है। मुझे भूले नहीं हो, इसीसे बुलाया है। मुझे काँटेके मार्गसे ले जानेवाले तुम्हीं हो प्रभु, तुम्हीं हो, और कोई नहीं।"

और सबको कुमुद लुप्त कर देना चाहती है। और सब माया है, और सब यदि काँटे भी हों, तो वे मार्गके काँटे हैं और वे उन्हींके मार्गके काँटे हैं, साथमें तोशा है उसके भइयाका आशीर्वाद। उस आशीर्वादको उसने आँचलमें बाँध लिया है। इस आँचलमें बँधे हुए आशीर्वादको उसने बार-बार माथेसे लगाया। उसके बाद जमीनसे सिर लगाकर बहुत देर तक नमस्कार करती रही। इतनेमें एकाएक चौंक उठी, पीछेसे

मधुसूदन बोल उठा—"बड़ी बहू, ठंढ लग जायगी, कमरेमें चलो।" अन्तःकरणमें कुमुद जो वाणी सुनना चाहती थी, उसके साथ इस कंठका स्वर तो मिलता नहीं। यही तो उसकी परीक्षा है, देवता आज उसे वंशीसे भी न बुलायेंगे। वे आज छद्मवेशमें रहेंगे।

[३३]

जहाँ कुमुद व्यक्तिगत मानवी है, वहाँ ज्यों-ज्यों उसका मन धिक्कारमें, घृणामें, वितृष्णासे भरता जाता है, ज्यों-ज्यों घर-गिरस्ती वहाँ अपने शारीरिक बलके रूढ़ अधिकारसे उसे अपमानित करती जाती है, त्यों-त्यों वह अपने चारों तरफ एक आवरण बनाती चलती है। ऐसा आवरण, जो उसकी निजी अच्छे लगने बुरे लगनेकी सत्यताको लुप्त कर देता है, अर्थात् अपने विषयमें उसकी चेतना घटा देता है। यह है क्लोरोफार्मका विधान। परन्तु यह तो दो-चार घंटेकी व्यवस्था नहीं है, तमाम दिन-रात वेदना-बोधको, अरुचिकी अनुभूतिको दूर रखना होगा। इस हालतमें स्त्रियोंको यदि किसी तरह एक गुरु मिल जाय, तो उनकी आत्म-विस्मृतिकी चिकित्सा सहज हो जाती है, सो तो हुआ नहीं। इसीसे उसने मन ही-मन पूजाके मन्त्रको बराबर ध्वनित रखनेकी कोशिश की। उसका दिन-रातका यह मन्त्र था :—

तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय काय
प्रसादये त्वाम् अहमीशमीड्यं
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।

हे मेरे पूजनीय, तुम्हारे सामने अपने सम्पूर्ण शरीरको प्रणत करके यह प्रसाद चाहती हूँ कि पिता जिस तरह पुत्रको, सखा

जिस तरह सखाको, प्रिय जिस तरह प्रियाको सह सकते हैं, हे देव तुम भी मुझे उसी तरह सह सको। तुम जो अपने प्रेमसे मुझे सह सकते हो, उसका प्रमाण इसके सिवा और कुछ नहीं है कि तुम्हारे प्रेमसे मैं भी सब कुछ क्षमा कर सकती हूँ। कुमुदिनीने आँखें मींचकर मन-ही-मन उन्हें पुकारकर कहा—"तुम्हींने तो कहा है, 'जो मनुष्य मुझे सब जगह देखता है, और मुझमें सब-कुछ देखता है, वह मुझे त्यागता नहीं और मैं भी उसे नहीं त्यागता।' इस साधनामें मैं जरा भी शिथिल न होऊँ।"

आज सबेरे नहा-धोकर कुमुदिनीने चन्दनके पानीसे अपने शरीरको बहुत देर तक अभिषिक्त किया। शरीरको निर्मल करके सुगन्धित करके उसने उसे उन्हींको उत्सर्ग कर दिया,—मन-ही-मन एकाग्रताके साथ ध्यान करने लगी कि पल-पलमें उसके हाथमें उनका हाथ है, उसके शरीरमें उनका सर्वव्यापी स्पर्श अविराम विराजमान है। यह शरीर सत्य रूपसे, सम्पूर्ण रूपसे उन्हींको मिला है, उनके मिलनेके बाहर जो शरीर है वह तो मिथ्या है, वह तो माया है, वह तो मिट्टी है, देखते-देखते मिट्टीमें मिल जायगा। जब तक उनके स्पर्शका अनुभव करती हूँ, तब तक यह शरीर किसी भी तरह अपवित्र नहीं हो सकता। यह बात सोचते-सोचते आनन्दसे उसकी आँखोंकी पलकें भीज गईं—उसके शरीरको मानो मुक्ति मिल गई मांसके स्थूल बन्धनसे। पुण्य सम्मिलनका नित्यक्षेत्र समझकर अपने शरीरपर मानो उसे भक्ति हो गई। यदि कुन्दपुष्पकी माला हाथोंके पास मिल जाती, तो अभी वह उसे अपने गलेमें पहन लेती, कबरी (जूड़े) में बाँध लेती। स्नान करके उसने एक खूब चौड़े लाल पाड़की सफ़ेद साड़ी पहन ली। छतपर जाकर जब वह बैठी, तो उसे मालूम हुआ, मानो सूर्यके प्रकाशके रूपमें आकाशपूर्ण एक परम स्पर्शने उसके शरीरको अभिनन्दित किया।

मोतीकी माके पास आकर कुमुदने कहा—"मुझे तुम अपने काममें लगा दो।"

मोतीकी माने हँसकर कहा—"तो आ जाओ, तरकारी बनाओ।"

बड़े-बड़े कठौते, बड़ी-बड़ी पीतलकी नाँदें, टोकनियोंपर टोकनी शाक-सब्जी, दश-पन्द्रह मन पत्ते। आत्मीयों-आश्रितोंसे गप करती तेज़ हाथ चला रही है। क्षत-विक्षत, खण्ड-विखण्डित तरकारीका ढेर का ढेर लग गया। इसी बीच कुमुद एक जगह बैठ गई। सामने दीवार के भीतर आले के पास ही कोई बड़ा-सा पौधा है जिसके चिरचंचल पत्ते सूर्यालोक को चूर्ण-चूर्ण कर छिटका रहे हैं।

मोती की मा बीच-बीच में कुमुद का मुँह देख कर किसी और ही भाव में डूब चली। वह क्या काम कर रही है? ना, हाथ की गति रुक गई है। उसका मन किसी तीर्थ के पथ पर पहुँच गया है। मन में होता है, वह कोई पालवाली नौका देख रही है। आकाश तक उसका पाल चला गया है, ऐसा लगता है। नौका को जैसे ही उसने स्पर्श किया, सुबह हो गई। नौका चल पड़ी और उसने जल को दो धाराओं में काट दिया। परन्तु वह तो इस नाव में बैठी नहीं है। घर पर जब और काम करते हैं, तब वह कुमुद के संग गप करना चाहती है, परन्तु इसके लिये उसे प्रगट रूप में सहज रास्ता नहीं मिलता। सहसा श्यामा-सुन्दरी कह उठी—"बहू, यदि सवेरे स्नान करना है, तो जल गरम करने को कह दिया करो। तुम्हें ठंड नहीं लगती?"

कुमुद बोली—"मुझे अभ्यास है।"

बात वहीं समाप्त हो गई। कुमुद के मन में उस समय एक नीरव जप की धारा चल रही थी—

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

तरकारी काटने के बाद भांडार देखने का काम समाप्त हो गया। इसी बीच में स्नान करती हुई जेठानी की मन्द हँसी गूँज उठी।

मोती की मा को अकेला पाकर कुमुद बोली—"भय्या के उस तार का जवाब तो कल मिल गया।"

मोती की मा को कुछ आश्चर्य हुआ, बोली—"कब मिला?"

कुमुद बोली—"कल रात को।"

"रात को!"

"हाँ, कल रात। उन्होंने उसी समय स्वयं आकर मुझे दे दिया था।"

मोती की मा बोली—"तब तो तुम्हें चिट्ठी निश्चय ही मिल गई होगी।"

"कौन सी चिट्ठी?"

"तुम्हारे भय्या की चिट्ठी।"

इस पर कुमुद व्यस्त होकर बोल उठी—"नहीं वह तो मुझे नहीं मिली। भय्या की कोई चिट्ठी नहीं मिली।"

मोती की मा चुप हो रही।

कुमुद उसके कंधे पर हाथ रख कर उत्कंठित होकर बोली—"भय्या की चिट्ठी कहाँ है? मुझे बतला दो न!"

मोती की मा ने धीरे से कहा—वह चिट्ठी नहीं ला पाऊँगी। वह बड़े ठाकुर के मेज़ की दराज़ में है।

"मेरी चिट्ठी क्या मेरे लिए भी न ला सकोगी?"

"उन्हें अगर कहीं मालूम हो गया कि उनकी दराज खोली है, तो प्रलय हो जायगी।"

कुमुदने घबराकर कहा—"तो भइयाकी चिट्ठी भी मैं नहीं पढ़ सकती ?"

"जेठजी जब आफिस चले जाँय, तब उस चिट्ठीको पढ़कर फिर उसीमें रख देना।"

क्रोधको रोक न सकी। मन गरम हो उठा। बोली—"अपनी चिट्ठी भी क्या चुराकर पढ़नी होगी ?"

"कौनसी अपनी है, कौनसी बिरानी, इस बातका फैसला तो घर-मालिक ही करेंगे।"

कुमुद अपनी प्रतिज्ञा भूली जा रही थी, इतने में भीतरसे उसका मन सहसा उँगली उठाकर बोल उठा—"गुस्सा न करना !" क्षण-भरके लिए कुमुदने आँखें मींच लीं। उसके ओठ काँपने लगे—"प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।"

कुमुदने कहा—"मेरी चिट्ठी कोई चुराना चाहें, चुरावें : उसे चुराकर उसका बदला लेना नहीं चाहती।"

कहनेके बाद ही कुमुदको मालूम हुआ कि उसके मुँहसे कड़ी बात निकल गई है; समझ गई कि भीतर जो क्रोध है, उसके अगोचरमें वह अपनेको प्रकट कर रहा है। उसे उखाड़ फेंकना होगा। उसके साथ लड़ना चाहती है, किन्तु सब समय उस तक पहुँचती भी तो नहीं। गुफाके भीतर वह क़िला बनाया करता है, बाहरसे वहाँ घुसनेका रास्ता कहाँ है ? इसलिए ऐसी एक प्रेमकी बाढ़ लानी चाहिए, जो रुद्धको मुक्त करके बद्धको बहा ले जाय। मनको भुला देने का एक उपाय उसके हाथमें था, वह है सङ्गीत। परन्तु इस घरमें इसराज बजानेमें उसे शर्म मालूम होती है। साथमें इसराज लाई भी नहीं है। कुमुद गाना गा सकती है, किंतु उसके गलेमें उतना जोर नहीं है। गानेकी धारासे आकाशको बहा देनेकी इच्छा हुई। अभिमानका गान, जिस गानमें वह कह

सकती है—"मैं तो तुम्हारी ही पुकारसे आई हूँ, फिर तुम दुबक क्यों गये ? मैंने तो एक पलके लिए भी दुविधा नहीं की। फिर आज क्यों मुझे ऐसे संशयमें डाल दिया है ?" ये सब बातें वह खूब जोरसे गला खोलकर गानेमें कहना चाहती है, तभी उसे मानो उस स्वरमें उत्तर मिल जायगा।

[३४]

कुमुदिनीके भागनेकी सिर्फ एक ही जगह है, मकान की छत। वहीं चली गई। दिन चढ़ गया है, कड़ी घामसे छत भर गई है, सिर्फ जीने की दीवारके पास एक जगह जरासी छाँह है। वहीं जाकर बैठ गई। उसे एक गीत याद आया, उसकी रागिनी है असावरी। उस गीत का प्रारम्भ है—"बाँसुरी हमारो रे"—किन्तु बाक़ीका हिस्सा उस्तादोंके मुँहज़बानी विकृत वाणी है—उसका अर्थ समझमें नहीं आता। कुमुदिनी उस असम्पूर्ण अंशको अपने मनसे इच्छानुसार नई-नई तानोंमें उलट-पुलटकर गाने लगी। वही ज़रासी बात अर्थोंसे भर उठी। वह वाक्य मानो कह रहा है—"अरी मेरी बाँसुरी, तू तानोंसे लबालब भर क्यों नहीं जाती ? अँधेरेको पारकर पहुँचती क्यों नहीं वहाँ, जहाँ दरवाज़ा बन्द है—जहाँ नींद नहीं छूटी है ?"—"बाँसुरी हमारी रे, बाँसुरी हमारी रे !"

मोतीकी माने जब आकर कहा—"चलो बहन, खाने चलो"—तब वह ज़रासी छाया भी लुप्त हो गई थी, किन्तु कुमुदका मन तानसे भरपूर है ; संसारमें किसने उसपर क्या अन्याय किया है, यह सब उसके लिए तुच्छ हो गया है। उसको चिट्ठीके बारेमें मधुसूदनकी जो क्षुद्रता थी, उससे उसके मनमें तीव्र अवज्ञा उद्यत हो उठी थी, वह मानो इस घामसे भरे हुए आकाशमें एक

पतंगकी तरह न-जाने कहाँ विलीन हो गई, उसकी क्रोध-भरी गूंज असीम आकाशमें विला गई। परन्तु चिट्ठीके अन्दर भइयाका जो स्नेह-वाक्य है, उसे पानेके लिए उसके मनका आग्रह तो दूर नहीं होता।

यह व्यग्रता उसके मनमें लगी ही रही। खानेके बाद उससे रहा न गया। मोतीकी मासे बोली—"मैं जाती हूँ बाहरके कमरेमें, चिट्ठी पढ़ आऊँ।"

मोतीकी माने कहा—"और जरा ठहर जाओ, नौकर-चाकर छुट्टी लेकर जब खाने चले जायँ, तब जाना।"।

कुमुदने कहा—"नहीं नहीं, वह तो बिलकुल चोरकी तरह जाना होगा। मैं सबके सामने होकर जाना चाहती हूँ, फिर जिसके जो मनमें आवे समझा करे।"

मोतीकी माने कहा—"तो चलो, मैं भी साथ चलती हूँ।"

कुमुद कहने लगी—"नहीं, सो हर्गिज़ नहीं होगा। तुम सिर्फ बता दो, किस तरफ़से जाना होगा?"

मोतीकी माने अन्तःपुरके झरोखेदार बरामदेमेंसे कमरा दिखा दिया। कुमुद बाहरकी ओर चल दी। नौकर-चाकर चकित होकर उठ खड़े हुए और उसे प्रणाम करने लगे। कुमुदने कमरेमें घुसकर डेस्ककी दराज खोलकर देखा, तो उसमें उसकी चिट्ठी निकली। हाथमें लेकर देखा, लिफाफा खुला हुआ है। छातीके भीतर उफान-सा आने लगा, बिलकुल असह्य हो उठा। जिस घरमें कुमुद पली है, वहाँ इस तरहके अपमानकी कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। उसके आवेगकी इस तीव्र प्रबलता हीने उसे धक्के दे-देकर सचेत कर दिया है। वह बोल उठी—"प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्"—फिर भी तूफान रुकता नहीं—इसीसे बार-बार कहने लगी। बाहर जो अरदली खड़ा था, बहू-रानीको

आफिस-रूममें इस तरह अकेले मन-ही-मन मन्त्र पढ़ते देख दंग रह गया। देर तक पढ़ते-पढ़ते कुमुदका मन शान्त हो गया। तब वह चिट्ठीको सामने रखकर हाथ जोड़े चुपचाप चौकीपर बैठी रही। चिट्ठी वह चुराकर नहीं पढ़ेगी, यही उसका प्रण है।

इतनेमें मधुसूदन आ पहुँचा, चौंककर खड़ा हो गया,—कुमुदने उसकी तरफ़ आँख उठाकर देखा तक नहीं। उसने पास आकर देखा, डेक्सपर विप्रदासकी चिट्ठी पड़ी है। पूछा—"तुम यहाँ क्यों ?"

कुमुदिनीने चुपचाप शान्त दृष्टिसे मधुसूदनके मुँहकी ओर देखा। उसकी चितवनमें शिकायतका भाव न था। मधुसूदनने फिर पूछा—"इस कमरेमें तुम क्यों आई ?"

इस व्यर्थ प्रश्नके उत्तरमें कुमुदने अधैर्यके स्वरमें ही कहा—"मेरे नामकी भइयाकी कोई चिट्ठी आई है या नहीं, देखने आई थी।"

मुझसे पूछा क्यों नहीं, इस प्रश्नका रास्ता तो कल रातको मधुसूदनने खुद ही बंद कर दिया था। इसीसे बोला—"यह चिट्ठी मैं खुद ही तुम्हारे पास ले जा रहा था, इसके लिए तुम्हें यहाँ आनेकी तो कोई जरूरत न थी।"

कुमुद कुछ देर चुप बैठी रही, फिर मनको शान्त करके बोली—"तुम्हारी इच्छा नहीं है कि मैं इस चिट्ठीको पढ़ूँ, इसलिए मैं इसे न पढ़ूँगी। यह लो, मैंने फाड़ दी! लेकिन ऐसा कष्ट मुझे अब कभी न देना। इससे बढ़कर मेरे लिए और कोई दुःख हो ही नहीं सकता।"

यह कहकर वह मुँहपर आँचल ढँककर दौड़कर भीतर चली गई।

इससे पहले आज दोपहरको खानेके बाद मधुसूदनके मनमें उथल-पुथल हो रही थी। उस आन्दोलनको वह किसी तरह रोक न सका। कुमुदके खा चुकनेपर उसे वह बुलाना चाहता था। आज उसने सिरके बाल काढ़नेमें काफी ध्यान दिया है। आज सबेरे ही उसने एक अंगरेज़ नाईकी दुकानसे स्पिरिट-मिला खुशबूदार तेल और क़ीमती एसेन्स मँगा लिया था। ज़िन्दगीमें ये चीज़ें उसने आज पहले-ही-पहल इस्तेमाल की हैं। सुगन्धित और सुसज्जित होकर वह तैयार बैठा था। आफिसका वक्त आज पैंतालिस मिनट चूक गया था।

जीनेमें पैरोंकी आहट सुनकर मधुसूदन चौंककर बैठ गया। हाथके पास और कुछ न पाकर एक पुराना अखबार लेकर बैठ गया और उसके विज्ञापनोंको इस ढंगसे देखने लगा, जैसे वह उसके दफ़्तरके कामका ही अंग हो। यहाँ तक कि जेबसे एक मोटी नीली पेन्सिल निकालकर उसपर दो-एक निशान भी लगा दिये।

इतनेमें कमरेमें प्रवेश किया श्यामासुन्दरीने। भौंहें सिकोड़कर मधुसूदनने उसकी तरफ़ देखा। श्यामा बोली—"तुम यहाँ बैठे हो, बहू तुम्हें ढूँढ़ती फिरती है।"

"ढूँढ़ती फिरती है! कहाँ?"

"अभी तो देखकर आई हूँ, बाहर तुम्हारे आफिस-वाले कमरेमें गई है। सो इसमें इतना तअज्जुब क्यों करते हो—उसने समझा है कि शायद तुम वहीं—"

झटपट मधुसूदन वहाँसे निकलकर चला गया! उसके बाद ही चिट्ठीवाली घटना हुई।

पालदार नावको, अचानक पाल फट जानेसे जो दशा होती है, मधुसूदनकी भी वही हालत हुई। उस वक्त देर करनेका ज़रा

भी मौक़ा न था। दफ़्तर चल दिया, परन्तु सब काममें भीतर-ही-भीतर उसकी असम्पूर्ण टूटी-फूटी चिन्ताकी तीखी नोंक बार-बार मानो उचक-उचककर छिदने लगी। इस मानसिक भूकम्पके अंदर मन लगाकर काम करना उसके लिए असम्भव हो उठा। अफिसमें कह दिया कि सिरमें बड़े जोरका दर्द हो रहा है, और काम ख़त्म होनेके बहुत पहले ही घर लौट आया।

[३५]

इधर नवीन और मोतीकी मा समझ गई कि अबकी भींत टूटी, भागकर जान बचानेका ठिकाना कहीं न रहा। मोतीकी माने कहा,—"यहाँ जैसे मेहनत-मजूरी करके पेट भरती हूँ, इस तरह मेहनत-मजूरी करके गुज़र करनेकी जगह संसारमें मुझे मिल जायगी। मुझे दुःख सिर्फ इसी बातका है कि मेरे चले जाने पर इस घरमें जीजीकी देख-भाल करनेवाला कोई न रहेगा।"

नवीनने कहा—"तो सुनो, मझली बहू, मेरी भी सुन लो, यहाँ मैं बहुत सह चुका हूँ, इस घरके अन्न-जलसे मुझे बिलकुल अरुचि हो गई है, लेकिन अबकी असह्य हो रहा है। भइयाने ऐसी बहू पाकर भी क़दर नहीं जानी—रखना नहीं जाना—सब बना-बनाया खेल बिगाड़ दिया। अच्छी चीज़के फूटे टुकड़ोंसे ही दरिद्रता अपना घर बनाती है।"

मोतीकी मा बोली—"इस बातको समझनेमें अब तुम्हारे भाई साहबको देर न लगेगी, लेकिन तब फूटा हुआ जुड़ेगा नहीं।"

नवीनने कहा—"लक्ष्मण-देवर होनेका सौभाग्य भी मुझे नसीब न हुआ, मुझे सिर्फ इसी बातकी दुःख है। ख़ैर, तुम चीज़-वस्त तो बाँध ही लो; यहाँ तो जब जिसका समय आ जाता है, फिर उसे देर नहीं लगती।"

मोतीकी मा चली गई। नवीनसे अब रहा न गया, धीरे-धीरे वह अपनी भाभीके कमरे तक पहुँचा। देखा तो, कुमुद अपने कमरेमें ज़मीनपर बिछौना बिछाकर पड़ी है। जो चिट्ठी उसने फाड़कर फेंक दी है, उसकी वेदना उसके मनसे किसी तरह दूर नहीं होती।

नवीनको देखकर झटपट उठ बैठी। नवीनने कहा—"भाभी, पैर छूने आया हूँ, ज़रा पैरोंकी धूल दो।"

भाभीके साथ नवीनकी यह पहली बातचीत है।

कुमुदने कहा—"आओ आओ, बैठो।"

नवीनने ज़मीनपर बैठकर कहा—"तुम्हारी सेवा कर सकूँगा, इस खुशीमें मेरी छाती भर उठी थी; लेकिन नवीनकी तकदीरमें इतना सौभाग्य समाता कैसे? थोड़े दिनके लिए तुम्हें पाया, सो भी कुछ कर न सका, यह अफ़सोस मनमें रह ही गया।"

कुमुदने पूछा—"कहाँ जा रहे हो तुम?"

नवीनने कहा—"भइया हम लोगोंको देश ही भेजेंगे, फिर शायद तुमसे मिलनेका मौक़ा न मिले, इसीसे प्रणाम करके बिदा लेने आया हूँ।"—कहकर उसने प्रणाम किया। इतमें मोतीकी मा दौड़ी आई और बोली—"जल्दी जाओ। 'बड़े' तुम्हें ढूँढ़ रहे हैं।"

नवीन ताबड़तोड़ उठकर चल दिया। मोतीकी मा भी उसके साथ हो ली।

भाई साहब बाहरके कमरेमें डेक्सके पास बैठे थे, नवीन आकर सामने खड़ा हो गया। और दिन इस तरह खड़े होनेमें उसके मुँहपर जैसा आशंकाका भाव रहता था, आज उसका लेशमात्र भी नहीं है।

मधुसूदनने पूछा—"डेक्समें चिट्ठी है, यह बात बड़ी बहूसे किसने कही?"

नवीनने कहा—"मैंने ही कही थी।"

"एकाएक तुम्हारा साहस इतना कहाँसे बढ़ गया ?"

"बड़ी बहू-रानीने मुझसे पूछा था कि उनके भइयाकी चिट्ठी आई है या नहीं। यहाँकी सब चिट्ठियाँ पहले तो तुम्हारे पास आकर इसी डेक्समें ही जमा होती हैं, इसीसे मैं देखने आया था।"

"मुझसे पूछने तकका सब्र न हुआ ?"

"वे घबरा रही थीं, इसीसे—"

"इसीसे मेरा हुक्म उड़ा दिया, क्यों ?"

"वे तो इस घरकी मालिकिन हैं, कैसे समझता कि उनका हुक्म यहाँ नहीं चलेगा ? वे जो कहें, उसे मैं न मानूँ, इतनी मजाल मुझमें नहीं है। एक बात आपसे और कह दूँ, वे मेरी सिर्फ मालिकिन ही हों, सो नहीं, मेरी वे पूज्य भी हैं। उनकी आज्ञा मैं सिर्फ इसलिए नहीं मानता कि मैं उनका नमक खाता हूँ, बल्कि मेरी उनपर भक्ति है, इसलिये उनकी आज्ञा मेरे सिर-माथे है।"

"नवीन, तुम्हें तो मैं बचपनसे देख रखा हूँ, यह बुद्धि तुम्हारी नहीं है। मुझे मालूम है, तुम्हें बुद्धि कहाँसे मिलती है। खैर, कुछ भी हो, आज तो वक्त निकल गया, कल सवेरेकी गाड़ीसे तुम लोग देश रवाना हो जाना।"

"जी हाँ"—कह कर नवीन बिना कुछ कहे-सुने जल्दीसे चला गया।

इतने संक्षेपमें "जी हाँ" कहना मधुसूदनको बिलकुल ही अच्छा न लगा। नवीनको रोना-बिलखना चाहिए था, यद्यपि उससे मधुसूदनके संकल्पमें कोई फर्क न आता। नवीनको फिरसे

बुलाकर कहा—"तनखा चुकती ले जाओ, लेकिन अबसे हम तुम लोगोंका खर्च न दे सकेंगे।"

नवीनने कहा—"मुझे मालूम है, देशमें जो मेरे हिस्सेकी ज़मीन है, उसमें खेती-बाड़ी करके मैं अपनी गुजर कर लूँगा।"

यह कहकर, और किसी बातकी प्रतीक्षा न करके वह चला गया।

मनुष्यकी प्रकृति अनेक विरुद्ध धातुओंको मिलाकर बनाई गई है, इस बातका एक प्रमाण यह है कि मधुसूदनका नवीनपर बड़ा गहरा स्नेह है। उसके और दो भाई रजबपुरमें ज़मीन-जायदादके काममें गई-गाँवमें पड़े हुए हैं, मधुसूदन उनकी कभी कोई खोज-खबर नहीं लेता। पिताके मरनेके बाद मधुसूदनने नवीनको कलकत्ता लाकर पढ़ाया-लिखाया है और उसे बराबर अपने पास रखा है। घरके काममें नवीनमें स्वाभाविक पटुता है। उसका कारण, यह है कि वह सच्चा आदमी है। दूसरे, बातचीतमें, व्यवहारमें वह सबका प्रिय है। घरमें जब कोई झगड़ा-टंटा हो जाता, तो नवीन उसे बड़ी आसानीसे निबटा देता। नवीन सब बातोंमें हँसना जानता है, और अपने आदमियोंके प्रति सिर्फ न्याय ही नहीं करता, बल्कि ऐसा व्यवहार करता है कि जिससे हरएक आदमी यही समझता है कि नवीनका उसके प्रति विशेष पक्षपात है।

नवीनको मधुसूदन हृदयसे चाहता है, इस बातका एक प्रमाण यह भी है कि मोतीकी माको मधुसूदन देख नहीं सकता। जिस-पर उसकी ममता है, उसपर उसका एकाधिपत्य होना चाहिए। इसी कारण मधुसूदन केवल कल्पना करता रहता है कि मोतीकी मा सिर्फ नवीनका मन फाड़नेको है। छोटे भाईपर उसका जो पैत्रिक अधिकार है, बाहरकी एक लड़की आकर बार-बार उसमें

बाधा डाला करती है, नवीनपर मधुसूदनका अगर ज्यादा प्रेम न होता तो बहुत दिन पहले ही मोतीकी माके लिए निर्वासन-दंड पक्का हो जाता।

मधुसूदनने सोचा था कि इतना काम करनेके बाद फिर एक बार आफिस हो आयेगा, परन्तु किसी भी तरह उसके मनमें इतनी शक्ति न आई। कुमुद जो उस चिट्ठीको फाड़कर चली गई, वह तसवीर उसके मनपर गहराईके साथ अंकित हो गई है। वह एक आश्चर्यका दृश्य था, इसकी तो उसने कभी कल्पना भी न की थी। एक बार उसने अपने हमेशाके सन्दिग्ध स्वभावके कारण समझ लिया था कि अवश्य ही कुमुदने चिट्ठी पहले ही पढ़ ली होगी, किन्तु कुमुदके मुँहपर ऐसी एक निर्मल सत्यकी दीप्ति है कि ज्यादा देर तक उसपर अविश्वास करना मधुसूदनके लिए भी असम्भव है।

कुमुदिनीपर कड़ाईके साथ शासन करनेकी शक्ति मधुसूदनने देखते-देखते खो दी है; अब उसकी अपनी तरफ जो अपूर्णताएँ हैं, वही उसे दुःख दे रही हैं। उसकी उमर ज्यादा है, इस बातको आज वह भूलना चाहता है, लेकिन भूलती नहीं। यहाँ तक कि उसके अब बाल पकने लगे हैं, उन्हें भी वह किसी तरह छिपाना चाहता है। उसका रंग काला है, विधाताका यह अन्याय इतने दिनों बाद उसे बेतरह खटक रहा है। कुमुदका मन बार-बार उसकी मुट्ठीमेंसे निकल जाता है, उसका कारण है मधुसूदनमें रूप और यौवनका अभाव, इसमें उसे संदेह नहीं। यहीं वह निरस्त्र है, दुर्बल है। उसने चटर्जियोंके घरकी लड़की ब्याहनी चाही थी, परन्तु इस बातका उसे स्वप्नमें भी खयाल न था कि उसे वहाँसे ऐसी लड़की मिलेगी, जिसके सामने विधाताने पहले ही से उसकी हार तय कर दी है। साथ ही उसके मनमें इतना जोर भी नहीं

कि कह दे कि उसके लिए एक मामूली-सी लड़की होती तो अच्छा होता, जिसपर उसका शासन चल सकता।

मधुसूदन सिर्फ़ एक विषयमें टक्कर ले सकता है,—अपने धनसे। आज सवेरे घरपर जौहरी आया था। उससे तीन अँगूठियाँ लेकर रख ली हैं, देखना चाहता है कि उनमेंसे कौनसी कुमुदको पसन्द है। उन अँगूठियोंकी डिबियोंको जेबमें डालकर वह ऊपर सोनेके कमरेमें गया। एक चुन्नीकी है, एक पन्नेकी और एक हीरेकी। मधुसूदन कल्पना-योगसे मन-ही-मन एक दृश्य देखने लगा। मानो पहले उसने चुन्नीकी अँगूठीकी डिबिया खूब आहिस्ते से खोली, कुमुदकी लुब्ध दृष्टि उज्ज्वल हो उठी। उसके बाद निकाली पन्नेकी, उससे आँखें और भी फट गईं। उसके बाद हीरेकी, उसकी बहुमूल्य उज्ज्वलतासे रमणीके आश्चर्यकी सीमा न रही। मधुसूदनने राजकीय गम्भीरताके साथ कहा—"तुम्हें जो पसन्द हो, छाँट लो।" हीरेकी अँगूठी ही कुमुदने पसन्द की, तब उसके लुब्धताके क्षीण साहसको देखकर मधुसूदन मुसकराया, उसने तीनों अँगूठी कुमुदकी तीन उँगलियोंमें पहना दी, उसके बाद ही रातको शयन-मंचकी यवनिका उठी।

मधुसूदनका अभिप्राय था कि यह बात आज रातको खाने-पीनेके बाद की जायगी, परन्तु दोपहरकी दुर्घटनाके कारण मधुसूदनसे फिर रहा न गया। रातकी भूमिका आज दोपहरको ही तय कर डालनेके लिए वह भीतर गया।

जाकर देखा तो, कुमुद एक टीनका ट्रङ्क खोलकर उसमें अपने कपड़े-लत्ते, चीज़-वस्त सम्हाल-सम्हालकर रख रही है। आस-पास चीज़-वस्त, कपड़े-लत्ते बिखर रहे हैं।

"ऐं, यह क्या? कहीं जा रही हो क्या?"

"हाँ।"

"कहाँ ?"

"रजबपुर ।"

"इसके मानी ?"

"तुमने अपने दराज खोलनेके कसूरपर देवरजीको सज़ा दी है । वह सज़ा असलमें मुझे मिलनी चाहिए ।"

'मत जाओ' कहकर मनाने बैठ जाना, मधुसूदनके स्वभावके बिलकुल खिलाफ़ बात है । उसका मन पहलेसे ही बोल उठा—'जाने दो, देखें तो कितने दिन रहती है ।' एक क्षण भी देर न करके दनदनाता हुआ चला गया ।

[३६]

मधुसूदनने बाहरवाले कमरेमें जाकर नवीनको बुलवाया, और कहा—"बड़ी बहूको तुम लोगोंने भड़का दिया है"

"भाई साहब, कल तो हम लोग जा ही रहे हैं; अब तुम्हारे सामने डरसे हिचकते हुए बात न करूँगा । मैं साफ़-साफ़ कहता हूँ, बड़ी बहूरानीको भड़कानेके लिए घरमें दूसरे किसीकी ज़रूरत न पड़ेगी—तुम अकेले ही बहुत हो । हम लोग रहते, तो शायद कुछ शान्त भी रख सकते, लेकिन तुमसे यह सहा न गया ।"

मधुसूदनने गरजकर कहा—"बस, ज्यादा बुज़ुर्गी न छाँट ! रजबपुर जानेकी बात तुम्हीं लोगोंने उसे सुझाई है ।"

"इस बातको सोच भी नहीं सकता—सिखाना तो दूर रहा !"

"देख, इसी बातपर अगर उसे नाच नचाया, तो तुम लोगोंके लिए अच्छा न होगा, साफ कहे देता हूँ ।"

"भाई साहब, ये बातें कह किससे रहे हो ? जहाँ कहनेसे कुछ नतीजा निकले, वहाँ कहो ।"

"तुम लोगोंने कुछ नहीं कहा ?"

"क़सम खाकर कहता हूँ—कल्पना भी नहीं की।"

"बड़ी बहू अगर ज़िद कर बैठे तो क्या करोगे तुम लोग ?"

"तुम्हें बुलाऊँगा। तुम्हारे पास हरकारे, बर्कन्दाज़, पियादे हैं, तुम रोक सकते हो ! फिर अगर तुम्हारे शत्रुपक्षके लोग इस युद्ध का समाचार अखबारोंमें छपावें, तो मझली बहूपर सन्देह न कर बैठना।"

मधुसूदनने फिर उसे धमकाकर कहा—"चुप रह ! बड़ी बहू अगर रजबपुर जाना चाहती है तो जाने दो, मैं नहीं रोकता।"

"हम लोग उन्हें खिलायँगे कहाँसे ?"

"अपनी बहूके गहने बेचकर। जा जा, जा यहाँसे ! निकल जा अभी घरसे !"

नवीन निकल गया। मधुसूदन ओ-डि-कलोनकी पट्टी माथेसे बाँधकर फिर एक बार आफिस जानेके संकल्पको दृढ़ करने लगा।

नवीनके मुँह जब मोतीकी माने सब बातें सुनीं, तो वह दौड़ी गई कुमुदके कमरेमें। देखा, अभी तक वह कपड़े-लत्ते सम्हाल रही है। बोली—"यह क्या कर रही हो बहू-रानी ?"

"तुम लोगोंके साथ चलूँगी।"

"तुम्हें ले चलनेकी सामर्थ्य क्या हममें हो सकती है ?"

"क्यों ?"

"जेठजी फिर तो हम लोगोंका मुँह भी न देखेंगे।"

"तो फिर मेरा भी न देखेंगे।"

"ख़ैर, यहाँ तक तो माना, पर हम लोग तो बड़े गरीब हैं।"

"मैं भी कम ग़रीब नहीं हूँ, मेरी भी गुज़र हो जायगी"

"लोग फिर जेठजीकी हँसी उड़ायँगे।"

"इससे क्या, मेरे लिए तुम लोग सज़ा पाओगे, इसे मैं बरदाश्त नहीं कर सकती।"

"लेकिन जीजी, तुम्हारे लिए क्यों, यह तो हमारे अपने ही पापोंकी सज़ा है।"

"कौनसा पाप किया है तुम लोगोंने ?"

"हम ही लोगोंने तो खबर दी है तुम्हें।"

"मैं अगर खबर जानना चाहूँ और तुम दो, तो वह भी अपराध है ?"

"मालिकसे बिना कहे देना अपराध है।"

"अच्छा, यही सही, अपराध तुम लोगोंने भी किया है, मैंने भी किया है। दोनों एक ही साथ फल भोगेंगे।"

"अच्छी बात है, तो कहलवा दूँ, तुम्हारे लिए पालकी आ जायगी। जेठजीका तो हुक्म हो गया है कि तुम्हें रोका नहीं जायगा। लाओ, मैं तुम्हारी चीज़-वस्त ठीकसे लगा दूँ। तुम तो पसीनेमें लदबद हो गई हो।"

दोनों चीज़-वस्त सम्हालनेमें लग गईं।

इतनेमें बाहर किसीके जूतेकी मच-मच आवाज़ सुनाई दी। मोतीकी मा भागकर चली गई।

मधुसूदनने कमरेमें घुसते ही कहा—"बड़ी बहू, तुम नहीं जा सकती।"

"क्यों नहीं जा सकती ?"

"इसलिए कि मेरा हुक्म है।"

"अच्छा तो नहीं जाऊँगी। उसके बाद क्या हुक्म है, बताओ।"

"बन्द करो अपना सामान पैक करना।"

"यह लो, बन्द कर दिया।"—कहकर कुमुद कमरेसे बाहर निकल गई। मधुसूदनने कहा—"सुनो, सुनो।"

उसी वक्त कुमुदने लौटकर कहा—"कहो, क्या कहते हो ?"

विशेष कुछ कहनेको था नहीं। फिर भी कुछ सोचकर बोल "तुम्हारे लिए अँगूठी लाया हूँ।"

"मुझे जिस अँगूठीकी ज़रूरत थी, उसे तुमने पहननेके लिए मना कर दिया है, अब मुझे अँगूठीकी ज़रूरत नहीं।"

"एक दफे देख तो लो आँखोंसे।"

मधुसूदनने एक-एक डिब्बी खोलकर दिखलाई। कुमुदने अपने मुँहसे कुछ न कहा।

"इनमें से जौनसी तुम्हें पसन्द हो, पहन सकती हो।"

"तुम जिसके लिए हुक्म दोगे, पहन लूँगी।"

"मेरा तो खयाल है, तीनों तीन उँगलियोंमें अच्छी मालूम होंगी।"

"हुक्म दो, तीनों पहन लूँगी।"

"मैं लो पहनाये देता हूँ।"

"लो पहना दो।"

मधुसूदनने पहना दी। कुमुदने कहा—"और कुछ हुक्म है?"

"बड़ी बहू, तुम गुस्सा क्यों होती हो?"

"मैं ज़रा भी गुस्सा नहीं होती"—कहकर कुमुद फिर बाहर चल दी।

मधुसूदन चंचल होकर कहने लगा—"अरे-अरे, जाती कहा हो? सुनो तो सही।"

कुमुद तुरत लौट आई, बोली—"कहो, क्या कहते हो?"

सोच न सका, क्या कहे। मधुसूदनका मुँह लाल हो उठा। अपनेको धिक्कार कर बोला—"अच्छा, जाओ।"

गुस्सेमें बोला—"लाओ अँगूठियाँ फेर दो।"

कुमुदने तीनों अँगूठियाँ खोलकर तिपाईपर रख दीं।

मधुसूदनने कड़ककर कहा—"जाओ, चली जाओ।"

कुमुद उसी वक्त चली गई।

इसी बार मधुसूदनने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि वह आफिस जायगा ही। तब कामका वक्त क़रीब-क़रीब बीत चुका था। अंगरेज कर्मचारी सब चले गये थे टेनिस खेलने। बड़े-बाबुओंका दल उठनेकी तैयारीमें ही था। इसी समय मधुसूदन पहुँचा और जातेके साथ ही डटकर काममें लग लया। छै बज चुके, सात बज गये, आठ बजनेवाले हैं, अब वह रजिस्टर बन्द करके उठ खड़ा हुआ।

[३७]

अब तक मधुसूदनकी जीवन-यात्रामें कभी कोई सिलसिला नहीं टूटा था। प्रत्येक दिनका प्रत्येक क्षण निश्चित नियमसे बँधा हुआ था। आज सहसा, एक अनिश्चत चीज़ने आकर सब गड़बड़ कर दिया। यह जो आज आफिससे घरकी ओर जा रहा है, आजकी रात ठीक किस ढंगसे काटेगी, यह बिलकुल अनिश्चित है। मधुसूदन डरते-डरते घर आया। धीरे-धीरे भोजन किया। भोजन करके उसी समय साहस न हुआ कि सोनेके कमरे जाता। पहले कुछ देर तो बाहरके दक्षिणके बरामदेमें टहलता रहा। जब सोनेका वक्त हुआ—नौ बजे—तो भीतर गया। आज उसकी दृढ़ प्रतिज्ञा थी—ठीक समयपर पलंगपर जाकर सोऊँगा, किसी भी तरह इसका व्यतिक्रम न होगा। सूने कमरेमें घुसकर मशहरी उठाकर एकदम बिस्तरपर जाकर पड़ रहा, पर नींद नहीं आई। ज्यों-ज्यों रात बीतने लगी, त्यों त्यों भीतरका उपवासी जीव अन्धकारमें धीरे-धीरे बाहर निकलने लगा। तब उसका पीछा करनेवाला कोई न था, पहरेदार सब थके-माँदे पड़े थे।

घड़ीमें एक बजा, पर आँखोंमें ज़रा भी नींद नहीं। अब उससे न रहा गया, बिछौनेसे उठकर सोचने लगा—कुमुद कहाँ है? बंकू फर्राशको कड़ा हुक्म था, फर्राशखानेमें ताला लगा हुआ था। छतपर घूम आया, वहाँ कोई न था। पैरोंसे जूते निकालकर नीचेके बरामदेसे धीरे-धीरे चलने लगा। जब मोतीकी माके घरके सामने पहुँचा, तो उसके कानमें कुछ भनक-सी पड़ी। हो सकता है, कल जानेवाले हैं, सो आज पति-पत्नीमें सलाह हो रही हो। बाहर चुपचाप कान लगाये खड़ा रहा। दोनों जने गुनगुनाकर बातचीत कर रहे हैं। बात सुनाई नहीं पड़ती, पर इतना स्पष्ट मालूम हुआ कि दोनों औरतोंकी आवाज़ है। तब तो विच्छेदकी पूर्व-रात्रिमें मोतीकी माके साथ कुमुदकी ही मनकी बातें हो रही हैं। क्रोधसे क्षोभसे इच्छा होने लगी कि लात मारकर दरवाज़ा खोलकर एक दुर्घटना कर दे। लेकिन फिर नवीन कहाँ गया? ज़रूर बाहर ही होगा।

अन्तःपुरसे बाहर जानेके लिए दोनों ओर झिलमिलीसे घिरा हुआ रास्ता है, उसमें एक बत्ती जल रही है। वहाँ आते ही मधुसूदनने देखा कि लाल दुशाला ओढ़े श्यामा खड़ी है। उसके सामने लज्जित होकर मधुसूदन गुस्सेमें भर गया। बोला—"क्या कर रही हो यहाँ—इतनी रातमें?"

श्यामाने कहा—"सो रही थी। बाहर पैरोंकी आहट सुनकर दहशत हो गई—शायद कोई—"

मधुसूदनने गरजकर कहा—"देखता हूँ, तुम बहुत सिरपर चढ़ गई हो! मेरे साथ चालाकी मत चलो, सावधान किये देता हूँ। जाओ सोओ जाकर।"

श्यामासुन्दरी कई दिनसे ज़रा अपने साहसके क्षेत्रको कुछ-कुछ बढ़ाती जा रही थी। आज वह समझ गई कि असमयमें

अस्थानपर पैर पड़ा है। अत्यन्त करुण मुँह बनाकर एक बार उसने मधुसूदनकी ओर देखा—उसके बाद मुँह फेरकर आँचल-से आँखें पोंछीं। चले जानेको उद्यत होकर फिर वह पीछेकी ओर मुँड़कर खड़ी हो गई, बोली—"चालाकी न चलूँगी देवरजी! जो कुछ देख रही हूँ, उससे आँखोंमें नींद नहीं आती। हम तो आजकी यहाँ नहीं हैं, कितने दिनोंका सम्बन्ध है, हम लोगोंसे सहा कैसे जाय?"—कहकर जल्दीसे चली गई।

मधुसूदन कुछ देर खड़ा रहा, फिर चल दिया बाहरकी तरफ। आगे चलकर चौकीदारसे उसका सामना हो गया,—उस वक्त वह गश्त लगा रहा था। क़ानूनका ऐसा कड़ा जाल फैला रखा है कि अपने घरमें वह चुपचाप घूम-फिर भी नहीं सकता। चारों तरफ सतर्क-दृष्टिका व्यूह है। राजा बहादुर आधी रातमें बिछौनेसे उठकर अँधेरेमें नंगे-पैर बाहरके दालानमें भूतकी तरह चले आये, यह बिलकुल ही अभूतपूर्व बात है। पहले तो दूरसे जब वह पहचान नहीं पाया, बोल उठा—"कौन है?" फिर पास आकर देखा, तो राजा साहब! दाँतों तले जीभ दबाकर लम्बा सलाम करके बोला—"क्या हुक्म है हजूर?"

मधुसूदनने कहा—"देखने आया हूँ, इन्तजाम ठीक है या नहीं!" कम-से-कम मधुसूदनके लिए यह बात कोई असंगत भी नहीं।

उसके बाद मधुसूदनने बैठकखानेमें जाकर देखा, तो वही बात, जो उसने सोची थी,—नवीन एक लम्बे तकियेसे लिपटकर गद्दीपर पड़ा सो रहा है।

मधुसूदनने कमरेकी गैस-बत्ती जला दी, उससे भी उसकी नींद न छूटी। फिर उसे हाथसे पकड़कर हिलाया, तब वह भड़-भड़ाकर उठ बैठा। मधुसूदनने उससे बिना किसी तरहकी

कैफ़ियत तलब किये ही कहा—"जा अभी, बड़ी-बहूको जाकर कह कि मैं उसे ऊपर बुला रहा हूँ ।" इतना कहकर वह उसी वक्त भीतर चला गया ।

थोड़ी देरमें कुमुदिनीने सोनेके कमरेमें प्रवेश किया। मधुसूदनने उसके मुँहकी ओर देखा। मामूली एक लाल किनारी की साड़ी पहने थी। माथेपर साड़ीका पल्ला ज़रासा खिंचा हुआ था। इस निर्जन घरके मन्द प्रकाशमें यह कैसा सुन्दर आविर्भाव है। कुमुदिनी कमरेके एक तरफ सोफेपर बैठ गई।

मधुसूदन चटसे उसके पैरोंके पास आकर बैठ गया। कुमुदिनीके मारे संकोचके झटपट वहाँसे उठनेकी कोशिश करने-पर मधुसूदनने उसे हाथ पकड़कर बिठा लिया, कहा—"उठो मत, सुनो, मेरी बात सुनो। मुझे माफ करो, मैंने क़सूर किया है।"

मधुसूदनके ऐसे विनय भावको देखकर, जिसकी कोई आशा न थी, कुमुदिनी दंग रह गई। मधुसूदनने फिर कहा—"नवीन-को—मँझली बहूको रजबपुर जानेकी मनाई कर दूँगा। वे यहीं तुम्हारी सेवामें ही रहेंगे।"

कुमुद क्या कहे, कुछ सोच न सकी। मधुसूदनने सोचा—अपना मान खोकर मैं बड़ी बहूका मान भंग करूँगा। हाथ पकड़कर विनतीके साथ बोला—"मैं अभी आता हूँ,—बताओ, तुम चली तो न जाओगी?"

कुमुदने कहा—"नहीं, जाऊँगी नहीं।"

मधुसूदन नीचे चला गया। मधुसूदन जब क्षुद्र बनता है—कठोर बनता है, तो वह अवस्था कुमुदिनीके लिए इतनी कठिन नहीं होती। परन्तु आज उसकी यह नम्रता—उसका इस प्रकार अपनेको छोटा बनाना,—इस विषयमें कुमुदको क्या करना चाहिए; उसकी कुछ समझमें नहीं आता। हृदयके जिस दानको

लेकर वह आई थी, वह तो स्खलित होकर गिर गया, अब तो उसे धूलसे उठाकर काममें नहीं लगाया जा सकता। फिर वह अपने देवताको पुकारने लगी—"प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।"

इतनेमें, नवीन और मोतीकी माको साथ लेकर मधुसूदन आ पहुँचा, दोनोंको उसने कुमुदिनीके सामने पेश किया। उन्हें सम्बोधन करके कहा—"कल तुम लोगोंको रजबपुर जानेके लिए कहा था, लेकिन अब जानेकी ज़रूरत नहीं। कलसे तुम लोगोंको बड़ी बहूकी सेवामें नियुक्त किया जाता है।"

सुनकर दोनों दंग रह गये। पहले तो उन्हें ऐसे हुक्मकी कोई उम्मीद ही न थी, उसपर सिर्फ इसी बातके लिए इतनी रातमें उन्हें खुद जाकर साथ लिवा लाना! इसमें ऐसी कौनसी ज़रूरी बात थी!

मधसूदनका धैर्य रोके रुकता न था। वह आज ही रातको कुमुदका मन फेरनेके लिए उपाय प्रयोग करनेमें कृपणता या संकोच न कर सका। इस तरह अपने सम्मानकी हानि उसने जीवनमें कभी न की थी। वह जो कुछ चाहता था, उसे पानेके लिए उसने अपनी समझसे सबसे बड़ा दुःसाध्य मूल्य दे दिया। अपनी भाषामें उसने कुमुदको समझा दिया कि तुम्हारे सामने मैं बिना किसी संकोचके हार मानता हूँ।

अब कुमुदके मनमें बड़ा-भारी संकोच आया, वह सोचने लगी—इस चीज़को वह किस तरह अपनावे। इसके बदले वह क्या दे सकती है? जब जीवनमें बाहरसे बाधा आती है, तब लड़नेको जोर मिलता है—तब स्वयं देवता ही सहाय होते हैं। सहसा उस बाहरके विरोधके रुक जानेपर युद्ध रुक जाता है, परन्तु सन्धि नहीं होती। तब निकल पड़ता है अपने भीतरकी प्रतिकूलता। कुमुदिनी एकाएक ऐसा अनुभव करने लगी कि

मधुसूदन जब उद्धत था, तो उसके साथ व्यवहार करना—अप्रिय होनेपर भी—उसके लिए सहज अवश्य था; परन्तु मधुसूदन जब नम्र बनता है, तो उसके साथ व्यवहार करना कुमुदके लिए बड़ा कठिन हो जाता है। फिर तो उसके क्षुब्ध अभिमानकी ओट नहीं रहती, उसका वह फराशखानेका आश्रय उड़ जाता है, फिर देवताके सामने हाथ जोड़नेका कोई अर्थ नहीं होता।

मोतीका माको किसी बहानेसे कुमुद यदि रोक सकती, तो वह बच जाती। परन्तु नवीन चला गया, हतबुद्धि मोतीको मा भी चुपचाप उसके पीछे-पीछे चल दी। दरवाजेके पास पहुँचकर उसने एक बार मुँह तिरछा करके उद्विग्नतासे कुमुदिनीके मुँहकी ओर देखा, फिर चली गई। पतिकी प्रसन्नताके पंजेसे इस युवतीको अब कौन बचावे ?

मधुसूदनने कहा—"बड़ी बहू, कपड़े बदलकर सोओगी नहीं अब ?"

कुमुदिनीने धीरेसे उठकर, बगलके नहानेके घरमें घुसकर भीतरसे दरवाजा बन्द कर लिया—मुक्तिकी मियाद, जितना बन सके, बढ़ा लेना चाहती है। उस घरमें दीवालके पास एक चौकी पड़ी थी, उसीपर बैठी रही। उसकी व्याकुल देह मानो अपने अन्दर अपने लिए ओट ढूँढ़ने लगी। मधुसूदन बीच-बीचमें दीवालकी घड़ीकी ओर देखता और हिसाब लगाता जाता है कि कपड़े बदलनेके लिए कितने समयकी जरूरत है। इसी बीचमें आईनेमें उसने अपना मुँह देखा, सिरके बीचमें जिस जगह कड़े बाल बुरी तरह खड़े रहते हैं, व्यर्थ उसपर कई बार ब्रुश फेरा और कपड़ोंपर बहुतसा लवेंडर उँड़ेल लिया।

पन्द्रह मिनट हो गये; कपड़े बदलनेके लिए इतना वक्त काफ़ी है। मधुसूदन चुपके-से दरवाजेके पास जाकर कान लगाकर खड़ा

हो गया, भीतर हिलने-डुलनेका कोई शब्द न था,—मनमें सोचा, शायद बालोंकी शोभा बढ़ा रही होगी, उसीमें मशगूल है। औरतोंको शृङ्गार बहुत प्रिय होता है, यह बात मधुसूदन भी जानता था, इसलिए उसे सब्र करना पड़ा। आध घंटा हो गया—मधुसूदनने फिर एक बार दरवाज़ेसे कान लगाया, अब भी कोई शब्द नहीं। आकर बेंतकी कुर्सीपर बैठ गया। पलंगके सामने विलायती तसवीर लटक रही थी, बैठा हुआ उसकी ओर देखता रहा। थोड़ी देर बाद एकाएक भड़भड़ाकर उठ खड़ा हुआ, और और बन्द दरवाजेके पास जाकर बोला—"बड़ी बहू, अभी निबटी नहीं?"

थोड़ी ही देरमें धीरेसे दरवाज़ा खुल गया। कुमुदिनी निकल आई, मानो उसपर स्वप्न सवार हो गया है। जो कपड़े पहने थी, वही हैं; यह तो रातकी सोनेकी पोशाक नहीं है। बदनपर पूरी बाँहकी खाकी रंगकी सर्जकी फतूही है, उसपर लाल किनारीका एक दुशाला है, जिसका पल्ला माथे तक खिंचा हुआ है। दरवाज़े-के एक पल्लेपर बाँया हाथ टेककर न जाने किस दुविधामें खड़ी रह गई—एक विचित्र तसवीर-सी! गोल-मटोल गोरे हाथोंमें मगर-मुँहकी घुंडीदार सोनेके चिकने कड़े हैं पुराने ढङ्गके—शायद किसी ज़मानेमें उसकी माके थे। इन मोटे भारी कड़ोंने उसके सुकुमार हाथोंको जो ऐश्वर्यका सम्मान दिया है, वह उसके लिए इतना स्वाभाविक है कि अलंकार उसके शरीरमें ज़रा भी आड-म्बरका सुर नहीं अलापता। मधुसूदनने मानो फिरसे उसे नये रूपमें देखा। उसकी महिमासे फिर वह विस्मित हो गया। मधुसूदनसे इस बातका गुमान किये बिना रहा न गया कि उस चिरार्जित संपूर्ण संपदाने इतने दिनों बाद शोभा पाई है। मधु-सूदनकी ऐसी आदत है कि जिन लोगोंसे उसकी हमेशाकी मेल-मुलाक़ात है, क़रीब-क़रीब उन सबोंसे वह अपनेको धन-गौरवमें

बहुत बड़ा मानता है। आज गैसकी रोशनी में दरवाज़ेके पास जो युवती चुपचाप खड़ी हुई है, उसे देखकर मधुसूदनको ऐसा मालूम होने लगा—मेरे पास काफी धन नहीं है, मालूम होने लगा—यदि मैं राज-चक्रवर्ती सम्राट् होता, तभी वह इस घरमें शोभा पाती। मानो वह प्रत्यक्ष देखने लगा कि इसका स्वभाव जन्मसे ही किसी विशुद्ध वंश-मर्यादाके भीतर पला-पनपा है—अर्थात् मानो यह अपने जन्मके पूर्ववर्ती बहुत दीर्घ समयपर अधिकार किए हुए खड़ी है। वहाँ बाहरसे कोई ऐसा-वैसा आदमी प्रवेश कर ही नहीं सकता—वहींपर अपना स्वाभाविक सत्त्व लिए विराजेंगे विप्रदास,—उन्हें भी कुमुदकी तरह ही एक आत्म-विस्मृत सहज गौरव सर्वदा घेरे हुए है।

मधुसूदनसे यही बात किसी तरह सही नहीं जाती। विप्रदासके अंदर औद्धत्य तनिक भी नहीं है, है सिर्फ एक दूरत्व। अत्यन्त बड़ा आत्मीय या निकट-सम्बन्धी भी एकाएक आकर उसकी पीठ ठोंककर यह कह सके कि "कहो जी, क्या हो रहा है?"—यह बात मानो असम्भव-सी है। उसकी चिढ़ तो सिर्फ इसी बातपर है कि विप्रदासके सामने उसे मन-ही-मन छोटा बन जाना पड़ता है। उस एक ही सूक्ष्म कारणसे कुमुदपर उसका पूरा ज़ोर नहीं चलता—अपनी घर-गिरस्तीमें जहाँ उसे सबसे ज्यादा कर्तृत्व करनेका अधिकार है, मानो वहींसे वह सबसे ज्यादा हट गया है; परन्तु यहाँ उसे गुस्सा नहीं आता—कुमुदके प्रति उसका आकर्षण दुर्निवार वेगसे प्रबल हो उठता है। आज कुमुदको देखकर मधुसूदनने स्पष्ट समझ लिया कि वह तैयार होकर नहीं आई है—किसी अदृश्य ओटके पीछे खड़ी है। किन्तु कैसी सुन्दर है! कैसी दीप्यमान शुचिता है—शुभ्रता है! मानो निर्जन तुषार-शिखरपर निर्मल उषा दिखाई दे रही हो।

मधुसूदनने ज़रा पास आकर धीर-स्वरसे कहा—"सोओगी नहीं बड़ी-बहू ?"

कुमुद आश्चर्यमें आ गई। उसने निश्चित समझा था कि मधुसूदन गुस्सा होगा—उसे अपमानकी बात कहेगा। सहसा एक चिर-परिचित स्वरकी उसे याद उठ आई—उसके बाबूजी स्निग्ध स्वरसे किस तरह उसकी माको बड़ी-बहू कहकर बुलाते थे। साथ-साथ माकी भी याद आ गई—मा उसके बापूजीको पास आनेमें बाधा देकर किस तरह चली गई थी। पल-भरमें उसकी आँखें डबडबा आईं—ज़मीनपर मधुसूदनके पैरोंके पास बैठ गई, बोली—"क्षमा करो मुझे।"

मधुसूदनने जल्दीसे उसे हाथ पकड़कर चौकीपर बिठाकर कहा—"क्या क़सूर किया है तुमने, जो क्षमा करूँ ?"

कुमुदने कहा—"अभी तक मेरा मन तैयार नहीं हुआ है। मुझे ज़रा समय दो।"

मधुसूदनका मन कठोर हो उठा; बोला—"किस लिए समय देना होगा, ज़रा समझा तो दो।"

"ठीक कहते नहीं बनता, किसीको समझाना कठिन है—"

मधुसूदनके कंठमें अब रस न रहा। उसने कहा—"कुछ भी कठिन नहीं है। तुम कहना चाहती हो कि हैं तुम्हें अच्छा नहीं लगता।"

कुमुदके लिए बड़ी मुश्किल हुई। बात सच है भी और नहीं भी। हृदय भरके नैवेद्य चढ़ानेके लिए वह प्रण किये बैठी है, परन्तु नैवेद्य अभी तक आया नहीं है। मन कह रहा है—ज़रा सब्र करनेसे ही मार्गमें बाधा न देनेसे आ जायगा; देर हो, सो भी नहीं। फिर भी यह बात माननी ही पड़ेगी कि थाल अभी रीता है।

कुमुदने कहा—"तुम्हें धोखा देना नहीं चाहती, इसीलिए तो कहती हूँ कि ज़रा समय दो।"

मधुसूदन क्रमशः असहिष्णु होने लगा—कड़ाईके साथ ही बोला—"समय देनेसे फायदा! अपने भाईके साथ सलाह करके फिर पतिके साथ रहनेकी मन्शा है!"

मधुसूदनकी यही धारणा है। उसने सोच रखा है—विप्रदासकी प्रतीक्षामें ही कुमुदका सब-कुछ रुका हुआ है। भइया जैसे चलावेंगे, बहन वैसे ही चलेगी। उसने व्यंग्यमें कहा—"तुम्हारे भइया तुम्हारे गुरु हैं!"

कुमुदिनी चटसे उठ खड़ी हुई, बोली—"हाँ, भइया मेरे गुरु हैं।"

"बिना उनके हुक्मके आज कपड़े न बदलोगी, बिस्तरपर न सोओगी क्यों! ऐसी बात? मुझे क्या मालूम था!"

कुमुदिनी हाथकी मुट्ठी कड़ी करके पत्थरकी तरह खड़ी रही।

"तो तार देकर हुक्म मँगाऊँ;—रात बहुत हो गई है।"

कुमुदने कुछ जवाब न दिया, छतपर जानेके लिए वह दरवाज़ेकी ओर बढ़ी।

मधुसूदनने कड़ककर धमकीके साथ कहा—"जाना मत, कहे देता हूँ।"

कुमुद उसी वक्त घूमकर खड़ी हो गई, बोली—"क्या चाहते हो, कहो भी।"

"अभी तुरत कपड़े बदलकर आओ।" घड़ी निकालकर बोला—"पाँच मिनट समय दिया जाता है।"

कुमुद उसी वक्त बगलके गुस्लखानेमें चली गई और कपड़े उतारकर साड़ीके ऊपर एक मोटी चादर ओढ़ आई। अब वह दूसरे हुक्मकी प्रतीक्षामें आ खड़ी हुई। मधुसूदन देखकर खूब

समझ गया कि यह भी युद्ध-वेश है। गुस्सा बढ़ गया, पर करे क्या, कुछ अक़लमें नहीं आती। प्रबल क्रोधमें भी मधुसूदनकी व्यवस्था-बुद्धि काम देती है; इसीसे वह बढ़ते-बढ़ते झट रुक गया। बोला—"अब तुम करना क्या चाहती हो, मुझसे कहो तो।"

"जो तुम कहोगे, सो करूँगी।"

मधुसूदन हताश होकर बैठ गया चौकीपर। चादर ओढ़े इस युवतीको देखकर मालूम होने लगा—जैसे यह विधवाकी मूर्ति हो,—उसके और उसके पतिके बीचमें मानो एक निस्तब्ध मृत्युका समुद्र पड़ा है। डाँट-फटकारसे यह समुद्र पार नहीं किया जा सकता। पालमें कौन-सी हवा लगानेसे नाव चलती है?—क्या किसी दिन वह चलेगी?

चुपचाप बैठा रहा। घड़ीके टिक-टिक शब्दके सिवा घरमें और कोई शब्द सुनाई नहीं देता। कुमुदिनी कमरेसे बाहर नहीं गई—फिर लौट आई, और बाहर छतके अन्धकारकी ओर टकटकी बाँधे तसवीरकी तरह खड़ी रही। बाहर चौराहेपर नशेमें चूर किसी शराबीके गद्गद कंठके गानेकी आवाज़ सुनाई दे रही है, और पड़ोसीके अस्तबलमें एक पिल्ला बँधा हुआ है, उसका अश्रान्त आर्तनाद रात्रिकी शान्तिमें खलल डाल रहा है।

समय मानो एक अथाह गड्ढेकी तरह शून्य होकर मुँह बाये पड़ा है। मधुसूदनकी घर-गिरस्तीकी मशीनके सारे पहिए ही मानो बन्द हैं। कल आफिसमें उसे बहुत काम है, डाइरेक्टरों-की मीटिंग है,—कई एक कठिन प्रस्ताव, बहुतोंका विरोध होते हुए भी, कौशलसे पास करा लेने हैं। वे तमाम ज़रूरी काम आज उसकी निगाहमें बिलकुल छाया-से प्रतीत हो रहे हैं। पहले वह एक दिन पहले ही से रातको बैठकर कलकी कार्य-प्रणाली अपनी नोट बुकमें लिख लिया करता है। आज उसकी सब चिन्ताएँ दूर

हट गई, संसारमें उसके लिए जो कठिन सत्य सुनिश्चित है, वह है चादरसे ढकी हुई वह युवती, जो कमरेसे निकलनेके रास्तेमें स्तब्ध खड़ी है। थोड़ी देर बाद मधुसूदनने एक गहरी उसास छोड़ी, कमरा मानो ध्यान भंग कर चौंक पड़ा। जल्दीसे चौकी-पर से उठकर कुमुदके पास जाकर बोला—"बड़ी बहू, तुम्हारा हृदय क्या पत्थरसे बना है ?"

यह 'बड़ी बहू' शब्द कुमुदके मनमें मन्त्रकी तरह काम कर जाता है। अपनेमें अपनी मा के जीवनकी अनुवृत्ति सहसा उज्ज्वल हो उठती है। इस सम्बोधनपर उसकी माने कितने ही दिन कितनी ही बार उत्तर दिया था, उसका अभ्यास मानो कुमुदके भी खूनमें है। इसीसे चटसे वह मुँह फेरकर खड़ी हो गई। मधुसूदनने बड़े दुःखके साथ कहा—"मैं तुम्हारे लिये अयोग्य हूँ, लेकिन मुझपर क्या दया न करोगी ?"

कुमुदिनी सिटपिटा-सी गई, बोली—"छिः छिः, ऐसा मत कहो।" ज़मीनपर पड़कर मधुसूदनके पैरोंकी धूल माथे से लगा-कर बोली—"मैं तुम्हारी दासी हूँ, मुझे तुम आदेश दो।"

मधुसूदनने उसका हाथ पकड़कर उसे उठाकर छातीसे लगा लिया, बोला—"नहीं, तुम्हें आदेश न दूँगा, तुम अपनी इच्छासे मेरे पास आओ।"

कुमुदिनी मधुसूदनके बाहु-बन्धनमें हाँफने लगी, किन्तु स्वयं उसने अपनेको छुड़ानेकी चेष्टा न की। मधुसूदनने रुँधे हुए कंठसे कहा—"नहीं, तुम्हें आदेश न दूँगा, फिर भी तुम मेरे पास आओ।" यह कहकर कुमुदिनीको उसने छोड़ दिया।

कुमुदिनीके गोरे मुँहपर सुर्खी आ गई। उसने नीची निगाह करके कहा—"तुम आदेश दो तो मेरा कर्तव्य सरल हो जाय। मुझसे अपने-आप कुछ करते नहीं बनता।"

"अच्छा, तुम अपनी यह चादर उतार दो—यह मुझे सुहाती नहीं।"

संकोचके साथ कुमुदिनीने चादर उतार दी। बदनपर एक डोरियाकी साड़ी रह गई—पतली किनारीकी। उसकी काली धारियाँ कुमुदिनीके शरीरको घेरे हुए हैं, जैसे रेखाओंके झरने हों—रुके हुए-से नहीं जान पड़ते, मानो लगातार झर रहे हों—मानो कोई एक काली दृष्टि अपनी अश्रान्त गतिके चिह्न छोड़-छोड़कर उसके अंगको घेर-घेरकर उसकी प्रदक्षिणा कर रही हो, किसी तरह पूरी नहीं कर पाती। मुग्ध हो गया मधुसूदन, मगर फिर भी उसका ध्यान क्षण-भरके लिए उस साड़ीपर चला गया,—वह यहाँकी दी हुई न थी। कुमुदिनीके बदनपर वह कितनी ही क्यों न खिलती है, पर उसकी क़ीमत कुछ नहीं,—है तो उसके मायकेकी ही। इस नहानेके घरसे सटे हुए कपड़े बदलनेके कमरेमें दराज़ोंवाली होगनीकी जो बड़ी आलमारी है, जिसके आईनेदार पल्ले हैं, वह ब्याहके पहले ही तरह-तरहके क़ीमती कपड़ोंसे ठँसी पड़ी है। उसपर ज़रा भी लोभ नहीं, इस स्त्रीका इतना गर्व! याद उठ आई उन तीन अँगूठियोंकी बात, असह्य उपेक्षासे कुमुदने उन्हें लिया नहीं था, और एक कमबख़्त नीलमकी अँगूठीके लिये कितना आग्रह!

विप्रदास और मधुसूदनके बीच कुमुदकी ममताका कितना मूल्य-भेद है। चादर उतारते ही इन सब बातोंने आँधीके झपट्टेकी तरह मधुसूदनको बड़ा-भारी धक्का दिया। किन्तु हाय! कैसी गज़बकी सुन्दर है! और यह दर्प-भरी अवज्ञा, वह भी तो मानो उसका अलंकार है। यह युवती ही तो कर सकती है अवज्ञा ऐश्वर्यकी। स्वाभाविक सम्पदासे महीयसी होकर उत्पन्न हुई है, उसे धनकी क़ीमत नहीं जोड़नी पड़ती, हिसाब नहीं रखना पड़ता—मधुसूदन उसे किस चीज़का लालच दिखा सकता है।

मधुसूदनने कहा—"चलो, तुम सोने चलो।"

कुमुदिनी पतिके मुँहकी तरफ़ देखती रही—नीरव प्रश्न यह था कि 'पहले तुम पलंगपर न जाओगे?'

मधुसूदनने दृढ़ स्वरसे कहा—"चलो, अब देर मत करो।"

कुमुद जब पलंगपर पहुँच गई, तो मधुसूदन सोफेपर बैठ गया, बोला—"यहीं बैठा हूँ, मुझे बुलाओगी तभी आऊँगा। वर्षों इसी तरह इन्तजार करनेको राज़ी हूँ।"

कुमुदिनीका सारा बदन सिहर उठा—आज यह कैसी परीक्षा है उसकी! किसके दरवाज़ेपर आज वह सिर धुने? देवताने तो उसे आज उत्तर नहीं दिया। जिस मार्गसे वह यहाँ आई है, वह तो बिलकुल ग़लत रास्ता है। बिछौनेपर बैठी हुई मन-ही-मन वह कहने लगी—"भगवान, तुम मुझे कभी भुला नहीं सकते, अब भी तुमपर मैं विश्वास करूँगी। ध्रुवको तुम्हीं वनमें ले गये थे—वनमें उसे दर्शन देनेके लिए।"

कमरेके अन्दर अब सन्नाटा-सा छा गया है, चौराहेपर अब उस शराबीकी आवाज़ नहीं सुनाई देती; सिर्फ क़ैदी पिल्ला, यद्यपि थक गया है, फिर भी बीच-बीचमें आर्तनाद कर उठता है।

थोड़ा समय भी बहुत समय-सा मालूम हुआ, स्तब्धताके भारग्रस्त प्रहरसे मानो हिला-डुला नहीं जाता। यही क्या उसके दाम्पत्यकी अनन्त कालकी तसवीर है। दो तटोंपर दोनों चुपचाप बैठे हुए हैं—रात्रिका अन्त नहीं—बीचमें एक अलंघनीय निस्तब्धता है। अन्तमें, न जाने कब, कुमुदने अपनी सम्पूर्ण शक्तिको इकट्ठा करके, पलँगसे उतरकर कहा—"मुझे अपराधिनी न बनाओ।"

मधुसूदनने गम्भीर स्वरमें कहा—"क्या चाहती हो, बताओ, क्या करना होगा ?" आखिरी लफ़्ज़ तक, बिलकुल निचोड़कर, उसके मुँहसे निकलवा लेना चाहता है।

कुमुदने कहा—"चलो, सोओ।"

परन्तु क्या इसीका नाम जीत है ?

[३८]

दूसरे दिन सवेरे मोतीकी मा जब कुमुदके लिए कटोरेमें दूध लाई, तो उसने देखा कि कुमुदकी आँखें लाल हो रही हैं—सूज गई हैं, चेहरेका रंग फक पड़ गया है। उसने सोचा था कि सवेरे छतपर जिस कोनेमें आसन बिछाकर, कुमुद पूरबकी तरफ, मुँह करके मानसिक पूजा करने बैठती है, वहीं पर वह मिलेगी। परन्तु आज वह वहाँ नहीं थी, ज़ीनेके बगलसे ही जो ज़रासी छई हुई छत है, वहींपर दीवालके सहारे थकी हुई-सी बिना कुछ बिछाये यों ही बैठी है। शायद आज देवतासे गुस्सा हो गई है। निर्दोष लड़केको निष्ठुर बाप जब बिना कारण मारता है, तब जैसे उसकी समझमें कुछ नहीं आता—रूठकर मारको झेलता रहता है, प्रतिवाद करते भी हिचकिचाता है—देवतापर कुमुदका आज वैसा ही भाव है। जिस आह्वानको उसने दैव माना था, वह इस अशुचितामें है ?—इस आन्तरिक असतीत्वमें ? भगवान क्या नारी-बलि चाहते हैं, इसी लिए शिकार को बहका लाये हैं ?—जिस शरीरमें मन नहीं है, उस मांसपिंडकी अपना नैवेद्य बनायेंगे ? आज किसी भी तरह भक्ति नहीं जगी। इतने दिनोंसे कुमुद बार-बार कहती रही है कि मुझे तुम सह्न कर लो—आज उस विद्रोहिनीका मन कह रहा है कि मैं तुम्हें कैसे सह सकती हूँ ? किस मुँहसे तुम्हारी पूजा करूँ ? तुमने अपने

भक्तको स्वयं ग्रहण न करके उसे किस दासीकी हाटमें बेच दिया—जिस हाटमें मांस-मच्छीके भावसे लड़कियाँ बिकती हैं, जहाँ निर्माल्य लेनेके लिए कोई श्रद्धाके साथ पूजाको प्रतीक्षा नहीं करता—फूलोंका उपवन काटकर बकरे को खिला दिया जाता है।

मोतीकी माने जब दूध पीनेके लिए अनुरोध किया, तो कुमुदने कहा—"रहने दो।"

मोतीकी माने कहा—"क्यों, रहने क्यों दूँ? मेरे दूधके कटोरेने क्या बिगाड़ा है?"

कुमुदने कहा—"अभी मैं नहाई नहीं हूँ, पूजा नहीं की है।"

मोतीकी माने कहा—"जाओ तुम, नहाने जाओ, मैं बैठी इन्तज़ार करती रहूँगी, अच्छा।"

कुमुद नहा आई। मोती की माने सोचा कि अब वह खुली छतपर एक कोनेमें जाकर बैठेगी। कुमुदने पल-भरके लिए अभ्यासवश छतकी तरफ़ जानेको पैर बढ़ाये, पर गई नहीं, लौटकर फिर वहीं ज़मीनपर बैठ गई। उसका मन तैयार न था।

मोतीकी मासे कुमुदने पूछा—"भइयाकी चिट्ठी क्या आई नहीं?"

चिट्ठी जरूर आई होगी, यह समझकर ही मोतीकी मां आज खूब सवेरे खुद छिपकर आफिस-रूममें गई थी, लेकिन चिट्ठियोंका दराज़ खींचने पर मालूम हुआ कि उसका ताला बन्द है। इस लिये अबसे 'चोरके घर छिछोर' का रास्ता भी रुकगया।

मोती की माने कहा—"ठीक कह नहीं सकती, तलाश करूँगी।"

इतनेमें सहसा श्यामा आ पहुँची, बोली—"बहू, तुम आज ऐसी उदास क्यों लग रही हो, तबीयत ख़राब तो नहीं है?"

कुमुदने कहा—"नहीं तो।"

"मायकेके लिए जी चाहता होगा। अहा, सो तो चाहेगा ही। हाँ, भइया तो तुम्हारे आ ही रहे हैं, मिल लेना।"

कुमुदिनी चौंक उठी, उसने श्यामाके मुँहकी ओर उत्सुक दृष्टिसे देखा।

मोतीकी माने पूछा—"तुम्हें इसको कहाँसे खबर लग गई, *बकुल-फूल ?"

"लो, सुन लो! यह तो सभीको मालूम है। अपने रसोई-घरकी पार्वतीने ही तो कहा था, बहू-रानीके मायकेसे गुमाश्ता आया था, राजा बहादुरके पास—बहूकी खबर-सुध लेने। उसीसे उसने सुना है कि इलाजके लिए बहूके भइया आज-ही-कलमें कलकत्ते आनेवाले हैं।"

कुमुदिनीने उद्विग्न होकर पूछा—"उनकी बीमारी क्या बढ़ गई है ?"

"सो तो नहीं कह सकती, लेकिन हाँ, चिन्ताकी कोई बात नहीं है, होती तो सुनती ज़रूर।"

श्यामाने समझा था कि उसके भइयाकी खबर मधुसूदनने उसे दी न होगी; क्योंकि जिस बहूका अभी तक मिजाज ही नहीं मिला, कहीं ऐसा न हो कि इस बातको सुनकर वह मायकेकी धुनमें और भी अनमनी न हो जाय। कुमुदिनीके मनको उसका-कर वह बोली—तुम्हारे भइया सरीखे आदमी मिलना मुश्किल है, सभी यही बात कहते हैं। बकुल-फूल, चलो, देर हो रही है, कोठारसे सामान निकालना होगा। आफिसके लिए रसोई बनानी है, देर हो गई तो आफ़त आ जायगी।"

मोतीकी माने दूधका कटोरा फिर एक बार कुमुदके आगे बढ़ाकर कहा—"जीजी, दूध ठंढा हुआ जा रहा है, पी डालो मेरी रानी जीजी!"

---

* बंगाल में स्त्रियाँ, खासकर किशोरी और युवतियाँ, परस्पर इस तरह के प्यार के नाम रख लिया करती हैं; जैसे 'गंगाजल', 'बकुल फूल' इत्यादि। 'आँखकी किरकिरी' भी इसी श्रेणीका एक नाम है। —अनुवादक

अबकी बार कुमुदने दूध पीनेमें आपत्ति नहीं की।

मोतीकी माने कानमें पूछा—"कोठारको चलोगी आज ?"

कुमुदने कहा—"आज रहने दो,—गोपालको एक बार मेरे पास भेज दो।"

एक काला कठोर भूखा बुढ़ापा बाहरसे कुमुदको निगल रहा है—राहुकी तरह। जो प्रौढ़ अवस्था शान्त, स्निग्ध, शुभ्र, सुगम्भीर होती है, यह तो वह नहीं है; जो लालायित है, जिसके सयमकी शक्ति शिथिल है, जिसका प्रेम ही विषयासक्तिकी जातिका है, उसीके स्वेदाक्त स्पर्शसे कुमुदको इतनी अरुचि है। पतिकी उमर ज्यादा है, इसका कुमुदको कोई दुःख नहीं; किन्तु उसे तो इस बात का खेद है कि उस उमरने अपनी मर्यादा क्यों भुला दी ! सम्पूर्ण आत्म-निवेदन एक फलके समान है, प्रकाश और हवामें—मुक्त अवस्थामें—वह पकता है, कच्चे फलको चक्कीमें पीसनेसे ही तो वह पकता नहीं। समय न मिलने के कारण ही आज उसका सम्बन्ध कुमुदको इस तरह सता रहा है—इतना अपमान कर रहा है। कहाँ भागे ! मोतीकी मासे जो अभी कहा कि गोपालको बुला दो, सो भागनेका रास्ता ढूँढ़ना ही तो है—वृद्ध अशुचिताके पाससे भागकर नवीन निर्मलताके पास जानेका—दूषित निश्वासकी भापसे निकलकर कुसुम-कानन-की पवनमें जानेका। पतली छींटका एक रुईदार कोट पहने हाबलू जीनेके दरवाजेके पास आकर डरता-डरता खड़ा हो गया। माके समान ही उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखें हैं, वैसा ही पानी-भरे बादलका-सा सरस साँवला रंग है, गाल दोनों फूले-फूलेसे और सिरके बाल बारीक़ छँटे हुए।

कुमुद जाकर संकुचित हाबलूको पकड़ लाई, और उसे छातीसे लगा लिया, बोली—"पाजी लड़के, दो दिनसे तुम आये क्यों नहीं ?

हाबलूने कुमुदके गलेमें बाँह डालकर कानमें कहा—"ताईजी, तुम्हारे लिए मैं क्या लाया हूँ—बताओ तो ?"

कुमुदने उसके गालकी मिट्टी लेकर कहा—"मानिक लाये हो, गोपाल।"

"मेरी जेबमें है।"

"अच्छा, निकालो तो।"

"तुम बता नहीं सकीं।"

"मेरे बुद्धि नहीं है,—जो आँखोंसे देखती हूँ, उसे भी नहीं समझ पाती, जो दिखाई नहीं देता, उसे तो और भी उलटा समझ जाती हूँ।"

तब हाबलूने बड़ी सावधानीसे आहिस्ता-आहिस्ता जेबमेंसे ब्राउन कागजका एक ठोंगा निकाला, और उसे कुमुदकी गोदमें रखकर भाग जानेकी कोशिश करने लगा।

"नहीं, तुम भाग नहीं सकते।"

ठोंगेको दोनों हाथोंसे दबाकर हाबलूने चंचलता-पूर्वक कहा—"तो अभी मत देखो।"

"नहीं, तुम डरो मत, तुम चले जाओगे तभी खोलूँगी।"

"अच्छा ताईजी, तुमने जटाई-बूढ़ीको देखा है ?"

"क्या मालूम, देखा होगा—खबर नहीं, पर पहचाननेमें देर लगेगी।"

"नीचे आँगनके पास जो कोयलेकी कोठरी है न, उसीमें वो आती है—शामको चमगादड़पर बैठकर।"

"चमगादड़पर !"

"अपने मनकी खुशीसे वो ख़ूब छोटी हो सकती है, जो किसीको दीखे ही नहीं।"

"तब तो उससे वो मन्तिर सीख लेना होगा।"

"क्यों ताईजी ?"

"मैं अगर भाग जानेके लिए कोयलेकी कोठरीमें घुसूं, ता भी मैं दिखाई दूँगी।"

हाबलू इस बातके कोई माने नहीं समझ सका। बोला—"कोयलोंके अन्दर उसने ईंगुरकी डिबिया दुबका रखो है। वो ईंगुर कहाँसे लाई है, जानती हो ?"

"शायद जानती हूँ।"

"अच्छा, बताओ।"

"सवेरेके बादलोंमेंसे।"

हाबलू ठक रह गया। इस बातने उसे फ़िकरमें डाल दिया। विशेष संवाददाताने उससे समुन्दर-पारकी दैत्यपुरीकी बात कही थी। परन्तु ताईकी बात उसे विश्वास-योग्य मालूम पड़ी, इसीसे विरोधमें कोई तर्क न उठाकर वह बोला—"जो लड़की उस डिबियाको ढूँढ़कर उसका ईंगुर माथेसे लगावेगी, वो राजरानी हो जायगी।"

"परलय हो गई! किसी अभागिनको ख़बर तो नहीं लग गई?"

"छोटी बुआकी लली खुदी जानती है। डलिया लेकर छन्नू जब सवेरे कोयला निकालने जाता है, तो खुदी रोज़ उसके साथ जाती है—उसे कुछ भी डर नहीं लगता।"

"अभी छोटी है न, इसीसे वह राजरानी बननेमें भी नहीं डरती।"

बाहर ठंढी-ठंढी उत्तरकी हवा चल रही थी, इससे मोतीको लेकर कुमुद भीतर चली गई, वहाँ सोफेपर बैठकर उसे गोदमें बिठा लिया। बग़लकी तिपाईपर छोटीसी चाँदीकी थालीमें रखे हुए थे शीतऋतुके फूल—गैंदा, गुलाब, कुन्द, जवा। और

दिनोंकी तरह ये फूल भी मालीके चुने हुए हैं। थालीमें पड़े-पड़े वे इस बातकी बाट जोह रहे हैं कि कब उन्हें कुमुद छतके कोनेमें बैठकर देवताको चढ़ावे। आज उसने अपने उन अनिवेदित फूलोंको थाली-सहित हाबलूके सामने रख दिया; बोली—"लोगे फूल ?"

"हाँ, लूँगा।"

"क्या करोगे, बताओ तो ?"

"पूजा-पूजा खेलेंगे।"

कुमुदके कमरेमें एक रेशमी रूमाल खुरसा।हुआ था, उसमें फूल बाँधकर, बच्चेका चूमा लेकर, कुमुदने कहा—"ये लो।" मन-हा-मन बोली—'चलो, मेरा भी पूजा-पूजा खेल हो गया।' बच्चेसे बोली—"गोपाल, इनमेंसे कौनसा फूल तुम्हें सबसे ज्यादा अच्छा लगता है—बताओ तो ?"

हाबलूने कहा—"जवा-फूल।"

"क्यों जवा अच्छा लगता है, बताऊँ ?

"अच्छा, बताओ।"

"यह सवेरा होनेसे पहले ही जटाई-बूढ़ीकी ईंगुरकी डिबियामें से रंग चुरा लाता है।"

हाबलू कुछ देर तक गम्भीर होकर बैठा सोचता रहा। एकाएक बोल उठा—"ताईजी, जवा-फूलका रंग ठीक तुम्हारी साड़ीकी इस लाल पाड़के समान है।" बस, इतने हीमें वह अपने मनकी सब बात कह चुका।

इतनेमें सहसा पीछे फिरकर देखा तो मधुसूदन। पैरोंकी आहट तक न सुनाई दी थी, और उसका अन्तःपुरमें आनेका यह समय भी नहीं है। इस समय बाहरके आफिस-रूममें व्यापार-सम्बन्धी कार्यके लिए दुनिया-भरके उच्छिष्ट-परिशिष्ट आकर

इकट्ठे होते हैं—इस समय दलाल आते हैं, उम्मेदवार आते हैं, अनेक फुटकर खबरें और कागज़ात लिए हुए सेक्रेटरी आता है। असली कामकी अपेक्षा इन सब ऊपरी कामोंकी भीड़ कम नहीं होती।

[३६]

जिस भिखारीकी झोलीमें सिर्फ़ भूसी-ही-भूसी जम गई है—अनाज नहीं जुटा, उसका-सा मन लिये आज सवेरे मधुसूदन बहुत ही रूखे-भावसे बाहर चला गया था। परन्तु अतृप्तिका आकर्षण बड़ा प्रचंड होता है। बाधापर बाधा चली ही आती है।

मधुसूदनको देखते ही हाबलूका चेहरा सूख गया, हृदय काँप उठा, भागनेको तैयार हो गया। कुमुदने उसे ज़ोरसे दाब लिया, उठने न दिया।

मधुसूदन यह ताड़ गया। हाबलूको ज़ोरसे धमकाकर कहा—"यहाँ क्या कर रहा है? पढ़ने नहीं जायगा?"

पंडितजीके आनेका समय नहीं हुआ, यह बात कहनेकी हाबलूमें हिम्मत न थी—धमकीको उसने चुपचाप सह लिया और धीरेसे उठकर चल दिया।

कुमुद उसे रोकनेके लिए तैयार हुई, पर तुरत ही रुक गई। बोली—"अपने फूल तो तुम छोड़ ही चले, लोगे नहीं?" यह कहकर रूमालमें बँधी हुई पोटली उसके सामने बढ़ा दी। हाबलूने उसे लिया नहीं—डरता हुआ वह अपने ताऊजीके मुँहकी ओर ताकता रहा।

मधुसूदन ने चटसे कुमुदके हाथसे पोटली छीन ली, बोला—"यह रूमाल किसका है?"

पल-भरमें कुमुदका चेहरा लाल हो उठा, बोली—"मेरा।"

इसमें सन्देह नहीं कि रूमाल पूर्ण रूपसे उसीका है—अर्थात् उसके विवाहके पहलेकी सम्पत्ति है, उसपर जो रेशमकी कामदार पाड़ है, वह भी कुमुदकी अपनी रचना है।

मधुसूदनने फूल निकालकर जमीनपर डाल दिये और रूमाल अपनी जेबमें रख लिया, बोला—"इसे मैं ही लिये लेता हूँ—बच्चा है, इसे लेकर क्या करेगा?" हाबलूसे बोला—"जा तू!"

मधुसूदनकी इस रुखाईसे कुमुदिनी एकदम दंग रह गई। हाबलू अपना व्यथित मुँह लिये चला गया। कुमुदने कुछ भी न कहा।

उसके चेहरेका भाव देखकर मधुसूदनने कहा—"दूसरोंके लिए तो तुम दानशाला खोले बैठी हो, और मेरे लिए ठेंगा? यह रूमाल अब मेरा हो गया, याद रहेगी कि कुछ मिला था तुमसे।"

मधुसूदन जो बात चाहता है, उसे ठीक ढंगसे प्राप्त करनेके विरुद्ध उसके स्वभावमें ही बाधा है।

कुमुदिनी आँखें नीची किये सोफेपर एक किनारेसे चुपचाप बैठी रही। साड़ीकी लाल किनारी उसके माथेको घेरकर चेहरेको वेष्टन करती हुई नीचे उतर आई है, उसके साथ-साथ उतर आये हैं उसके बिखरे हुए भीगे बाल। गलेकी गोल-मटोल कोमलताको घेरे हुए है एक सोनेका हार। यह हार उसकी माका है, इसीसे हमेशा पहने रहती है। अभी तक उसने फतूही न पहनी थी, भीतर सिर्फ एक समीज है, बाँहें दोनों खुली हुई हैं, हाथपर हाथ धरे बैठी है। अत्यन्त सुकुमार शुभ्र हाथ हैं, सम्पूर्ण देहकी वाणी मानो वहीं आकर उद्वेलित हो रही है। मधुसूदन आँखें नीची करके अभिमानिनीकी तरफ निगाह गड़ा-गड़ाकर देखने लगा,

सोनेके मोटे कड़े पहने हुए उन हाथोंपरसे उसकी निगाह हटना ही नहीं चाहती। सोफेपर उसके पास बैठकर उसका एक हाथ खींच लेनेकी कोशिश की—मालूम हुआ कि कोई विशेष बाधा है। कुमुदिनी हाथ हटाना नहीं चाहती—उसके हाथके नीचे एक काग़ज़ का ठोंगा दबा हुआ है।

मधुसूदनने पूछा—"इस काग़ज़में क्या है ?"

"मालूम नहीं।"

"मालूम नहीं, इसके माने ?"

"इसके माने मुझे मालूम नहीं।"

मधुसूदनको इस बातपर विश्वास न हुआ, बोला—"मुझे दो, मैं देखूँगा।"

कुमुदने कहा—"यह मेरी गुप्त चीज़ है, दिखा नहीं सकती।"

तीरकी तरह एक तीक्ष्ण क्रोध क्षण-भरमें मधुसूदनके सिरमें प्रवेश कर गया। बोला—"क्या कहा ! इतनी हिमाक़त !" कहते हुए ज़बरदस्ती कुमुदके हाथसे ठोंगा छीनकर उसे खोल डाला,—देखा तो उसमें कुछ नहीं, थोड़ेसे इलायचीदाने पड़े हैं। माताके सस्ते इन्तज़ाममें हाबलूके लिए जो कलेवा बँधा हुआ है, उसमें शायद यही चीज़ हाबलूके लिए सबसे ज़्यादा लोभकी है—इसीसे वह इसे बड़ी हिफ़ाज़तके साथ ठोंगेमें बन्द करके लाया था।

मधुसूदन दंग रह गया ! माजरा क्या है ! सोचने लगा—मायकेमें इस तरहके जलपान करनेकी आदत होगी, इसीसे छिपाकर मँगा लिये हैं, शर्मके मारे प्रकट नहीं करना चाहती। मन-ही-मन हँसने लगा ; सोचने लगा—लक्ष्मीका दान ग्रहण करना सहज नहीं, उसके लिए समय लगता है। चटसे एक 'प्लैन' दिमाग़में आ गया। जल्दीसे उठकर बाहर चला गया।

कुमुदिनीने दराज़ खोलकर उसमेंसे अपना एक छोटासा चन्दनकी लकड़ीका बकस निकाला, उसमें इलायचीदाने रख

दिये, और अपने भइयाको चिट्ठी लिखने बैठ गई। दो ही चार लाइन लिख पाई कि मधुसूदन आ पहुँचा। झटपट चिट्ठीको दबाकर कुमुदिनी ज़रा कठोर होकर बैठ गई। मधुसूदनके हाथमें एक क़ीमती फलदानी थी—मूठपर मीनाकारीका काम हो रहा था—और उसपर एक फलदार सुगंधित रेशमी रूमाल ढका हुआ था। हँसते हुए उसने वह कुमुदके सामने डेक्सपर रख दी। बोला—"खोलकर देखो तो सही!"

कुमुदिनीने रूमाल उठाकर देखा कि उस क़ीमती फलदानीमें ऊपर तक भरे हुए इलायचीदाने हैं। अगर अकेली होती, तो हँसने लगती। कुछ बोली नहीं, गम्भीर होकर चुपचाप बैठी रही। इससे तो हँस देना अच्छा था।

मधुसूदनने कहा—"इलायचीदाने छिपाकर खानेकी क्या ज़रूरत? इसमें शर्म किस बातकी! रोज मँगा दिया करूँगा—कितने चाहिए? मुझसे पहले कहा क्यों नहीं था?"

कुमुदने कहा—"तुम नहीं मँगवा सकते!"

"नहीं मँगवा सकता! तुम्हारी बात सुनकर मैं तो दंग रह गया!"

"नहीं, तुम नहीं मँगवा सकते!"

"बहुत ज्यादा क़ीमत है क्या इनकी?"

"हाँ, रुपयोंसे ये नहीं मिलते!"

सुनकर मधुसूदनके दिमाग़में चटसे एक सन्देह जाग उठा, बोला—"तुम्हारे भइयाने पार्सलसे भेजे होंगे, क्यों?"

इस प्रश्नके उत्तर देनेकी इच्छा न हुई। फलदानीको सामनेसे हटाकर चले जानेके लिए उठ खड़ी हुई। मधुसूदनने हाथ पकड़कर फिर उसे ज़बरदस्ती बिठा लिया।

मधुसूदनके कोई बात कहनेसे पहले ही कुमुदिनी पूछ बैठी—

"भइयाके यहाँसे तुम्हारे पास कोई आदमी आया था—उनकी खबर लेकर ?"

यह बात कुमुदको पहले ही से मालूम पड़ गई जानकर उसका मन बहुत झुँझला उठा। बोला—"वही खबर सुनानेके लिए तो आज मैं सवेरे तुम्हारे पास आया हूँ।" कहना फिजूल है कि यह बात बिलकुल झूठ है।

"भइया कब आयेंगे ?"

"एक हफ्तेके भीतर।"

मधुसूदन निश्चित जानता था कि कल ही विप्रदास आ जायेंगे, "एक हफ्तेके भीतर" कहकर उसने समाचारको अनिर्दिष्ट करके छोड़ दिया।

"भइयाकी तबीयत क्या और खराब हो गई है ?"

"नहीं तो, ऐसी तो कोई बात नहीं सुनी।"

इसमें ज़रा किनारा-कसीका भाव था। विप्रदास इलाजके लिए ही कलकत्ते आ रहे हैं—इसके मानी ही यह होते हैं कि उनकी तबीयत ठीक नहीं है।

"भइयाकी क्या चिट्ठी आई है ?"

"चिट्ठी बक्स तो अभी खोला नहीं है, अगर होगी तो तुम्हारे पास भेज दूँगा।"

कुमुदिनीने अभी तक मधुसूदनकी बातपर अविश्वास करना प्रारम्भ नहीं किया, इसलिए यह बात भी उसने मान ली।

"भइयाकी चिट्ठी आई है या नहीं, एक बार ज़रा देखोगे ?"

"अगर आई होगी, तो भोजन करनेके बाद दोपहरको मैं खुद ही लेकर आऊँगा।"

कुमुदिनी अधैर्यको दबाकर चुपचाप इस बातपर राज़ी हो गई। तब फिर एक बार मधुसूदनने कुमुदका हाथ अपनी ओर

खींचना चाहा, इतनेमें सहसा श्यामा कमरेके अन्दर चली आई, और घुसतेके साथ ही बोल उठी—"अरे ! यहाँ तो लालाजी हैं ?" कहकर तुरत ही उलटे पाँव लौटने लगी।

मधुसूदनने कहा—"क्यों, क्या कुछ काम है तुम्हें ?"

"बहूको कोठारके लिए बुलाने आई थी। राजरानी होनेपर भी घरकी तो लक्ष्मी ही है।—तो आज रहने दो।"

मधुसूदन सोफेपरसे उठकर बिना कुछ कहे-सुने जल्दीसे बाहर चला गया।

खाने-पीनेके बाद नियमानुसार ऊपरके कमरेमें जाकर पलंग-पर तकियेके सहारे पड़कर पान चबाते हुए मधुसूदनने कुमुदिनीको बुलवा भेजा। कुमुदिनी जल्दीसे चली आई। आज भइयाकी चिट्ठी मिलेगी। भीतर जाकर पलंगके पास खड़ी रही।

मधुसूदनने हुक्केकी सटकको रखकर बगलसे बैठनेका इशारा करके कहा—"बैठ जाओ।"

कुमुद बैठ गई। मधुसूदनने उसे जो चिट्ठी दी, उसमें सिर्फ इतना ही लिखा था:—

"प्राणप्रतिमासु
शुभाशीर्वादराशय: सन्तु

चिकित्साके लिए मैं शीघ्र ही कलकत्ते आ रहा हूँ। तबियत ठीक होनेपर तुमसे मिलने आऊँगा। घरके काम-धन्धेसे अवकाश निकालकर कभी-कभी कुशल-समाचार देती रहना, जिससे मैं बेफिक्र रह सकूँ।"

इस छोटीसी चिट्ठीके पाते ही कुमुदको पहले एक धक्का-सा लगा। मन-ही-मन बोली—'अब मैं पराई हो गई हूँ।' अभिमान प्रबल होते-न-होते मनमें आया—भइयाकी शायद तबियत ठीक

नहीं, मेरा कैसा ओछा मन है! अपनी ही बात सबसे पहले सोचने लगता है!'

मधुसूदन समझ गया कि कुमुदिनी उठना ही चाहती है, बोला—"कहाँ जा रही हो ज़रा बैठो।"

कुमुदको तो बैठने कह दिया, लेकिन क्या बात करे, कुछ दिमाग़में ही नहीं आती। और जल्दी ही कुछ कहना चाहिए, इसलिए सवेरेसे जो बात उसके मनमें खटक रही थी, वही मुँहसे निकल गई। बोला—"अच्छा, उस इलायचीदाने वाली बातपर तुमने इतना झंझट क्यों किया था? उसमें शरमानेकी कौनसी बात थी।"

"वह मेरी गुप्त बात है।"

"गुप्त बात! मुझसे भी नहीं कही जा सकती?"

"नहीं।"

मधुसूदनकी आवाज़ कड़ी हो गई, बोला—"यह तुम्हारी नूरनगरी चाल है, भइयाके स्कूलमें सीखी हुई।"

कुमुदने कोई उत्तर न दिया। मधुसूदन तकिया पटककर उठकर बैठ गया—"यह चाल तुम्हारी अगर न छुड़ा दूँ, तो मेरा नाम मधुसूदन नहीं।"

"क्या तुम्हारा हुक्म है, बताओ।"

"वह ठोंगा तुम्हें किसने दिया था, बताओ।"

"हाबलूने।"

"हाबलूने! लेकिन इसके लिए इतना दुबका-चोरी क्यों?"

"ठीक नहीं कह सकती।"

"किसी औरने उसके हाथसे भिजवाया था?"

"नहीं।"

"तो?"

"बस, यही बात थी; और कुछ नहीं।"

"तो इतनी दुबका-चोरी क्यों?"

"तुम समझोगे नहीं।"

कुमुदका हाथ दबाकर, झकझोरकर मधुसूदनने कहा—"अब तो सही नहीं जातीं तुम्हारी ज्यादतियाँ।"

कुमुदके चेहरेपर सुर्खी आ गई। शान्त स्वरसे बोली—"क्या चाहते हो तुम, समझाकर कहो तो सही। तुम लोगोंकी चालसे मैं वाक़िफ़ नहीं हूँ, यह बात मैं मानती हूँ।"

मधुसूदनके माथेकी नसें दोनों फूल उठीं। कुछ जवाब देते न बना, तो इच्छा हुई कि कुमुदको पीट डाले। इतनेमें बाहरसे खकारनेकी आवाज़ सुनाई दी, साथ ही सुन पड़ा—"आफिसका साहब आकर बैठा है।" याद आई कि आज डाइरेक्टरोंकी मीटिंग है। लज्जित हुआ कि वह उसके लिए अभी तक तैयार नहीं हुआ—सवेरेका वक्त तो लगभग बिलकुल व्यर्थ ही चला गया। इतनी बड़ी शिथिलता उसके स्वभाव और अभ्यासके लिए इतनी विरुद्ध है कि यह असम्भव बात हुई कैसे!

[४०]

मधुसूदनके जाते ही कुमुदिनी पलंगसे उतरकर ज़मीनपर बैठ गई। जीवन-भर क्या उसे ऐसे ही समुद्रमें तैरना पड़ेगा, जिसका कहीं पारावार नहीं? मधुसूदनने ठीक ही कहा है, उन लोगोंके साथ उसके चलनका मेल नहीं है। और-सब अन्तरोंकी अपेक्षा यही सबसे दुःसह है। क्या उपाय है इसका?

सहसा न-जाने क्या मनमें आई, कुमुद उठकर नीचेको चल दी—मोतीकी माके कमरेकी तरफ़। ज़ीनेसे उतरते समय देखा कि श्यामासुन्दरी ऊपर आ रही है।

"क्यों बहू, कहाँ चली ? मैं तो तुम्हारे ही पास जा रही थी।"

"कोई काम है क्या ?"

"नहीं, ऐसा विशेष कोई काम नहीं। देखा कि देवरजीका मिज़ाज कुछ गरम है, सोचा, चलो ज़रा पूछ आऊँ बहुसे—नये प्रणयमें खटका कहाँ आकर लगा। याद रखना बहू, उनके साथ किस तरह निभाकर चलना चाहिए, इस बातकी सलाह मैं ही दे सकती हूँ। बकुल-फूलके पास जा रही हो क्या ? हाँ, सो चली जाओ, मनको खुलासा कर आओ।"

आज एकाएक कुमुदको मालूम हुआ कि श्यामासुन्दरी और मधुसूदन दोनों एक ही मट्टीसे बनाये गये हैं—एक ही कुम्हारके चाकमें। क्यों यह यह बात दिमागमें आई, यह बतलाना कठिन है। चरित्र-विश्लेपण करके कुछ समझा हो, सो नहीं; आकार-प्रकारमें विशेप कोई मेल हो, सो भी नहीं; फिर भी दोनोंके रंग-ढंगमें एक अनुप्रास है, मानो श्यामासुन्दरीकी दुनियामें और मधुसूदन की दुनियामें एक ही हवा चलती है। श्यामासुन्दरी जब मित्रता करने आती है, तो उसका वह व्यवहार कुमुदको उल्टी दिशामें ढकेल देता है, जी न-जाने कैसा होने लगता है।

मोतीकी माके सोनेके कमरेमें घुसते ही कुमुदने देखा कि नवीन और वह दोनों मिलकर किसी चीज़के लिए छीना-झपटी कर रहे हैं। लौटना ही चाहती थी कि इतनेमें नवीन कह उठा—"भाभी, जाना नहीं। तुम्हारे ही पास मैं जा रहा था—एक फरियाद है।"

"कैसी फरियाद ?"

"ज़रा बैठो तो अपने दुःखकी बात कहूँ।"

कुमुद तख्तपोशपर बैठ गई।

नवीनने कहा—"बड़ा अत्याचार है! इस भद्र-महिलाने मेरी किताब ढुंबका रखी है।"

"ऐसी सख्ती क्यों ?" कुमुदने कहा।

"डाह है,—क्योंकि खुद तो अंग्रेजी जानती नहीं। मैं स्त्री-शिक्षाका हिमायती हूँ, लेकिन आप स्वामि-जातिके एजुकेशनकी विरोधिनी हैं। मेरी बुद्धिकी ज्यों-ज्यों उन्नति हो रही है, त्यों-त्यों उनकी बुद्धिके साथ मेल न बैठनेसे उन्हें मुझपर डाह होता जाता है। बहुत समझाया कि इतनी बड़ी सीता, वे भी रामचन्द्रके पीछे ही पीछे चलती थीं, विद्या-बुद्धिमें मैं तुमसे आगे बढ़कर चल रहा हूँ, इसमें तुम बाधा मत दो।"

"तुम्हारी विद्याकी बता तो माता सरस्वती ही जानती होंगी, लेकिन बुद्धिकी बड़ाई मत करना मेरे सामने, कहे देती हूँ।"

नवीनने ऐसा मुँह बना लिया, जैसे उसपर कोई बड़ी-भारी आपत्ति आ पड़ी हो, जिसे देखकर कुमुद खिलखिलाकर हँस उठी। इस घरमें आनेके बाद वह आज पहली ही बार जी खोल-कर हँसी है। यह हँसी नवीनको बड़ी मीठी लगी। उसने मन ही-मन कहा—"यही मेरा काम है, मैं बऊ-रानीको हँसाया करूँगा।"

कुमुदने हँसते-हँसते पूछा—"क्यों बहन, तुमने लालाजीकी किताब दुबका रखी है ?"

"अच्छा, देखो जीजी, सोनेके कमरेमें क्या उनकी पाठशालाके गुरुजी बैठे हैं ? दिन-भर काम-धन्धा करके रातको घरमें आकर देखूँ, तो—एक तो दिया जलता ही है—उसपर आपने एक शमादान और जला दिया है; महा-पंडित बैठे-बैठे पढ़ रहे हैं। भोजन ठंडा हुआ जा रहा है, ताकीदपर ताकीदकी जा रही है, वहाँ कुछ होश ही नहीं।"

"सच्ची बात है, लालाजी ?" कुमुदने कहा।

"बऊ-रानी, भोजनसे प्रेम न हो, इतना बड़ा तपस्वी तो मैं नहीं हूं, लेकिन उससे भी बढ़कर मुझे प्यारी लगती है उनके मुँहसे

मीठी ताकीद, इसीलिए जान-बूझकर खानेमें देर हो जाया करती है, किताब पढ़नेका तो एक बहाना-मात्र है।"

"इनके साथ बातोंमें तो मैं हार मानती हूं।"

"और मैं हार मानता हूं तब, जब कि ये बोलना बन्द कर देती हैं।"

"ऐसा भी हो जाता है क्या कभी-कभी?" कुमुदने कहा।

"तो फिर दो-एक ताजे दृष्टान्त दे ही डालूँ, क्यों? मेरे हृदयपर आँसुओंकी उजली स्याहीसे साफ हरूफोंमें लिखे हुए हैं।"

"अच्छा, अच्छा, तुम्हें अब दृष्टान्त देनेकी जरूरत नहीं। मेरा तालियोंका गुच्छा कहाँ है, बताओ।—देखो तो जीजी, मेरी तालियाँ दुबका रखी हैं।"

"घरके आदमियोंपर तो पुलिस-केस नहीं चल सकता, इसीसे चोरको चोरीके जरिये ही सजा देनी पड़ती है।—पहले मेरी किताब दे दो।"

"तुम्हें नहीं दूंगी, जीजीको दूंगी।"

कोनेमें एक टोकनी पड़ी थी—जिसमें रेशमी और ऊनी कपड़ेकी कतरन, फटे मोजे वगैरह जमा हो रहे थे—उसके नीचेसे एक अंग्रेजीकी संक्षिप्त इन्साइक्लोपीडियाका दूसरा खंड निकालकर मोतीकी माने कुमुदकी गोदमें रख दिया, और बोली—"इसे तुम अपने यहाँ ले जाओ, जीजी, उन्हें मत देना, देखूँ तुम्हारे साथ ये कैसे झगड़ते हैं।"

नवीनने मशहरीपरसे तालियोंका गुच्छा उठाकर कुमुदके हाथमें दिया, और कहा—"और किसीको मत देना, भाभी, देखूँ और कोई तुम्हारे साथ कैसा सलूक करती हैं।"

कुमुदने किताबके पन्ने उलटते हुए कहा—"लालाजीको इसी किताबका शौक है क्या?"

"ऐसी किताब ही नहीं, जिसका उन्हें शौक न हो। उस दिन देखूँ तो, कहींसे एक 'गो-पालन' उठा लाये हैं, उसे ही पढ़ने बैठ गये हैं।"

"मैं अपने शरीर-रक्षार्थ तो उसे पढ़ नहीं रहा था, फिर उसमें लज्जा किस बातकी।"

"जीजी, तुम मुझसे कुछ कहना चाहती थीं न। कहो तो बातूनी आदमीको यहाँसे बिदा कर दिया जाय।"

"नहीं, इसकी कोई ज़रूरत नहीं। मैंने सुना है, भइया दो-ही-एक दिनमें आनेवाले हैं।" कुमुदने कहा।

"हाँ, कल ही आयेंगे।" नवीनने कहा।

"कल ही!"—विस्मित होकर कुमुद कुछ देर चुपचाप बैठी रही। गहरी साँस लेकर बोली—"कैसे उनसे भेंट होगी?"

मोतीकी माने पूछा—"तुमने जेठजीसे कुछ कहा नहीं?"

कुमुदने सिर हिलाकर जताया कि नहीं।

नवीनने कहा—"एक दफे कहोगी तो सही?"

कुमुद चुप बनी रही। मधुसूदनके आगे भइयाका ज़िक्र करना कठिन काम है। इस घरमें उसके भइयाके लिए तो अपमान तैयार खड़ा है, उसे ज़रा भी उकसानेमें कुमुदको असह्य संकोच होता है।

कुमुदके चेहरेका भाव देखकर नवीनका मन व्यथित हो उठा। बोला—"चिंता मत करो भाभी, हम सब ठीक कर लेंगे, तुम्हें कुछ कहना-सुनना न होगा।"

भाई साहबके सामने नवीन छुटपनसे ही डरता आया है। भाभीने आकर आज उसके मनसे वह डर निकाल दिया मालूम होता है!

कुमुदिनीके चले जानेपर मोतीकी माने अपने पतिसे कहा—"अब क्या उपाय करोगे, बताओ? मैं तो तभी समझ गई थी,

उस दिन रातको जब तुम्हारे भाई साहबने हम दोनोंको लिवा ले जाकर बहूके सामने अपनेको छोटा बनाया था कि यह अच्छा नहीं हुआ। उसके बादसे वे तुम्हें देखते ही मुँह फेरकर चले जाते हैं।"

"भाई साहबने समझा है कि वे ठगाये गये; जोशमें आकर पहलेसे थैली रीती करके पेशगी दाम दे तो दिये, मगर पीछेसे तौलके माफ़िक ठीक सौदा नहीं मिला। हम लोगोंने उनकी इस बेवकूफ़ीको प्रत्यक्ष देखा था, इसलिए अब उनसे हमारा रहना सहा नहीं जाता।"

मोतीकी माने कहा—"न सही, पर उनके ऊपर तो विप्रदास बाबूके प्रति एक क्रोध पागलपनकी तरह सवार हो गया है—दिनों-दिन बढ़ता ही जाता है। यह कौन-सी रीति है, पूछो भला!"

नवीनने कहा—"ऐसे आदमियोंका भक्तिका प्रकाश इसी तरहका होता है। इस श्रेणीके लोग भीतरसे जिसे श्रेष्ठ समझते हैं, बाहरसे उसे मारते हैं। कोई-कोई कहते हैं कि रामचंद्रपर रावण-की असाधारण भक्ति थी, इसीलिए वह बीस-हाथोंसे नैवेद्य चलाता था। मैं तुमसे आज कहे देता हूँ, बहू-रानीकी भइयासे भेंट सहजमें नहीं होनेकी।"

"ऐसा कहनेसे तो काम नहीं चलेगा, कोई-न-कोई उपाय तो करना ही होगा।"

"उपाय दिमाग़में आ गया।"

"क्या, बताओ?"

"कह नहीं सकता।"

"क्यों, भला?"

"शर्म मालूम होती है।"

"मुझसे भी शरम ?"

"हाँ, तुम्हींसे शरम है।"

"वजह क्या, सुनूँ तो सही ?'।

"भाई साहबको ठगना होगा--तुम क्या करोगी सुनकर ?"

"जिससे प्रेम है, उसके लिए ठगई करनेमें मुझे ज़रा भी संकोच नहीं।"

"ठग-विद्या तो तुमने मुझ ही पर प्रयोग करके सीखी है न।"

"इसके लिए तुमसे अधिक उपयुक्त आदमी और मिलता ही कहाँ ?"

"देवीजी, राजीनामा लिखे देता हूँ, तुम जब चाहो, मुझे ठग सकती हो।"

"इतनी खुशी किस बातकी, ज़रा सुनूँ तो सही ?"

"बताऊँ ? विधाताने तुम लोगोंके हाथमें ठगनेके जो उपाय सौंपे हैं, उसमें उन्होंने मिसरी घोल दी है। इस मिठास-भरी ठगईका नाम ही 'माया' है।"

"मायाका तो छूट जाना ही अच्छा है।"

"अच्छी कही! मायाके छूट जानेपर संसारमें फिर रहा ही क्या ? मूर्तिका रंग छुटा डालनेपर उसमें सिर्फ मिट्टी और फूँस रह जाता है। देवीजी, अब तुम्हारी खुशी है, चाहे इस अबोधको भूल-भुलैयामें डालो, चाहे ठगो, चाहे आँखोंमें मस्ती ला दो और चाहे मनमें नशा जगा दो,—जो तुम्हारी तबियतमें आवे, सो करो।"

इसके बाद जो कुछ बातचीत होती रही, वह बिलकुल फिजूल थी; उससे इस उपन्याससे कोई सम्बन्ध नहीं।

[४१]

मीटिंगमें मधुसूदनकी यह पहली ही हार है। आज तक उसके किसी भी प्रस्तावको—किसी भी स्कीमको—कोई टाल नहीं सका है। उसे अपनेपर जितना भरोसा था, उसके सहयोगियोंका भी उसपर उतना ही विश्वास था। इसी भरोसेपर वह कोई जरूरी प्रस्ताव मीटिंगमें पास करा लेनेसे पहले ही, उसके अनुसार आगेके लिए अपना काम बहुत-कुछ तैयार कर लेता था। अबकी बार पुरानी नील-कोठीवाले अपने नीलके कारोबारके लिए कुछ इलाक़ा खरीद लेनेका बन्दोबस्त कर रहे थे। इस मामलेमें बहुत-कुछ खर्च भी हो चुका है। सब ठीक-ठाक हो गया था ; दस्तावेजपर स्टाम्प लगाकर रजिस्ट्री कराके दाम चुकानेभरकी देर है, जिन आदमियोंको नियुक्त करना था, उन्हें आशापर रखा गया है ; इतनेमें यह बाधा आ खड़ी हुई। हाल ही में वहाँ कोई ट्रेजररका पद खाली हुआ है, उसके लिए दूरके रिश्तेके एक दामादकी उम्मेदवारी चल रही थी, अयोग्यके उद्धारमें उत्साह न होनेसे मधुसूदनने उसपर ध्यान नहीं दिया था। वह बात बीजकी तरह मिट्टीमें दबी-दबी एकाएक विरोधके रूपमें अंकुरित हो उठी। जरासा छिद्र भी था। उस ताल्लुकेका मालिक रिश्तेमें मधुसूदनकी किसी दूर-सम्पर्कीय बुआका जेठौत लगता था। बुआने आकर जब उसके हाथ-पैर जोड़े, तब उसने हिसाब लगाकर देखा कि निहायत सस्तेमें मिल जायगा, मुनाफा-का-मुनाफा है और रिश्तेदारोंमें रोब जमानेका गौरव! जिनका अयोग्य दामाद ट्रेजररके पदसे वंचित है, उन्हींने बड़ी खोजके साथ मधुसूदनके स्वजनवात्सल्यके प्रमाण आविष्कार किए हैं और उनका यथास्थानमें प्रचार भी किया है। इसके सिवा गुप-चुप इस मिथ्या सन्देहको संचारित करनेका भार भी उन्हींने लिया था कि

मधुसूदन हरएक तरहकी खरीद-बिक्रीमें भीतर-ही-भीतर कमीशन लिया करता है। इन सब निन्दाओंका सबूत कोई नहीं चाहता; क्योंकि स्वयं उनके अन्दर जो लोभ है, वही उनके लिए अन्तरतम और प्रबलतम साक्षी है। लोगोंका मन बिगाड़ देना और भी एक कारणसे सहज था; वह कारण था मधुसूदनकी असाधारण श्री-वृद्धि और उसके असली चरित्रकी असह्य सुख्याति। 'मधुसूदन भी भीतर-ही-भीतर डकारा करते हैं'—इस अपवादसे उन लोलुपों-को बड़ी शान्ति मिली, जिनका मन गहरी डकार लेनेकी आकांक्षा-से बगुलेकी तरह हो रहा था और जिनके आस-पास कहीं भी जलाशय न था।

मालिकको मधुसूदन पक्की जबान दे चुका था। नुक़सानके डरसे वायदा-खिलाफ़ी करनेवाला वह नहीं है। इसीसे उसने उसे खुद खरीदनेका निश्चय किया, और प्रण कर लिया है कि कम्पनीको दिखा दूँगा कि न खरीदकर उसने अपना नुक़सान किया है।

मधुसूदन देरसे घर वापस आया। अपने भाग्यपर मधु-सूदनको अन्ध-विश्वास पैदा हो गया था, आज उसे डर मालूम हुआ कि उसके अदृष्ट उसको जीवन-यात्राकी गाड़ीको एक लाइनसे दूसरी लाइनपर चालान किये दे रहा है। पहले झकझोरेमें ही उसका सीना धड़क उठा। मीटिंगसे लौटकर आफिस-रूममें आकर वह आरामकुर्सीपर पड़ रहा, और हुक्केकी नली हाथमें लिये उसके धूमकुंडलके साथ अपनी काले रंगकी चिन्ताको कुंडलायित करने लगा।

नवीनने आकर खबर दी—"विप्रदासके यहाँसे आदमी आया है मुलाक़ात करने।" मधुसूदन झुंझलाकर बोल उठा—"कह दो, चले जायँ, अभी मुझे फुरसत नहीं है।"

नवीनने मधुसूदनका रंग-ढंग देखकर समझ लिया कि मीटिंगमें कोई अनहोनी बात हो गई है। समझ गया कि भाई साहबका मन अभी दुर्बल है। दुर्बलता स्वभावत: अनुदार होती है, और दुर्बलकी आत्म-गरिमा क्षमा-हीन निष्ठुरताका रूप धारण कर लेती है। भाई साहबका चोट खाया हुआ मन बहू-रानीको कठोरतासे चोट पहुँचाना चाहेगा, इसमें नवीनको ज़रा भी सन्देह न था। इस चोटको, जिस तरह हो सके, दूर करना ही होगा। इसके पहले उसके मनमें दुबिधा थी, अब वह बिलकुल दूर हो गई। नवीनने कुछ देर तक घूम-फिरकर फिर कमरेमें आकर देखा कि उसके भाई साहब पतों-वाली नोट-बुकके पन्ने उलट रहे हैं। नवीनके आकर खड़े होते ही मधुसूदनने मुँह उठा-कर रूखे स्वरमें पूछा—"फिर क्या ज़रूरत पड़ गई? शायद अपने विप्रदास बाबूकी तरफ़से वकालत करने आये होगे—क्यों?"

नवीनने कहा—"नहीं, भाई साहब, इसकी चिंता न कीजिए। उनका आदमी यहाँसे ऐसी फटकार खाकर गया है कि तुम अगर खुद उसे बुलाओ, तो भी वह इधरको ओर मुँह न करेगा।"

यह बात भी मधुसूदनको सह्य न हुई। बोल उठा—"छगुनी हिलाते ही पैरोंके पास आकर पड़ना होगा। किस लिये आया था वह?"

"तुम्हें खबर देने कि विप्रदास बाबूका कलकत्ते आना दो दिन पिछड़ गया है। तबीयत ज़रा और सुधर जानेपर आयेंगे।"

"अच्छा, अच्छा, उसके लिए मुझे जल्दी नहीं है।"

नवीनने कहा—"भाई साहब, कल सबेरे घंटे-दो-घंटेके लिए ज़रा छुट्टी चाहिये।"

"क्यों?"

"तुम सुनोगे तो गुस्सा होगे।"

"न सुननेसे और भी गुस्सा होऊँगा।"

"कुम्भकोनम्से एक ज्योतिषी आये हैं, उनसे एक बार भाग्य-परीक्षा कराना चाहता हूँ।"

मधुसूदनका सीना धड़क उठा, उसकी इच्छा हुई कि वह अभी दौड़ा जाय उसके पास। ऊपरसे डपटकर बोला—"तुम विश्वास करते हो ज्योतिषमें ?"

"स्वाभाविक अवस्थामें तो नहीं करता, पर डर मालूम होनेपर करता हूँ।"

"किस बातका डर, सुनूँ तो सही ?"

नवीन कुछ जवाब न दकर अपना सिर खुजाने लगा।

"किसका डर, आखिर बताओ भी ?"

"इस दुनियामें तुम्हारे सिवा मैं और किसीको नहीं डरता। कुछ दिनसे तुम्हारा बर्ताव देखकर मेरा मन चंचल हो उठा है।"

मधुसूदनको इस बातसे बड़ी तृप्ति हुई कि उससे लोग ऐसे डरते हैं जैसे शेरसे। नवीनके मुँहकी ओर देखकर वह चुपचाप गम्भीर भावसे हुक्केकी नली गुड़गुड़ाता हुआ अपने माहात्म्यका अनुभव करने लगा।

नवीनने कहा—"इसीसे, एक बार स्पष्ट जानना चाहता हूँ कि ग्रह क्या करना चाहते हैं मेरे बारेमें। और कब तक उनसे छुटकारा मिलेगा।"

"तुम जैसे नास्तिक, तुम तो कुछ मानते ही नहीं, फिर तुम कैसे—"

"देवताओंपर विश्वास होता तो ग्रहोंपर विश्वास न करता, भाई साहब। जो डाक्टरको नहीं मानता, उसे कभी-कभी नीम-हकीमको मानना पड़ता है।"

मधुसूदनको अपने ग्रहकी जाँच करानेके लिए जितना आग्रह हुआ, उतनी ही झुंझलाहटके साथ वह बोला—"पढ़-लिखकर

तुम रहे गधे-के-गधे ही! जो जैसा कह दे, उसीपर विश्वास करोगे तुम ?"

"उसके पास जो भृगुसंहिता है—उसमें, जहाँ भी कोई जिस किसी समयमें पैदा हुआ है या होगा, सबकी जन्मपत्री बिलकुल तैयार रखी है—संस्कृत भाषामें लिखी हुई ; इसके ऊपर और क्या कहा जा सकता है ? हाथों हाथ परीक्षा करके देख लो।"

"जो लोग बेवकूफ़ोंको बहकाकर पेट भरते हैं, उनके लिए विधाता तुम जैसे बेवकूफ़ भी काफ़ी तादादमें उत्पन्न कर देता है।"

"और उन बेवकूफ़ोंको बचानेके लिए तुम सरीखे बुद्धिमानोंकी सृष्टि करता है। मारनेवालेपर उसकी जितनी दया है, मार खानेवाले पर भी उतनी ही है। भृगुसंहितापर तुम अपनी तीक्ष्ण बुद्धि चलाकर देख न लो।"

"अच्छी बात है, कल सवेरे ही हमें ले चलना, देखूँ तो सही तुम्हारे कुम्भकोनम्‌की चालाकी।"

"भाई साहब, तुम्हारा ऐसा ज़बरदस्त अविश्वास है कि उससे गणनामें गड़बड़ हो सकती है। संसारमें देखा जाता है कि आदमीपर विश्वास करनेसे आदमी विश्वस्त हो जाता है। ग्रहोंकी भी ठीक यही दशा है, साहब लोगोंको देखो, वे ग्रहको नहीं मानते, इसलिए उनपर ग्रहोंका फल कुछ असर ही नहीं करता। उस दिन त्र्यहस्पर्शके दिन जाकर तुम्हारा छोटा-साहब घुड़-दौड़में बाज़ी मार लाया—मैं होता तो बाज़ी जीतना तो दूर रहा, शायद उसमेंसे कोई घोड़ा छिटककर मेरे पेटमें दुलत्ती जमा जाता। भाई साहब, इन सब ग्रह-नक्षत्रोंके हिसाबमें तुम अपनी बुद्धि न चलाना, ज़रा विश्वास भी करना !"

मधुसूदन खुश होकर मुसकराता हुआ हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

दूसरे दिन सवेरे सात बजेके भीतर मधुसूदन नवीन के साथ एक पतली गलीमेंसे कूड़े-कचड़ेमें होकर वेंकट शास्त्रीके घर पहुँचा।

नीचेके तल्लेमें अँधेरी बन्द कोठरी है, लोन-लगी टूटी फूटी दीवाल ऐसी मालूम पड़ रही है, मानो वह घातक चर्मरोगसे बुरी तरह तंग है। तख़्तके ऊपर मैली-कुचैली फटी दरी बिछी हुई है। किनारेसे कुछ पोथी-पत्रे बिखरे पड़े हैं। दीवालपर शिव-पार्वतीका एक चित्रपट टँगा है। नवीनने आवाज़ दी—"शास्त्रीजी!" छींटकी मैली फर्द ओढ़े एक काला नाटा दुबला आदमी कोठरीमें घुसा। उसका सिर घुटा हुआ था और उसके बीचमें पंडिताऊ ढंगकी विशाल चोटी थी। नवीनने उसे बड़े विनयके साथ प्रणाम किया। शास्त्रीजीकी शक्ल-सूरत देखकर मधुसूदनको ज़रा भी भक्ति न आई—परन्तु दैवके साथ दैवज्ञकी थोड़ी-बहुत घनिष्टता होगी ही, इस ख़यालसे डरते-डरते ज़रासा सिर झुकाकर जल्दीसे आधा परधा नमस्कार करके वह बैठ गया। नवीनने मधुसूदनकी जन्मपत्री ज्योतिषीके हाथमें दी, परन्तु शास्त्रीजीने उसकी कुछ क़द्र न करके मधुसूदनका हाथ देखना चाहा। काठकी सन्दूकचीमें से काग़ज़-क़लम निकालकर उन्होंने स्वयं एक चक्र बनाया। मधुसूदनके मुँहकी तरफ़ देखकर बोले—"पंचमवर्ग।" मधुसूदन ख़ाक भी न समझा। ज्योतिषीजी पोरोंपर उँगली रखते हुए कहने लगे—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग। इतनेपर भी मधुसूदनकी बुद्धि खुलास न हुई। ज्योतिषीजीने कहा—"पंचमवर्ण !" मधुसूदन धैर्यपूर्वक चुप रहा। ज्योतिषी कहने लगा—"प, फ, ब, भ, म।" मधुसूदन इससे सिर्फ़ इतना समझ सका कि भृगुमुनिने व्याकरणके प्रथम अध्यायसे ही उसकी संहिता शुरू कर दी है। इतनेमें वेंकट शास्त्री बोल उठे—"पंचाक्षरकं।"

नवीनने चौंककर मधुसूदनके कानके पास मुँह ले जाकर चुपकेसे कहा—"मैं समझ गया, भाई साहब।"

"क्या समझे ?"

"पंचमवर्गका पंचम वर्ण म, उसके बाद पंच अक्षर म धु सू द न जन्म-ग्रहकी अद्भुत कृपासे तीनों 'पाँच' आकर एक जगह मिले हैं।"

मधुसूदन दंग रह गया। मा-बापके नाम रखनेके हज़ारों वर्ष पहले ही भृगुमुनिके रजिस्टरमें नाम दर्ज ! नक्षत्र भी कैसा गज़ब ढाते हैं। इसके बाद वह हतबुद्धिकी भाँति बैठा-बैठा सुनता रहा संस्कृत-भाषामें रचा हुआ अपने जीवनका संक्षिप्त इतिहास। भाषा उसकी जितनी कम समझमें आई, उतनी ही उसकी भक्ति बढ़ने लगी। शुरूसे अन्त तक सारा जीवन मानो मूर्तिवान ऋषिवाक्य-सा मालूम हुआ। अपनी छातीपर हाथ फेरकर देखा, तो अपनी देह उसे अनुस्वार, विसर्ग, तद्धित और प्रत्ययके मसालेसे बनी हुई किसी तपोवनमें लिखी हुई एक पोथीके समान मालूम हुई। उसके बाद ज्योतिषीके अन्तिम शब्द उसके कानोंमें इस रूपमें पहुँचे—'उसके घर किसी दिन लक्ष्मीका आविर्भाव होगा, जिसकी अचिन्त्य सौभाग्य-सूचना पहले ही से आ चुकी है। कुछ दिन हुए, लक्ष्मीजीने नववधूके रूपमें घरमें प्रवेश किया है। अभीसे सावधान हो जाना चाहिए, क्योंकि अब उन्हें यदि मानसिक कष्ट पहुँचा, तो भाग्य कुपित हो जायगा।'

वेंकट शास्त्रीने कहा—"कोपके लक्षण दिखाई दिये हैं। जातक यदि अब भी सावधान न होगा, तो संकट बढ़ता ही जायगा।" मधुसूदन स्तम्भित होकर चुपचाप बैठा रहा, उसे विवाहके दिनकी उस ज़बरदस्त मुनाफ़ेकी बात याद उठ आई उसके बाद कुछ ही दिनोंमें वह पराजय ! लक्ष्मी स्वयं आवें, यह तो सौभाग्यकी बात है; परन्तु साथ ही उसका निजी जिम्मेदारी भी कुछ कम भयंकर नहीं है।

लौटते समय मधुसूदन गाड़ीपर भी स्तब्ध होकर बैठा रहा। थोड़ी देर बाद नवीन बोला—"मैं तो इस वेंकट शास्त्रीकी बात-

पर ज़रा भी विश्वास नहीं करता, ज़रूर उसने किसीसे तुम्हारे बारेमें सब पूछ-पाछ लिया है।"

"हुँः, ज्यादा अक्लमन्द हो न!—जहाँ जितने आदमी रहते होंगे, पहलेसे ही सबकी खबर वे लेते फिरते होंगे, बड़ा आसान काम है न!"

"मनुष्यके जन्मनेसे पहले ही उसकी करोड़ों जन्मपत्रियाँ बनानेकी अपेक्षा यह काम बहुत आसान तो है ही। भृगु मुनिको इतने कागज़ कहाँसे मिले, और वेंकट स्वामीके उस ज़रासे घरमें इतनी जगह कहाँसे आई?"

"अरे पहलेके ऋषि-मुनि लोग एक-एक लकीरमें हज़ारों बातें लिख दिया करते थे।"

"बिलकुल असम्भव बात है।"

"जो तुम्हारी अक्लमें न आवे, सो असम्भव है। हुँः, अच्छा तुम्हारा साइन्स है! अब तर्क रहने दो, उस दिन वहाँसे जो गुमाश्ता आया था, उसे तुम खुद जाकर लिवा लाना—आज ही, देर मत करना।"

भाई साहबको छकाकर नवीनका मन भीतरसे बड़ा बेचैन हो उठा। फन्दा इतना आसान था—और उसकी सफलता भाई साहबके लिए इतनी हास्यजनक थी कि जिनके अपमानसे नवीन बहुत ही शरमाया और दुःखित हुआ। भाई साहबको उसे अनेकों बार छोटी-छोटी बातोंमें धोखा देना पड़ा है, कभी कुछ संकोच नहीं हुआ; लेकिन आज इतना घुमा-फिराकर इतने बड़े जाल रचनेकी ग्लानिने उसके चित्तको अस्वच्छ कर दिया।

[४२]

मधुसूदनके मनसे एक बोझा-सा उतर गया ; आत्म-गौरवका बोझा—जो कठोर आत्माभिमानके रूपमें उसकी विकसोन्मुख अनुरक्तिको बार-बार पत्थरसे दबाता आ रहा था। कुमुदके प्रति उसका मन जब मुग्ध था, तब भी उस विह्वलताके विरुद्ध भीतर ही भीतर उसकी लड़ाई चल रही थी। ज्यों-ज्यों वह अनन्योपाय होकर कुमुदकी ओर खिंचता गया है, त्यों-त्यों अपने अगोचरमें कुमुदपर उसका क्रोध बढ़ता ही गया। इतनेमें खास नक्षत्रोंके यहाँसे जब हुक्म आया कि लक्ष्मीजी आई हैं घरमें, उन्हें खुश करना होगा, तो सब द्वन्द्व दूर होकर उसका शरीर मन मानो रोमांचित हो उठा ; बार-बार वह अपने मनमें कहने लगा—'लक्ष्मी, मेरे ही घर लक्ष्मी, मेरे भाग्यका परमदान।' जी चाहने लगा—अभी सब संकोच दूरकर कुमुदके पास जाकर स्तुति कर आवे, कह आवे कि 'यदि कुछ भूल हुई हो, तो उसपर ध्यान मत देना।' परन्तु आज अब समय कहाँ, व्यापारकी दरार जोड़नेके लिए अभी आफिस जाना होगा ; भीतर जाकर खा आता, इतनी भी फुरसत न हुई।

इधर तमाम दिन कुमुदिनीके मनमें उथल-पुथल होती रही। उसे मालूम है कि कल भइया आयेंगे, तबीयत उनकी ठीक नहीं है। उनके साथ भेंट हो सकेगी या नहीं, यह बात निश्चित रूपसे जाननेके लिए उसका मन उद्विग्न हो रहा है। नवीन किसी कामसे कहीं गया है, अभी तक आया नहीं। वह निःसन्देह जानता था कि आज स्वयं मधुसूदन जाकर बऊरानीको सब तरहसे प्रसन्न करेगा ; पहलेसे किसी प्रकारका आभास देकर वह रस-भंग नहीं करना चाहता।

आज छतपर बैठनेका मौका न था। कल शामसे ही बादल घिरे हुए हैं, आज दोपहरसे थोड़ी-थोड़ी वर्षा भी शुरू हो गई है। शीतऋतुके बादल हैं, अनिच्छित अतिथिकी तरह बुरे मालूम होते हैं। बादलोंमें कोई रंग नहीं वर्षामें कोई ध्वनि नहीं, भारी ठंढी हवा मानो उदास-सी हो रही है, और सूर्यालोक-हीन आकाशकी दीनतासे पृथ्वी मानो संकुचित हो रही है। सीढ़ियोंपर से चढ़कर जीना खत्म होते ही, सोनेके कमरेमें जानेके रास्तेपर जो छई-हुई छत है, वहींपर कुमुद बैठी है। रह-रहकर उसकी देहपर पानीकी बौछार पड़ रही है। आज इस छायासे मलिन गीले दिनमें कुमुदको ऐसा मालूम होने लगा कि मानो उसके जीवनने अजगरकी तरह उसे निगल लिया है, उस अजगरका गन्दा पेट ठसाठस भरा हुआ है और उसमें कहीं भी जरा संधि नहीं है। जिस देवताने उसे फुसलाकर आज इस निरुपाय नैराश्य-सागरमें ला पटका है, उसपर उसका जो अभिमान उसके मनमें घुमड़ रहा था, वह आज क्रोध-रूपी आगसे जल उठा। सहसा वह जल्दीसे उठ खड़ी हुई। डेस्क खोलकर उसने वही अपना युगल-रूपका चित्रपट निकाला। वह एक रंगीन रेशमी छींटके टुकड़ेमें लिपटा हुआ था। उस चित्रपटको वह आज नष्ट कर देना चाहती है, मानो जोरसे चिल्लाकर कहना चाहती है कि तुमपर मैं जरा भी विश्वास नहीं करती। हाथ काँप रहे हैं, इसीसे गाँठ नहीं खुल रही है, खींचातानी करते-करते वह और भी कड़ी हो गई, अधीर होकर उसने उसे दाँतोंसे फाड़ डाला। ज्यों ही उस चिर-परिचित मूर्तिके उसे दर्शन हुए, उससे रहा न गया; उसने चटसे उसे छातीसे लगा लिया और रोने लगी। लकड़ीका फ्रेम उसकी छातीमें ज्यों-ज्यों चुभने लगा, त्यों-त्यों वह उसे और भी दने आवेगसे चिपटाने लगी।

इतनेमें आ गया मुरली बैरा—बिछौना करने। मारे ठंढके

उसके हाथ काँप रहे थे। सिर्फ एक फटी-पुरानी मैली चद्दर ओढ़े था। चाँद उसकी गंजी थी, कनपटियाँ बैठी हुईं, गाल पिचके हुए, और दाढ़ी बढ़ी हुई भद्दी मालूम होती थी। अभी थोड़े दिन हुए, वह मलेरिया बुखारमें उठा है, देहमें खून बस कहने-भरको रह गया है। डाक्टरने नौकरी छोड़कर देशमें जाकर रहनेके लिए कहा था, परन्तु पेट बुरी बला है।

कुमुदने कहा—"जाड़ा लगता है, मुरली ?"

"हाँ, माजी, बादल हो रहे हैं, सो जाड़ा बड़े जोरका पड़ा है।"

"गरम कपड़े नहीं हैं तुम्हारे पास ?"

"खिताब मिलनेके दिन महाराजा सा'बने दिये तो थे, माजी, लेकिन नातीकी बीमारीमें डाक्टरके कहनेसे मैंने उसे ही दे दिये।"

कुमुद बगलके कमरेमें जाकर आलमारीमें से एक खाकी रंगका पुराना अलवान निकाल लाई, और बोल—"मैं अपनी यह चद्दर तुम्हें देती हूँ।"

मुरलीने नमस्कार करके कहा—"कसूर माफ करना, माजी, महाराजा सा'ब गुस्सा होंगे।"

कुमुदको याद उठ आई—इस घरमें दया करनेका मार्ग बहुत ही संकीर्ण है, परन्तु देवतासे अपने लिए भी तो उसे दया चाहिए, पुण्य-कर्म ही उसका मार्ग है। कुमुदने क्षोभके साथ उस अलवानको जमीनपर पटक दिया।

मुरलीने हाथ जोड़कर कहा—"रानी-माई, तुम लक्ष्मी माता हो, गुस्सा मत होना। ऊनी कपड़ोंकी मुझे जरूरत नहीं पड़ती। मैं रहता हूँ हुक्केबरदारकी कोठरीमें; वहाँ अँगीठीमें हरदम आग सुलगती रहती है, सो मैं खूब भरकता रहता हूँ।"

कुमुदने कहा—"मुरली, नवीन-बाबू अगर आ गये हों, तो उन्हें जरा भेज देना।"

नवीनके कमरेमें पैर रखते ही कुमुदने कहा—"देवरजी, तुम्हें एक काम करना ही होगा। बताओ, करोगे?"

"अपना अनिष्ट हो तो अभी करनेको तैयार हूँ; लेकिन तुम्हारा अनिष्ट हो तो हरगिज़ न करूँगा।"

"मेरा और कितना अनिष्ट होगा? मैं नहीं डरती।"

कहकर अपने हाथोंके उसने सोनेके मोटे भारी चूड़े उतार लिये, बोली—"मेरे इन चूड़ोंको बेचकर भइयाके लिए स्वस्त्ययन कराना होगा।"

"कोई ज़रूरत नहीं है, बऊ-रानी तुम उनकी जैसी भक्ति करती हो, उसीके पुण्यसे क्षण क्षणमें उनके लिए स्वस्त्ययन हो रहा है।"

"देवरजी, भइयाके लिए अब और कुछ भी न कर सकूँगी। अगर कुछ कर सकती हूँ, तो सिर्फ इतना ही कि देवताके द्वारपर उनके लिए कुछ 'सेवा' पहुँचा दूँ।"

"तुम्हें कुछ न करना होगा, बऊ-रानी। हम सब सेवक हैं किस लिए?"

"तुम लोग क्या कर सकते हो, बताओ?"

"हम लोग पापी हैं, पाप कर सकते हैं। वही करके अगर तुम्हारे किसी काम आऊँ, तो अपनेको धन्य समझूँ।"

"देवरजी, इस बारेमें मज़ाक मत करो।"

"ज़रा भी मज़ाक नहीं करता। पुण्य करनेकी अपेक्षा पाप करना बहुत कठिन काम है, देवता यदि इस बातको समझ जायँ, तो पुरस्कार देंगे।"

नवीनकी बातोंसे देवताके प्रति उसकी उपेक्षा-बुद्धिकी कल्पना करके कुमुदका जी दुखना स्वाभाविक था, किन्तु उसके भइया भी तो मन-ही-मन देवताकी श्रद्धा नहीं करते, इस अभक्तिपर तो वह

गुस्सा नहीं हो सकती। छोटे बच्चेकी शरारतपर माका जैसा सकौतुक स्नेह होता है, इस तरहके अपराधपर उसका भी वैसा ही भाव है।

कुमुदने जरा म्लान हँसी हँसकर कहा—"देवरजी, संसारमें तुम लोग अपने जोरसे काम कर सकते हो, हम तो वह जोर चला नहीं सकतीं न? जिनपर प्रेम है, किन्तु पहुँच नहीं, उनका काम करें तो कैसे करें? दिन तो कटते ही नहीं, कहीं भी तो रास्ता ढूँढ़े नहीं मिलता। हमपर दया करनेवाला क्या कहीं भी कोई नहीं है?"

नवीनकी आँखोंमें आँसू भर आये।

"भइयाके लिए मुझे कुछ करना ही होगा, देवरजी, कुछ तो देना ही होगा। ये चूड़े मेरी माके हैं, इन्हें मैं अपनी माकी ओरसे ही देवताको चढ़ाऊँगी।"

"देवताको हाथोंमें नहीं दिया जाता, बऊरानी, वे ऐसे ही ले लेते हैं। दो दिन ठहर जाओ, फिर भी अगर देखो कि वे प्रसन्न नहीं हुए, तो तुम जैसा कहोगी, वैसा ही करूँगा। जो देवता तुमपर दया नहीं करते, उन्हें भी भोग चढ़ा आऊँगा।"

रात हो चुकी थी,—बाहर जीनेमें परिचित जूतोंका शब्द सुनाई दिया। नवीन चौंक उठा, समझ गया कि भाई साहब आ रहे हैं। भागा नहीं, हिम्मत करके भाई साहबकी बाट जोहने लगा। इधर कुमुदका मन क्षण-भरमें अत्यन्त संकुचित हो उठा। जब इस अदृश्य विरोधके धक्केने बड़े जोरसे उसकी प्रत्येक नाड़ीको चौंका दिया, तो उसे बड़ा डर मालूम हुआ। इस पापने क्यों उसे इतनी कड़ाईके साथ धर दबाया?

सहसा कुमुद नवीनसे कह उठी—"देवरजी, किसी ऐसेको तुम जानते हो, जो मुझे गुरुकी तरह उपदेश दे सके?"

"क्या होगा उससे, बऊरानी ?

"अपने मनसे अब मुझसे जूझा नहीं जाता !"

"इसमें तुम्हारे मनका दोष नहीं है।"

"विपत्ति बाहरकी है और दोप मनका, भइयासे तो मैंने ऐसा ही सुना है बार-बार।"

"तुम्हारे भइया ही तुम्हें उपदेश देंगे,—घबराओ मत।"

"भला, ऐसे दिन अब नसीब होंगे !"

मधुसूदनकी आर्थिक बुद्धिके साथ उसके प्रेमका समझौता हो जानेके बाद ही यह प्रेम उसके सारे काम-धन्धोंपरसे मानो उफन-उफनकर फैलने लगा। कुमुदके सुन्दर मुखपर उसके भाग्यका वराभय दान है। पराभव दूर हो जायगा, आज ही उसे इस बातका आभास मिला है। कल जिन लोगोंने विरोधमें राय दी थी, आज उन्हींमेंसे किसी-किसीने सुर बदलकर मधुसूदनको चिट्ठी लिखी है। मधुसूदनने ज्यों ही उस इलाक़ेको अपने नामसे खरीदनेका प्रस्ताव किया, त्यों ही किसीने ऐसा भी भाव दिखाया कि इस बातपर फिर एक बार विचार करना चाहिए।

ग़ैरहाज़िर होनेके क़सूरपर आफिसके दरवानकी आधी तनख्वाह काट ली गई थी, आज टिफिनके वक्त वह मधुसूदनके पैरों पड़ गया। उसने उसी वक्त उसे माफ़ कर दिया। माफ़ करनेके मानी यह कि उसने अपनी पाकेटसे दरवानको रुपये दे दिए; पर रजिस्टरमें जुर्माना बना ही रहा, क्योंकि नियम भंग नहीं हो सकता।

आजका दिन मधुसूदनके लिए बड़े आश्चर्यका दिन है। बाहर आकाशमें बादल घिरे हुए हैं, रिमझिम-रिमझिम वर्षा हो रही है; किन्तु इससे उसके भीतरका आनन्द और भी बढ़ गया। आफिससे लौटकर रातको भोजन करनेके पहले तक मधुसूदन

बाहरके मकानमें ही रहता था। ब्याहके बाद, कुछ दिन तक नियमके विरुद्ध असमयमें अन्तःपुरमें जाते समय लोगोंकी निगाह भी बचाई है; परन्तु आज वह बेधड़क क़दम रखता हुआ घर-भरको जतला देना चाहता है कि वह जा रहा है कुमुदके पास, उससे मिलनेके लिए। आज उसने समझा कि इतना बड़ा उसका सौभाग्य है कि संसार-भरके लोग उससे ईर्ष्या कर सकते हैं।

थोड़ी देरके लिए मेह थम गया है। अभी तक सब कमरोंमें बत्तियाँ नहीं जल पाईं। आनन्दी बुढ़िया धूपदानी हाथमें लिये सब कमरोंमें धूप देती फिरती है। एक चमगादड़ आँगनके ऊपरसे लेकर अन्तःपुरके रास्ते तक लालटेनके उजालेमें चक्कर काट रहा है। दासियाँ बरामदेमें पैर पसारे बैठी हुई अपनी-अपनी जाँघोंपर रुईकी बत्तियाँ बना रही थीं, राजा-साहबको आते देख झटपट घूँघट खींचकर भाग गईं। पाँवकी आहट सुनकर श्यामासुन्दरी अपने कमरेमें से बाहर निकल आई, हाथमें पानका डिब्बा था भरा हुआ। मधुसूदनके आफिससे वापस आनेपर नियमानुसार वह उसे बाहर भिजवा देती थी। सभी जानते हैं कि ठीक मधु-सूदनकी रुचिके पान तो सिर्फ श्यामासुन्दरी ही लगा सकती है; इतना जाननेमें और भी ज़रा-कुछ जाननेका इशारा था। उसी बलपर रास्तेमें श्यामाने मधुसूदनके सामने पानका डिब्बा खोलकर कहा—"देवरजी, तुम्हारे पान लगे हुए हैं, लेते जाओ।" पहले-की-सी बात होती, तो इसी बहाने दो-चार बातें हो जातीं, और उन बातोंमें ज़रा-कुछ मधुर रसका आमेज़ लगा रहता। आज क्या हो गया, कौन जाने; दूरसे भी कहीं श्यामाकी छूत न लग जाय, इस डरसे पान बिना लिये ही मधुसूदन जल्दीसे निकल गया। श्यामाकी बड़ी-बड़ी दोनों आँखें अभिमानसे जल उठीं, फिर टपकने लगीं उनमें से आँसुओंकी बड़ी-बड़ी बूँदें। अन्तर्यामी जानते होंगे, श्यामासुन्दरी मधुसूदनसे प्रेम करती है।

मधुसूदनके कमरेमें घुसते ही नवीन कुमुदके पैरोंकी धूल माथेसे लगाकर उठ खड़ा हुआ, और बोला—"गुरुकी बात याद है, तलाशमें रहूँगा।" फिर भाई साहबसे बोला—"बऊ रानी गुरुके मुँहसे शास्त्रोपदेश सुनना चाहती हैं। अपने गुरुजी हैं तो सही, लेकिन—"

मधुसूदन उत्तेजनाके स्वरमें कहने लगा--"शास्त्रोपदेश! अच्छी बात है, देखा जायगा, तुम्हें इसके लिए कुछ न करना होगा।"

नवीन चला गया।

मधुसूदन आज तमाम रास्तेमें मन-ही-मन रटता आया था—"बड़ी बहू, तुम्हारे आनेसे मेरे घरमें उजेला हुआ है।" इस तरहकी बात करना उसकी आदतके बिलकुल खिलाफ है। इसीसे उसने निश्चय किया था कि घरमें घुसते ही बिना दुबिधा किये पहले ही झोंकमें वह उसे कह डालेगा, परन्तु नवीनको देखते ही उसकी बात रुक गई। उसपर छिड़ गया शास्त्रोपदेशका प्रसंग, उसने उसका मुँह बिलकुल ही बन्द कर दिया। हृदयके भीतर जो तैयारियाँ हो रही थीं, इस ज़रासी बाधासे वह सब ज्यों-की-त्यों रह गईं। उसके बाद कुमुदिनीके चेहरेपर देखा एक तरहका भयका भाव—देह और मनका एक तरहका संकोच। और किसी दिन इस बातपर उसकी निगाह न पड़ती। आज जो उसके हृदयमें प्रकाशका उदय हुआ है, उससे उसकी देखनेकी शक्ति प्रबल हो गई है, कुमुदके विषयमें चित्तका स्पर्श-ज्ञान हो गया है सूक्ष्म। आजके दिन भी कुमुदके मनमें ऐसी विमुखता—यह उसे बड़ा निष्ठुर अन्याय मालूम होने लगा। फिर भी मन ही मन प्रण किया कि विचलित न होऊँगा; परन्तु जो सहज ही में हो सकता था, वह अब सहज न रहा।

ज़रा चुप रहकर मधुसूदनने कहा—"बड़ी बहू, चली जाना चाहती हो ? ज़रा ठहरोगी नहीं ?"

मधुसूदनकी बात और उसके गलेका सुर सुनकर कुमुद अचम्भेमें आ गई। बोली—"नहीं तो, जाऊँगी क्यों ?"

"तुम्हारे लिए एक चीज़ लाया हूँ, खोलकर देखो।" कहकर कुमुदके हाथमें उसने एक सोनेकी डिब्बी दे दी।

डिब्बी खोलकर कुमुदने देखा कि भइयाकी दी हुई नीलमकी अँगूठी है। छाती धड़क उठी, क्या करे, कुछ समझमें न आया।

"यह अँगूठी मैं तुम्हें पहना देना चाहता हूँ, पहनाने दोगी ?"

कुमुदने अपना हाथ बढ़ा दिया। मधुसूदन कुमुदका हाथ अपनी गोदमें रखकर खूब आहिस्ते-आहिस्ते अँगूठी पहनाने लगा। जान-बूझकर ही उसने कुछ ज्यादा समय लगाया। उसके बाद हाथ उठाकर चूम लिया, बोला—"मैंने ग़लती की थी तुम्हारे हाथसे अँगूठी खोलकर। तुम्हारे हाथमें कोई भी रत्न हो, कुछ दोष नहीं।"

कुमुदको अगर वह धरके पीटता, तो उसे इतना आश्चर्य न होता। छोटे बच्चेकी तरह कुमुदके इस आश्चर्यके भावको देख-कर मधुसूदनको लगा तो अच्छा। कुमुदके चेहरेके भावसे यह बात बिलकुल स्पष्ट झलक रही थी कि उसका यह दान मामूली दान नहीं है; परन्तु मधुसूदनने और भी कुछ हाथमें रख छोड़ा है, उसे उसने प्रकट किया, बोला—"तुम्हारे यहाँका कालू मुखर्जी आया है, मिलोगी उससे ?"

कुमुदका चेहरा चमक उठा। बोली—"कालू भइया !"

"यहीं बुलाये देता हूँ। तुम लोग बातचीत करना, तब तक मैं भोजन कर आऊँ।"

कृतज्ञतासे कुमुदकी आँखें डबडबा आईं।

[४३]

चटर्जी-ज़मींदारोंके साथ कालूका पुराना वंशगत सम्बन्ध है। जितने भी विश्वासके काम होते हैं, वे सब कालूके ही हाथसे कराये जाते हैं। उसके पुरखोंमें से किसीको चटर्जियोंके लिए जेल जाना पड़ा था। कालू आज विप्रदासकी तरफ़से सूदकी किश्त चुकाकर रसीद लेनेके लिए मधुसूदनके आफिसमें आया था। क़द उसका नाटा, रंग गोरा और भरा हुआ चेहरा था; आँखें कुछ कंजी, बड़ी-बड़ी और उसपर काले सफ़ेद बालोंवाली मोटी-मोटी भौंहें झुक रही थीं, बड़ी-बड़ी घनी सफ़ेद मूँछें थीं, लेकिन सिरके बाल क़रीब-क़रीब सब काले थे, बढ़िया देशी शान्तिपुरकी धोती पहने हुए था और मालिकोंकी इज्ज़तके मुवाफ़िक पुरानी क़ीमती जामेवारकी अचकन पहने हुए था। दाहने हाथकी उँगलीमें एक अँगूठी है, उसका पत्थर भी कुछ कम क़ीमतका नहीं है।

कालूके कमरेमें घुसते ही कुमुदने उसे प्रणाम किया। दोनों कार्पेटपर बैठ गये। कालूने कहा—"छोटी लली, अभी तो उस दिन आई हो तुम, लेकिन मालूम होता है कि मानो वर्षोंसे तुम्हें नहीं देखा।"

"भइयाकी कैसी तबीयत है, पहले बताओ।"

"बड़े बाबूके कारण बड़ी चिन्तामें दिन कटे हैं। तुम जिस रोज़ चली आई, उसके दूसरे दिनसे ही बीमारी बहुत बढ़ गई है; लेकिन शरीरमें बहुत ज्यादा ताक़त थी, देखते-देखते सब झेल गये। डाक्टरोंको बड़ा आश्चर्य हुआ।"

"भइया कल आ गये?"

"कल आ जानेकी बात तो थी, लेकिन अभी दो-एक दिनकी और देर होगी। पूनों पड़ गई, सबने मना किया, शायद फिर बुखार आने लगे, सो रह गये। खैर, यह तो हो गया, लेकिन तुम्हारी तबीयत अब कैसी है, सो बताओ ?"

"मैं तो खूब अच्छी ही हूँ।"

कालूने कुछ कहना न चाहा, लेकिन कुमुदके चेहरेका वह लावण्य कहाँ गया ? आँखोंके नीचे यह कालिख कैसी ? उसका ऐसा चमकता हुआ सुन्दर चेहरा फीका क्यों पड़ गया ? कुमुदके मनमें एक प्रश्न उठ रहा था, लेकिन उससे वह मुँह खोलकर कहते नहीं बनता—"भइयाने मुझे याद करके क्या कुछ कहला नहीं भेजा ?" उसके उस अव्यक्त प्रश्नके उत्तरमें ही मानो कालूने कहा—"बड़े बाबूने मेरी मार्फ़त तुम्हारे लिए एक चीज़ भजी है।"

कुमुदने व्यग्र होकर कहा—"क्या भेजा है, कहाँ है वह ?"

"उसे मैं बाहर ही छोड़ आया हूँ।"

"लाये क्यों नहीं ?"

"घबराओ मत, बहन। महाराजने कहा है, उसे वे खुद ही लायेंगे।"

"क्या चीज़ है, मुझे बताओ न ?"

"लेकिन उन्होंने तो मुझसे कहनेकी मनाही कर दी है।"

घरके चारों तरफ़ अच्छी तरह देख-भालकर कालूने कहा—खूब आदरसे तुम्हें रखा है—बड़े बाबूसे जाकर कहूँगा, कितने खुश होंगे। पहले-ही-पहल तुम्हारी चिट्ठी पहुँचनेमें दो दिनकी देर हो गई थी, सो वे बड़े घबराये थे। डाककी कुछ गड़बड़ी हो गई थी, पीछे तीन चिट्ठियाँ उन्हें एक साथ मिलीं।"

डाककी गड़बड़ी कहाँ हुई थी, कुमुदको इस बातका अन्दाज़ लगानेमें देर न लगी।

कालू भइयाको कुमुद कुछ जलपान करनेके लिए कहना चाहती है, लेकिन हिम्मत नहीं पड़ती। ज़रा कुछ संकोचके साथ बोली—"कालू-भइया, अभी तक तुमने कुछ खाया तो होगा नहीं।"

"नहीं, मुझे कलकत्तेमें शामके बाद खाना बर्दाश्त नहीं होता बहन, इसीसे अपने रामसदय वैद्यराजसे मकरध्वज मँगाकर खा रहा हूँ। कुछ विशेष फ़ायदा तो नहीं मालूम होता।"

कालूने समझा था कि अभी घरकी नई बहू है, सब इन्तज़ाम-का भार उसके हाथमें नहीं आया है, इसलिए मुँह खोलकर खाने-की बात कह न सकेगी, सिर्फ़ मन मसोसकर रह जायगी।

इतनेमें मोतीकी माने दरवाज़ेकी ओटमेंसे इशारा करके कुमुदको बुलाकर कहा—"तुम्हारे यहाँसे जो मुकर्जी महाशय आये हैं, उनके लिए भोजन तैयार है। नीचेके कमरेमें उन्हें ले चलो, खिला देना।"

कुमुदने तुरन्त ही आकर कहा—"कालू भइया, चलो, भोजन कर आओ, वैद्यराजकी आज्ञा तुम यहाँ रहने दो, तुम्हें आज खाना ही होगा।"

"बड़ी मुश्किल है! यह तो तुम ज़बरदस्ती करती हो, बहन, आज रहने दो, और किसी दिन देखा जायगा।"

"नहीं, सो नहीं होगा,—चलो।"

अन्तमें जाकर पता लगा कि मकरध्वजसे काफ़ी फ़ायदा पहुँचा है, भूखकी ज़रा भी कमी नहीं पाई गई।

कालू भइयाको खिला-पिलाकर कुमुद अपने ऊपरके कमरेमें चली आई। आज उसका हृदय मायकेकी यादसे भर आया है।

अब तो नूरनगरके पीछेवाले बग़ीचेमें आमके पेड़ोंमें बौर लग गये होंगे फूले हुए जामुनके पेड़के नीचे तालाबके किनारे पक्के घाटके चबूतरेपर बाँहका सिरहाना बनाकर कितनी ही दोपहरियाँ उसने सोकर बिताई हैं—मधुमक्खियोंके गुँजनसे, धूप और छायासे चित्रित कैसी अच्छी लगती थीं वे दोपहरियाँ। हृदयमें अकारण एक तरहकी व्यथा-सी मालूम होने लगी, वह जानती न थी कि उसका अर्थ क्या है। उस व्यथाने सन्ध्या-समयकी ब्रजकी गोधूलिसे उसके स्वप्नको रंगीन बना दिया। वह समझ नहीं पाई है कि उसके यौवनके अप्राप्त साथीने जल-स्थलमें माया मिला दी है, उसकी युगल-रूपकी उपासनामें वही अप्राप्त साथी दुबका-चोरी खेल रहा है, उसीको वह खींच लाई है अपने चित्तसे अदृश्यपुरमें 'इसराज'के मुलतानी रागके स्पन्दनमें। मायकेमें उसे अपने प्रथम यौवनसे उस अप्राप्त मन-चाहे आदमीका आभास मिलता था—खासकर ऊपरके उस कोठेमें, जहाँसे गाँवकी टेढ़ी-मेढ़ी सड़क और सरसोंके फूले हुए खेत दिखाई देते थे, वहाँ बैठकर दीवालकी हरी-काली काईकी रेखाओंके साथ वह अपनी किसी विस्मृत-कहानीकी अस्पष्ट तस्वीर देखा करती थी, सवेरे उठकर ही दुमंजिलेपर वह अपने सोनेके कमरेमेंसे दूरके रंगीन आकाशमें नावके सादे पाल देखा करती, मानो दिगन्तके किनारेसे हृदयकी निरुद्देश-कामना चली हो। प्रथम यौवनकी उस मरीचिकाके साथ-ही-साथ वह कलकत्ते आई—अपनी पूजामें, अपने संगीतमें मग्न होकर। वही मरीचिका तो देवके बहाने उसे अन्धेकी तरह इस विवाहके फन्देमें खींच लाई है; लेकिन कड़ी धूपमें वह खुद ही तो विलीन हो गई।

इस बीचमें न-जाने कब आकर मधुसूदन उसके पीछे खड़ा-खड़ा दीवालमें लगे आईनेमें कुमुदके मुँहका प्रतिबिम्ब देख रहा था। समझ गया कि कुमुदका मन जहाँ भटक रहा है, उस अदृश्य

अपरिचितके साथ प्रतियोगिता हरगिज़ नहीं चल सकती। और कोई दिन होता, तो कुमुदके इस अनमने भावपर वह गुस्सा होता। आज शान्त-विषादके साथ वह कुमुदके पास आकर बैठ गया, बोला—"क्या सोच रही हो, बड़ी-बहू ?"

कुमुद चौंक पड़ी। चेहरेका रंग फ़क हो गया। मधुसूदनने उसका हाथ पकड़कर झकझोर डाला, बोला—"तुम क्या किसी भी तरह मुझे पकड़ाई न दोगी ?"

इस बातका उत्तर कुमुदको कुछ सूझ न पड़ा। क्यों पकड़ाई नहीं देती, यह प्रश्न तो उसके भी मनमें जारी है। मधुसूदन जब कठोर व्यवहार करता था, तब उसके लिए उत्तर सहज था ; किंतु जब वह अपनी हीनता स्वीकार कर लेता है, तो कुमुदसे अपनी निन्दा करनेके सिवा और कुछ जवाब ही देते नहीं बनता। पतिको हृदय-मन अर्पण न कर सकना महापाप है, इस विषयमें कुमुदको ज़रा भी सन्देह नहीं ; फिर भी उसकी ऐसी दशा क्यों हुई ? स्त्रियोंका एकमात्र लक्ष्य है सती सावित्री होना। उस लक्ष्यसे भ्रष्ट होनेकी दुर्गतिसे वह अपनेको बचाना चाहती है—इसीसे आज व्याकुल होकर उसने अपने पतिसे कहा—"तुम मुझपर दया करो।"

"किस बातके लिए दया करनी होगी ?"

"मुझे तुम अपनी बना लो—हुक्म चलाओ, मुझे सज़ा दो। मुझे मालूम होता है, मैं तुम्हारे योग्य नहीं।"

सुनकर बड़े दुःखसे मधुसूदनको हँसी आई। कुमुद सतीका कर्त्तव्य पालन करना चाहती है। कुमुद अगर साधारण गृहिणी मात्र होती, तो इतना ही काफी था, लेकिन वह तो उसके लिए मन्त्र-पढ़ी स्त्रीसे बहुत ऊँची है, उस उच्चताको पानेके लिए वह जो कुछ भी मूल्य लगाता है, वह सब-कुछ व्यर्थ हो जाता है। बार-बार उसीका रूखापन पकड़ाई दे जाता है। कुमुदके साथ वह

अपनी अलंघनीय असाम्य व्याकुलताको उत्तरोत्तर बढ़ाता ही जा रहा है।

एक गहरी साँस लेकर मधुसूदनने कहा—"तुम्हें एक चीज़ दूँ, तो तुम क्या दोगी, बताओ ?"

कुमुद समझ गई, भइयाकी दी हुई वही चीज़ है; वह व्यग्रताके साथ मधुसूदनके चेहरेकी तरफ़ देखती रही।

"जैसी चीज़ होगी, दाम भी वैसे ही लिये जायँगे, याद रखना !"—कहकर उसने पलंगके नीचेसे रेशमकी खोलीमें बंद इसराज निकाला, और उसकी खोली अलग कर डाली। कुमुदका वही चिर-परिचित इसराज था, हाथी दाँतसे जड़ा हुआ। मायकेसे आते समय इसे वह छोड़ आई थी।

मधुसूदनने कहा—"चलो. खुश तो हुई ! लाओ, अब दाम चुकाओ।"

मधुसूदन क्या दाम चाहता है, कुमुद कुछ समझ न सकी, उसके चेहरेकी तरफ़ देखती रही। मधुसूदनने कहा—"इसे बजा कर सुनाओ मुझे।"

यह कोई बड़ी बात न थी, लेकिन फिर भी उसके लिए यह बहुत ज्यादा था। कुमुदने समझ लिया है कि मधुसूदनके हृदयमें संगीतका रस नामको भी नहीं। उसके सामने इसराज बजानेमें उसे संकोच होता है, उस संकोचको दूर करना कठिन है। कुमुद नीचेको मुँह किये इसराजकी छड़ी लेकर हिलाने लगी। मधुसूदनने कहा—"बजाती क्यों नहीं, बड़ी बहू, मेरे सामने शरमानेकी क्या बात है ? शरमाओ मत।"

कुमुदने कहा—"स्वर बँधा हुआ नहीं है।"

"तुम्हारे मनका स्वर बँधा हुआ नहीं,—साफ क्यों नहीं कहतीं ?"

बात सच थी, कुमुदके दिलपर तुरन्त चोट पहुँची, बोली—"पहले इसे ठीक कर लूँ, तुम्हें और किसी दिन सुनाऊँगी।"

"कब सुनाओगी, ठीक-ठीक बताओ।—कल ?"

"अच्छा, कल सुनाऊँगी।"

"शामको, आफिससे लौटनेपर ?"

"हाँ, तभी।"

"इसराज पाकर खूब खुशी हुई है न ?"

"हाँ, बहुत खुशी हुई है।"

दुशालेके भीतरसे एक चमड़ेका केस निकालकर मधुसूदन बोला—"तुम्हारे लिए मैं मोतीका हार लाया हूँ, इसे पाकर तुम उतनी खुश न होगी ?"

इस तरहका पेचीदा प्रश्न क्यों किया जा रहा है ? कुमुद चुपचाप बैठी हुई इसराजकी छड़ी हिलाती रही।

"समझ गया दरख्वास्त नामंजूर !"

कुमुद बातको ठीक समझ न सकी।

मधुसूदनने कहा—"तुम्हारे सीनेके पास अपने दिलकी दरख्वास्त लटका देना चाहता था—लेकिन यहाँ तो पहले ही से मामला डिसमिस हो गया।"

कुमुदके सामने मेजपर हार खुला पड़ा रहा। दोनोमें से कोई भी कुछ बोला नहीं—चुप बने रहे। कभी-कभी कुमुदकी जैसी सपनेकी-सी हालत हो जाया करती थी, वैसी ही अब हो गई। कुछ देर बाद, मानो सचेत होकर कुमुदने हार उठाकर गलेमें पहन लिया, और मधुसूदनको प्रणाम किया। बोली—"तुम मेरा गाना सुनोगे ?"

मधुसूदनने कहा—"हाँ, सुनूँगा।"

"अभी सुनाती हूँ।"—कहकर कुमुदने इसराजका सुर बाँधा। केदारामें अलाप शुरू किया, भूल गई घरमें कोई है या नहीं,

केदारा अलापते-अलापते पहुँच गई छाया नटमें। जो गाना उसे अच्छा लगता था, उसीको गाना शुरू कर दिया—"ठाड़े रहो मेरी आँखिनके आगे।" सुरके आकाशमें उस अपूर्व आविर्भावकी रंगीन छाया पड़ गई, जिसे वह संगीतमें पाती था—हृदयमें पाती थी, लेकिन सिर्फ आँखोंसे देखनेकी तृष्णा उसको हमेशा लगी रहती थी,—"ठाड़े रहो मेरी आँखिनके आगे।"

मधुसूदन संगीतका रस नहीं जानता, लेकिन कुमुदके विश्व-विस्मृत मुखमण्डलपर जो सुर खिला हुआ था, इसराजके पर्दे पर कुमुदकी उँगलियोंके स्पर्श से जो छन्द नाच रहा था, उससे उसका हृदय झूमने लगा—मालूम होने लगा कि मानो उसे कोई वरदान दे रहा है। बजाते-बजाते कुमुद सहसा ठिठक गई, देखा कि मधुसूदन उसके मुँहपर आँखें गड़ाये बैठा है, उसका हाथ रुक गया, सहम गई, बजाना बन्द कर दिया।

मधुसूदनका मन सौजन्यसे भर गया, बोला—"बड़ी बहू, तुम क्या चाहती हो, बताओ।" कुमुदिनी अगर कहती कि कुछ दिन भइयाकी सेवा करना चाहती हूँ, तो मधुसूदन उसके लिए भी राजी हो सकता था; क्योंकि आज वह कुमुदके गीत-मुग्ध मुखकी ओर बार-बार देखता हुआ मन-ही-मन अपनेको कह रहा था—"यही तो है, मेरे घरमें आ तो गई लक्ष्मी, कैसा आश्चर्यकारी सत्य है!"

कुमुद इसराजको जमीनपर रखकर, छड़ी नीचे पटककर चुपचाप बैठी रही।

मधुसूदनने फिर एक बार अनुनयके साथ कहा—"बड़ी बहू, तुम मुझसे कुछ माँगो। जो तुम चाहोगी, दूँगा।"

कुमुदने कहा—"मुरली बैराको एक जाड़ेका कपड़ा देना चाहती हूँ।"

कुमुद यदि कहती कि कुछ नहीं चाहती, तो भी अच्छा था ; परन्तु मुरली बैराके लिए कम्बल ! जो सिरका ताज दे सकता है, उससे जूतेका फीता माँगना !

मधुसूदन दंग रह गया। मुरलीपर बड़ा गुस्सा आया। बोला—"नालायक मुरलीने शायद तुम्हें तंग किया होगा।"

"नहीं तो, मैंने खुद ही उसे एक अलवान देना चाहा, उसने लिया नहीं। तुम अगर हुक्म दो, तो वह हिम्मत करके ले सकता है।"

मधुसूदन सन्नाटेमें आ गया। कुछ देर चुप बैठा रहा, फिर बोला—"भीख देना चाहती हो ! अच्छा देखूँ, कहाँ है तुम्हारा अलवान ?"

कुमुद अपने उस ओढ़े हुए पुराने बादामी रंगके अलवानको उठा लाई। मधुसूदनने उसे लेकर खुद ओढ़ लिया। तिपाईपरकी छोटी घंटी बजानेपर एक बुढ़िया दासी हाज़िर हुई ; उससे कहा—"मुरली बैराको भेज दो।"

मुरली आकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया, मारे जाड़ेके और डरसे उसके हाँथ काँप रहे थे।

"तुम्हारी माजी तुमको इनाम दे रही हैं।"—कहकर उसने पाकेटकेसमें से एक सौ रुपयेका नोट निकालकर उसकी तह खोलकर कुमुदके हाथमें दे दिया। मधुसूदनके जीवनमें यह पहली ही घटना है। कि उसने बिना कारण बिना माँगे नौकरको इस तरह दान दे डाला। इस असम्भव घटनासे मुरली और भी डर गया, दुबिधामें पड़कर काँपते हुए स्वरमें बोला—"हुजूर—"

"हुजूर क्या रे बेवकूफ ! निरा गधा ही है तू, ले ले अपनी माजीके हाथसे। इन रुपयोंसे जो तेरे मनमें आवे, खूब गरम कपड़े खरीदना।"

बात यहीं खतम हो गई—साथ ही उस दिनकी और सब बातें भी मानो खतम हो गईं। जिस स्रोतमें कुमुदका मन बह रहा था, वह एकाएक बन्द हो गया। मधुसूदनके मनमें आत्म-त्यागकी जो लहरें उसके चित्तकी संकीर्णताके किनारे तक टकरा रही थीं, वे भी एक मामूली-से नौकरके लिए तुच्छ प्रार्थनामें हिलगकर फिर वहींकी वहीं बिला गईं। इसपर पहलेकी तरह स्वाभाविक बात-चीत करना, दोनोंके लिए असाध्य था। इलाका खरीदनेके बारेमें बातचीत करनेके लिए शामसे ही कुछ आदमी बाहरके कमरेमें बैठे हुए हैं, यह बात मधुसूदन बिलकुल भूल ही गया था। अब यकायक उसे याद उठ आई, और लगा अपनेको धिक्कारने। चट उठकर खड़ा हो गया, बोला—"काम है ज़रा, जाता हूँ।" कह कर जल्दीसे चला गया।

जाते-जाते बीचमें श्यामासुन्दरीके कमरेके सामने आकर उसने ज़रा प्रकट स्वरमें ही कहा—"हो क्या?"

श्यामासुन्दरीने आज कुछ खाया न था; एक रफल ओढ़े चटाईपर मुरझाई हुई-सी पड़ी थी। मधुसूदनकी आवाज़ सुनकर झटपट दरवाजेके पास आकर बोली—"कहो, क्या है देवरजी?"

"पान नहीं दिये मुझे?"

[४४]

बाहर अँधेरेमें दरवाज़ेकी ओटमें एक आदमी अब तक चुप-चाप खड़ा था—हाबलू। यह कुछ कम हिम्मतकी बात नहीं। मधुसूदनसे यमकी तरह डरता है, फिर भी स्तब्ध खड़ा था लकड़ीके खिलौनेकी तरह। उस दिन ताऊजीकी फटकार खानेके बादसे फिर वह ताईके पास नहीं आया, लेकिन भीतरसे वह छटपटा रहा था। आज भी, शामके वक्त उसका आना खतरे

से खाली न था, परन्तु उसकी माँ जब उसे बिछौनेपर सुलाकर काम-धन्धेमें लग गई, तब उसके कानमें पड़ा इसराजका सुर। क्या बज रहा है और कौन बजा रहा है, उसे कुछ भी पता नहीं। हाँ, इतना वह जानता था कि बज ताईके कमरेमें ही रहा है। उसे मालूम था कि ताऊजी वहाँ न होंगे; क्योंकि वह जानता था ताऊके सामने बाजा बजावे, इतनी हिम्मत है किसमें ! ऊपर जाकर दरवाज़ेके पास पहुँचते ही उसकी निगाह पड़ी ताऊके जूतोंपर, वह जहाँ-का-तहाँ ठिठककर रह गया। भागना ही चाहता था, इतनेमें मालूम हुआ कि उसकी ताई बजा रही है, फिर उससे भागा न गया। दरवाज़ेकी ओटमें छिपकर सुनने लगा। पहलेसे ही वह ताईको जानता था, फिर आज तो उसके आश्चर्यकी सीमा न रही। मधुसूदनके चले जाते ही मनकी फूलको वह रोक न सका—कमरेमें घुसते ही कुमुदकी गोदमें जाकर उसके गलेसे लिपटकर कानोंके पास मुँह ले जाकर बोला—"ताईजी !"

कुमुदने उसे छातीसे लगाकर कहा—"अरे यह क्या, तुम्हारे हाथ इतने ठंडे क्यों हैं ! ठंडी हवामें घूम रहे थे मालूम होता है !"

हाबलूने कोई जवाब न दिया, वह डर गया। सोचने लगा—ताईजी अभी कहती हैं बिस्तरपर जाकर सोनेके लिए। कुमुदने उसे दुशालेमें लपेटकर अपनी देहकी गरमीसे भरका कर कहा—"अभी तक तुम सोने नहीं गये, गोपाल ?"

"तुम्हारा बाजा सुनने आया था। कैसे बजाती हो ताईजी ?"

"तुम जब सीख लोगे, तो तुम भी बजा सकोगे।"

"मुझे सिखा दोगी ?"

इतनेमें मोतीकी मा आ गई आँधीकी तरह; कमरेमें घुसते ही बोली—"अच्छा, डाकू, तू यहाँ आ छिपा है क्यों, मैं ढूँढ़ते-

ढूँढ़ते बावली हो गई। कहाँ तो शामको ज़रा कमरेसे बाहर निकलनेमें डर लगता है, और अब ताईजीके पास आनेमें डर कहाँ चला गया ? चल सो जाकर।"

हाबलू कुमुदको जकड़े रहा।

कुमुदने कहा—"अरे नहीं, रहने दो ज़रा।"

"इस तरह उसकी हिम्मत बढ़ जानेपर आगे चलकर बड़ी मुश्किल होगी, जीजी। इसे सुलाकर मैं अभी आती हूँ।"

कुमुदकी बड़ी इच्छा थी कि वह हाबलूको कुछ दे—खानेकी या खेलनेकी कोई चीज़। परन्तु देने लायक कुछ है नहीं, इसलिए उसकी मिट्ठी लेकर बोली—"आज जाकर सोओ, तुम तो राजा-बेटा हो, कल दोपहरको तुम्हें बाजा सुनाऊँगी, अच्छा।"

हाबलू करुण मुँह बनाकर माके साथ सोने चला गया।

थोड़ी देर बाद मोतीकी मा लौट आई। नवीनके षड्यन्त्रका क्या फल हुआ, यह जाननेको उसका मन चंचल हो रहा है। कुमुदके पास आकर बैठते ही निगाह पड़ी नीलमकी अँगूठीपर! समझ गई कि काम हो गया। बात छेड़नेके लिए बोली—"जीजी, तुम्हें यह बाजा किस तरह मिला ?"

कुमुदने कहा—"भइयाने भेज दिया है।"

"जेठजीने लाकर दिया होगा तुम्हें ?"

कुमुदने संक्षेपमें कहा—"हाँ।"

मोतीकी माको कुमुदके चेहरेपर हर्ष या आश्चर्यका कोई चिह्न ढूँढ़े न मिला।

"अपने भइयाके बारेमें तुमसे कुछ नहीं कहा ?"

"नहीं तो।"

"परसों तो वे आ ही जायँगे, उनके पास जानेकी कोई बात-चीत नहीं हुई ?"

"नहीं, भइयाके बारेमें कोई बात नहीं हुई।"

"तुमने खुद ही क्यों नहीं कहा, जीजी ?"

"मैं उनसे और सब-कुछ माँग सकती हूँ, लेकिन यह मुझसे न होगा।"

"तुम्हें माँगना न होगा, तुम यों ही चली जाना, जेठजी कुछ न कहेंगे।"

मोतीकी माको अभी तक एक बात मालूम नहीं हुई है कि मधुसूदनकी अनुकूलता कुमुदके लिए एक संकट-सी दिखाई दे रही है; इसके बदले मधुसूदन जो-कुछ चाहता है, कुमुदसे उतना चाहनेपर भी दिया नहीं जाता। उसका हृदय हो गया है दिवालिया, इसीलिए मधुसूदनसे दान लेकर ऋण बढ़ानेमें उसे इतना संकोच होता है। कुमुदिनीकी ऐसी भी इच्छा हुई कि भइया अगर और कुछ दिन ठहरकर आवें, तो वह भी अच्छा हो।

कुछ देर ठहरकर मोतीकी माने कहा—"आज तो ऐसा मालूम होता है कि जेठजी मानो प्रसन्न हैं।"

संशयसे व्याकुल दृष्टिसे कुमुदिनी मोतीकी माके मुँहकी ओर देखने लगी, बोली—"यह प्रसन्नता किस लिए है, कुछ समझमें नहीं आता, इसीसे मुझे डर लगता है। क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता।"

कुमुदनीकी ठोड़ी पकड़कर मोतीकी माने कहा—"कुछ न करना होगा; इतना भी नहीं समझती तुम, इतने दिनों तक तो वे कारोबारमें ही लगे रहे, तुम जैसी देवियोंको कभी देखा तक नहीं,—अब ज्यों-ज्यों तुम्हें पहचान रहे है, त्यों-त्यों तुम्हारा आदर बढ़ रहा है।"

"ज्यादा देखनेसे ज्यादा पहचानेंगे, ऐसी तो मुझमें कोई चीज है नहीं बहन। मैं खुद ही देख रही हूँ, मेरे भीतर बिलकुल पोल

है। वह पोल ही दिनपर दिन खुलती रहेगी, इसीलिए अचानक जब देखा कि वे खुश हुए हैं, मुझे मालूम हुआ कि वे ठगे गये। ज्यों ही उन्हें पोलका पता लगेगा, वे और भी गुस्सा हो जायँगे। वह गुस्सा ही तो सत्य वस्तु है, इसीसे मैं उनसे उतनी डरती नहीं।"

"तुम अपनी क़ीमत क्या जानो, जीजी! जिस दिन तुम उनके घर आई हो, उस दिन ही तुम्हारी तरफसे जो कुछ दिया गया है, ये सब मिलकर उसे कभी चुका नहीं सकते। तुम्हारे लालाजीको तो भाभीके लिये सागर-लंघन किये बिना चैन ही नहीं पड़ रहा है। मैं अगर तुमसे न प्रेम करती, तो इसी बातपर उनके साथ मेरा झगड़ा हो जाता।"

कुमुद हँसकर बोली—"बड़े भाग्यसे ऐसे देवर मिले हैं।"

"और तुम्हारी यह दौरानी शायद भाग्यकी जगह राहु या केतु होगी, क्यों?"

"तुम दोनों में से एकका नाम लेनेसे ही दोनोंका मतलब निकल आता है। दूसरेका नाम लेनेकी ज़रूरत ही नहीं पड़ती।"

मोतीकी माने दाहिना हाथ कुमुदके गलेमें डालकर कहा—"मेरी एक अरज है तुमसे।"

"क्या, बताओ?"

"मुझसे तुम 'मनकी बात'* कहा करो।"

"हमारा-तुम्हारा तो पहले ही से बहनापा हो गया है, बहन। 'मनकी बात' की और कसर रह गई थी, सो अब पूरी हो गई।"

"तो अब मुझसे तुम कुछ छिपाना नहीं। आज तुम ऐसा मुँह बनाये क्यों बैठी हो, मेरी कुछ समझमें नहीं आता।"

---

* बंगालमें स्त्रियाँ बहनापा या मित्रता जोड़ती है तो आपसमें इसी तरहका कोई-न-कोई प्यारका नाम रख लेती है। —अ०

कुछ देर तक कुमुद मोती की माके मुँहकी तरफ देखती रही, फिर बोली—"सच्चा कह दूँ! अपनेसे अब मैं बहुत डरने लगी हूँ।"

"यह क्या बात! अपनेसे डरना कैसा ?"

"मैं अब तक अपनेको जैसी समझ रही थी, आज सहसा देखती हूँ कि वैसी मैं नहीं हूँ। मनमें सब-कुछ ठीक करके निश्चिन्त होकर ही आई थी। भइया वगैरह जब कि दुबिधा कर रहे थे, मैंने ज़बरदस्ती नूतन पथपर पग आगे बढ़ाया, परन्तु जो आत्मा हिम्मत बाँधकर निकली थी, वह तो अब कहीं दिखाई ही नहीं देती।

"तुम्हारा हृदय प्रेम करना नहीं चाहता। अच्छा मुझसे तुम छिपाना नहीं, सच्ची कहना,—किसीसे प्रेम करती हो क्या ? प्रेम किसे कहते हैं, तुम जानती हो ?"

"अगर कहूँ कि हाँ जानती हूँ, तो तुम हँसोगी। सूर्योदयसे पहले ही जैसे प्रकाश फैलता है, मेरे प्रेमने भी उसी तरह मेरे हृदयाकाशको प्रकाशसे भर दिया था। क्षण-क्षणमें ऐसा मालूम होता था कि अब उगा सूरज, अब उगा। उस सूर्योदयकी कल्पना सिरपर लादे ही मैं चली आई हूँ, तीर्थका जल लेकर—फूलकी डाली सजाकर। जिन देवताको मैं इतने दिनोंसे सम्पूर्ण हृदयसे मानती आई हूँ, मालूम हुआ था कि उन्होंने मुझे उत्साह दिया। जिस तरह अभिसारके लिए जाते हैं, उसी तरह मैं आई थी। अँधेरी रातको मैंने अँधेरा समझा ही नहीं, आज उजालेमें आँखें खुलते ही भीतर कुछ और ही देख रही हूँ और बाहर कुछ और! अब वर्षके बाद वर्ष, क्षणके बाद क्षण बीतेंगे कैसे ?"

"तुम क्या समझती हो कि जेठजीसे तुम प्रेम कर ही नहीं सकतीं ?"

"कर सकती थी। हृदयमें एक ऐसी चीज़ भर लाई थी कि जिससे सब बातें अपने पसन्दकी कर लेना मेरे लिए बहुत आसान था। शुरूमें ही तुम्हारे जेठजीने उसे तोड़कर चकनाचूर कर डाला है। आज सब चीज़ें कठोर होकर मुझे सता रही हैं। मेरी देहकी ऊपरकी नरम चमड़ी मानो किसीने घिस-घिसकर उड़ा दी है, इसीसे चारों तरफ़से सब चीज़ें मुझे चुभ रही हैं—गड़ा रही हैं, जो कुछ छूती हूँ, उसीसे चौंक पड़ती हूँ। इसके बाद धीरे-धीरे जब चमड़ी कड़ी पड़ जायगी, तब शायद सब सह जायगा, परन्तु जीवनमें कभी आनन्द तो नहीं पा सकती।"

"कैसे कहा जा सकता है?"

"बड़ी आसानीसे। आज मेरे मनमें ज़रा भी मोह नहीं। मेरा जीवन एकदम निर्लज्जकी तरह स्पष्ट हो गया है। अपनेको बहलाये रखनेकी मुझे कहीं भी ज़रा गुंजाइश नहीं मिलती। मौतके सिवा क्या और कहीं भी स्त्रियोंके लिए सरककर बैठनेको ज़रा भी जगह नहीं? उनकी दुनियाको निष्ठुर विधाताने इतना तंग तैयार किया है।"

आज तक ऐसी उत्तेजनाकी बातें कुमुदके मुँहसे मोतीकी माने कभी नहीं सुनीं। ख़ासकर आजके दिन, जब कि जेठजी इतने प्रसन्न हो गये हैं, कुमुदके इस तीव्र अधैर्यको देखकर मोतीकी मा डर गई। समझ गई कि लताकी जड़में जाकर कुल्हाड़ी लगी है, ऊपरसे अनुग्रहका पानी सींचकर माली उसे अब हरी नहीं कर सकता।

ज़रा ठहरकर कुमुद बोली—"मैं जानती हूँ, मैं जो पतिको श्रद्धाके साथ आत्म-समर्पण नहीं कर सकी हूँ, यह मेरे लिए महापाप है, लेकिन उस पापसे भी मुझे उतना डर नहीं, जितना श्रद्धाहीन आत्म-समर्पणकी ग्लानिकी याद करके हो आता है।"

मोतीकी मासे कुछ जवाब देते न बना, वह किं-कर्तव्य-विमूढ़ होकर बैठी रही। ज़रा देर चुप रहकर कुमुदने कहा—"तुम भाग्यवान हो बहन, न जाने तुमने कितना पुण्य किया होगा, तभी तो तुम देवरजीको सम्पूर्ण हृदयसे प्रेम कर सकी हो। पहले मैं समझती थी कि प्रेम करना सहज है—सभी स्त्रियाँ सभी पतियोंसे अपने-आप ही प्रेम करती होंगी। आज देख रही हूँ कि प्रेम कर सकना ही सबसे दुर्लभ है, वह तो जन्म-जन्मान्तरकी तपस्यासे ही हो सकता है। अच्छा बहन, सच-सच कहना, सभी स्त्रियाँ क्या पतिको प्रेम करती हैं ?

मोतीकी मा ज़रा हँसकर बोली—"बिना प्रेमके भी अच्छी स्त्री बना जा सकता है, नहीं तो संसार चलेगा कैसे ?"

"यही दिलासा देती रहो मुझे ! और कुछ बन सकूँ चाहे नहीं, कमसे कम अच्छी स्त्री तो बन सकूँ। पुण्य उसीमें ज्यादा है, कठिन तपस्या तो वही है।"

"बाहरसे उसमें भी बाधाएँ पड़ती हैं।"

"अन्तरसे उन बाधाओंको दूर किया जा सकता है। मैं कर सकूँगी, मैं हार न मानूँगी।"

"तुम न कर सकोगी तो कर कौन सकेगा ?"

पानी ज़ोरसे पड़ने लगा। हवासे लैम्पका उजेला रह-रहकर चौंक पड़ने लगा। एक साथ जोरकी हवा मानो भीगे निशाचर पक्षीकी तरह पंख फटकारकर घरमें घुस आने लगी। कुमुदका शरीर और मन सिहर उठा। उसने कहा—"अपने देवताके नामसे अब मुझे बल नहीं मिल रहा। मन्त्र पढ़ती जाती हूँ, लेकिन मन मेरा मुँह फेर लेता है, किसी तरह बोलता ही नहीं। इसीसे मुझे बड़ा डर मालूम होता है।"

बनावटी बातसे झूठा भरोसा देना मोतीकी माको रुचा नहीं। कुछ उत्तर न देकर उसने कुमुदको छातीसे लगा लिया। इतनेमें बाहरसे आवाज़ आई—"मझली बऊ!"

कुमुदने प्रसन्न होकर कहा—"आओ, आओ देवरजी! भीतर चले आओ।"

"शामकी रोशनी मुझे घरमें दिखाई नहीं दी, इसीसे ढूँढ़ने निकला हूँ।"

मोतीकी माने कहा—"बलिहारी है! बिना मणिका फणी देखना हो तो देख लो, जीजी!"

"कौन मणि है और कौन फणी, सो तो फुसकारसे ही मालूम पड़ जाता है, क्यों बऊरानी।"

"मुझे गवाह मत बनाओ, देवरजी।"

"जानता हूँ मैं, इसमें मैं ही ठगा जाऊँगा!"

"तो तुम अपनी खोई चीज़को उठा ले जाओ, मैं रोकूँगी नहीं।"

"खोई चीज़के लिए वे बेचेन थोड़े ही हैं जीजी, वे इस कहानेसे बऊरानीके चरणोंके दर्शन करने आये हैं।"

"बहानेकी ज़रूरत क्या है? चरण तो अपने-आप ही पकड़ाई दे चुके हैं। सबसे बढ़कर जो असाध्य है, उसके लिए तपस्या करेगा कौन? वह जब आता है तो सहज ही में आ जाता है। दुनियामें हज़ारों-लाखों आदमी मुझसे कहीं योग्य हैं; लेकिन ऐसे सुन्दर चरणोंको छू सकनेका सौभाग्य मुझे ही हुआ, वे तो नहीं छू सके। नवीनका जन्म यों ही बिना-मूल्य सार्थक हो गया।"

"ओह, तुम न जाने क्या कहते रहते हो देवरजी, जिसका ठीक नहीं। तुम अपनी इन्साइक्लोपीडियासे शायद यह—"

"ऐसी बात नहीं कह सकतीं, बऊरानी। 'चरण' का क्या अर्थ है, सो वे क्या जान सकते हैं? बकरीके खुरकी तरह पतली एड़ियोंवाले जूतोंमें देवियोंके पैर उन्होंने कड़े जनानखानेमें क़ैद कर रखे हैं। 'इन्साइक्लोपीडिया' वालों की क्या ताक़त है कि वे इन पैरोंकी महिमा समझें। लक्ष्मण ने निर्वासनके चौदह वर्ष सिर्फ़ सीताके पैरोंकी तरफ़ देखते हुए ही बिता दिये, इसका अर्थ हमारे देशके देवर ही समझ सकते हैं। सो तुम पैरोंपर साड़ी ढके देती हो तो दो। डरनेकी कोई बात नहीं, पद्म रातको बन्द रहता है, सो क्या हमेशाके लिए थोड़े ही,—पखड़ियाँ तो फिर खुलती ही हैं।"

"भई 'मनकी बात', इसी तरह स्तुति करके शायद देवरजीने तुम्हारे मनको मोहा होगा?"

"अरे, बिलकुल नहीं जीजी, ये वो आदमी ही नहीं जो मीठी बातोंका फिज़ूल खर्च करते फिरें।"

"स्तुतिकी शायद ज़रूरत नहीं पड़ती होगी?"

"बऊरानी, देवियोंकी स्तुतिकी भूख तो किसी भी तरह नहीं मिटती, इसकी उन्हें सख़्त ज़रूरत है; लेकिन शिवकी तरह मैं कुछ पञ्चानन तो हूँ नहीं, सिर्फ़ एक मुखकी स्तुति तो अब उनके लिए पुरानी पड़ गई है, उससे देवीको अब रस नहीं मिलता।"

इतनेमें मुरली बैराने आकर नवीनको खबर दी—"राजा साहब आफ़िसमें बैठे आपको याद कर रहे हैं।"

सुनकर नवीनका मन खराब हो गया। उसने सोचा था कि मधुसूदन आज आफिससे आकर सीधे ऊपरके कमरेमें आवेंगे; परन्तु फिर मालूम होता है नाव टापूमें हिलग गई।

नवीनके चले जानेपर मोतीकी माने धीरेसे कहा—"लेकिन जेठजी तुम्हें प्यार करते हैं, यह बात याद रखना।"

कुमुदने कहा—"यही तो मुझे आश्चर्य मालूम होता है।"

"कहती क्या हो! तुम्हें प्यार करना आश्चर्य है। क्यों ? वे क्या पत्थरके हैं ?"

"मैं उनके योग्य नहीं हूँ।"

"तुम जिनके योग्य नहीं, वह पुरुष है कहाँ ?"

"उनकी कितनी शक्ति है, कितना सम्मान है, कितनी पकी हुई बुद्धि है, वे कितने बड़े आदमी हैं। मुझमें वे कितना पा सकते हैं ? मैं कैसी कच्ची हूँ, यह बात मैं दो ही दिनमें यहाँ आकर समझ गई हूँ, इसीलिए जब वे प्रेम करते हैं, तभी मुझे सबसे ज़्यादा डर लगता है। अपनेमें मैं तो कुछ पाती ही नहीं। इतनी बड़ी पोल लेकर मैं उनकी सेवा करूँ तो किस तरह ? कल रातको बैठी-बैठी सोचने लगी—मानो मैं एक बैरंग लिफाफा हूँ, मुझे पैसे देकर लेना पड़ा है, खोलते ही चट पकड़ी जाऊँगी कि भीतर चिट्ठी भी नहीं है।"

"जीजी, तुम्हारी बातोंपर तो मुझे हँसी आती है! माना कि जेठजीका बड़ा-भारी कारोबार है, व्यवसाय-बुद्धिमें उनकी बराबरीका कोई नहीं, लेकिन तुम क्या उनके कारबारकी मैनेजरी करने आई हो जो योग्यता नहीं जानकर डरती हो ? जेठजी अगर मनकी बात खोलकर कहें, तो ज़रूर कहेंगे कि वे भी तुम्हारे योग्य नहीं।"

"यह बात तो उन्होंने मुझसे कही थी।"

"विश्वास नहीं हुआ, क्यों ?"

"नहीं। मुझे तो उलटा डर मालूम हुआ था। मैंने समझा कि वे मेरे विषयमें ग़लती कर रहे हैं, वह भूल कभी न कभी पकड़ जायगी।"

"क्यों तुमने ऐसा समझा ? बताओ।"

"बताऊँ ? यह जो सहसा मेरा ब्याह हो गया, यह तो सब कुछ मैंने अपने आप ही रच डाला—परन्तु कैसे अद्भुत मोहसे,

कैसे लड़कपनसे ? जिस बातने मुझे भुला रखा था, उसमें तो सब-कुछ पोल-ही-पोल थी। फिर भी ऐसा दृढ़ विश्वास, ऐसी विलक्षण जिद थी कि उस दिन मुझे कोई भी किसी तरहसे न रोक सकता था। भइया तो निश्चित जानते थे, इसीसे व्यर्थ उन्होंने कोई बाधा नहीं दी, लेकिन कितने डरे थे, कितने उद्विग्न हुए थे, सो क्या मैं समझती नहीं थी ? समझकर भी अपनी जिदको मैंने जरा भी नहीं रोका, इतनी बड़ी नासमझ हूँ मैं। आजसे हमेशा मैं केवल कष्ट ही पाऊँगी, कष्ट दूँगी और प्रतिदिन मनमें समझूँगी कि यह सब कुछ मेरा अपना बनाया हुआ है।"

मोतीकी मा क्या कहे, उसकी कुछ समझमें ही न आया। कुछ देर चुप रहकर उसने पूछा—"अच्छा जीजी, तुम्हें ब्याह करना है, इस बातका तुमने निश्चय किया क्या सोचकर ?"

"तब मैं निश्चित जानती थी कि पति भला-बुरा कैसा भी क्यों न हो, स्त्रीके सतीत्व-गौरवके प्रमाणके लिए वह एक उपलक्ष-मात्र है। इस विषयमें मुझे जरा भी सन्देह न था कि प्रजापतिने जिसको स्वामी निश्चित कर दिया है, उसीको मैं प्रेम करूँगी। बचपनसे मैंने सिर्फ अपनी माको देखा है, पुराणमें पढ़ा है—कितनी ही कथाएँ सुनी हैं, मुझे मालूम हुआ कि शास्त्रके अनुसार अपनेको चलाना बहुत आसान बात है।"

"जीजी, उन्नीस वर्षकी कुमारीके लिए शास्त्र नहीं लिखे गये हैं।"

"आज समझी हूँ कि संसारमें प्रेम तो एक 'ऊपरी आमदनी' है। उसे अलग रखकर ही धर्मको जकड़कर संसार-समुद्रमें बहना पड़ेगा। धर्म यदि सरस होकर फूल न दे, तो कमसे कम वह सूखा बनकर बहता तो रहे !"

मोतीकी मा स्वयं विशेष कुछ न कहकर कुमुदके मुँहसे ही सब बातें कहला लेने लगी।

[४५]

मधुसूदनने आफिसमें जाकर सुना तो वहाँ भी खबर अच्छी नहीं थी। मद्रासका कोई बड़ा बैंक फेल हो गया है, जिसके साथ उसकी कम्पनीका व्यापारिक सम्बन्ध था। उसके बाद सुना कि किसी डायरेक्टरकी तरफसे कोई-कोई कर्मचारी मधुसूदनको बिना जताये ही रजिस्टर वग़ैरह देख रहे हैं। अब तक मधसूदनपर सन्देह करनेकी किसीने भी हिम्मत न की थी, एकने ज्यों ही ज़रा इशारा किया कि मानो चटसे कोई मन्त्रशक्ति-ही छूट गई। बड़े कामकी छोटी त्रुटियाँ पकड़ना बहुत आसान है, जो मातबर सेनापति होते हैं, वे फुटकर हारोंमें ही कुल मिलाकर बहुत ज्यादा जीतते हैं। मधुसूदन हमेशासे ऐसी ही जीतमें रहा है,—इसीसे चुन-चुनकर उन्हीं हारोंपर किसीकी दृष्टि ही नहीं पड़ी। लेकिन चुन-चुनकर उनकी एक लिस्ट बनाकर अगर साधारण लोगोंके सामने रखी जाय, तो वे अपनी बुद्धिकी तारीफ करते हैं, कहते हैं—हम होते तो ऐसी ग़लती हरगिज न करते। कौन उन्हें समझावे कि टूटी नावपर बैठकर ही मधुसूदन पार हो रहा है, नहीं तो पार होना ही मुश्किल था, दरअसल बात तो यह कि नाव किनारे तक पहुँच गई। आज, नावको पानीसे बाहर निकालकर उसके छेदोंपर विचार करते समय, उनके तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं, जो सकुशल घाटसे आ लगे हैं। इस तरहकी टूक-टूक बिखरी हुई समालोचनासे अनाड़ियोंको चकमा देना सहज है। साधारणतः अनाड़ियोंको कुछ मुनाफा पानेकी ही इच्छा रहती है, वे विचार करना नहीं चाहते। लेकिन अगर कहीं वह

विचार करने बैठें, तो मामला खतरनाक हो जाता है। इन सब बेवकूफोंपर मधुसूदनको बहुत ही क्रोध आया, जिसमें अवज्ञा भी मिली हुई थी, लेकिन जहाँ बेवकूफोंकी प्रधानता है, वहाँ उनके साथ समझौता किये बिना दूसरी गति नहीं। पुरानी नसेनी चर्राती है, डगमगाती है, टूट जानेका डर दिखाती है; इसलिए जो उस-पर पैर रखकर चढ़ता है, उसे उसकी रक्षा करनी ही पड़ती है। गुस्सा तो ऐसा आता है कि दे एक लात, सो टूट जाय, लेकिन इससे तो विपत्ति और भी बढ़ जानेकी सम्भावना है।

अपने बच्चेपर आफ़त आनेपर सिंहिनी जैसे अपने शिकारका लोभ भूल जाती है, व्यापारके विषयमें मधुसूदनके मनकी अवस्था भी ठीक वैसी ही है। यह तो उसकी अपनी सृष्टि है; इसपर जो उसका दर्द है, वह खासकर रुपयेका दर्द नहीं है। जिसमें रचना-शक्ति है, वह अपनी रचनामें अपनेको ही ज्यादातर पाता है। उतना पानेमें भी जब आफ़त मालूम होने लगती है, तो उसके लिए जीवनके और सब सुख-दुःख और कामनाएँ तुच्छ हो जाती हैं। कुमुदने कुछ दिनोंसे उसे प्रबलतासे अपनी ओर आकर्षित किया था, वह आकर्षण आज यकायक ढीला पड़ गया। जीवनमें प्रेमकी आवश्यकताको मधुसूदनने प्रौढ़ वयमें बड़े ज़ोरोंके साथ अनुभव किया था। यह उपसर्ग जब असमयमें दिखाई देता है, तो निरंकुशता (या व्यग्रता) आ ही जाती है। मधुसूदनको कुछ कम चोट नहीं पहुँची थी, परन्तु आज उसकी वह वेदना गई कहाँ ?

नवीनके घर आते ही मधुसूदनने उससे पूछा—"मेरी प्राईवेट जमा-खर्चकी बही बाहरके किसी आदमीके हाथ पड़ी थी क्या' मालूम है तुम्हें ?"

नवीन चौंक उठा, बोला—"यह क्या बात ?"

"तुम्हें इसकी खोज करनी होगी—खजांचीके पास कोई आता-जाता है या नहीं।"

"रतिकान्त तो विश्वस्त आदमी है, वह क्या कभी—"

"उसके अनजानमें मुहर्रिरोंसे कोई बातचीत चला रहा है, सन्देहका यही कारण है। खूब सावधानीसे पता लगाना है, किन लोगोंका हाथ है इसमें।"

नौकरने आकर खबर दी कि रसोई ठंडी हुई जा रही है। मधुसूदन उसकी बातपर कुछ ध्यान न देकर, नवीनसे कहने लगा—"जल्दीसे हमारी गाड़ी तैयार करनेके लिए कह दो।"

नवीनने कहा—"खाकर नहीं जाओगे ? रात हो गई।"

"बाहर ही खा-पी लूँगा, काम है।"

नवीन सिर झुकाये कुछ सोचता हुआ बाहर चला गया। उसने जो चाल चली थी, वह भी शायद खुल जायगी।

यकायक फिर मधुसूदनने नवीनको बुलाकर कहा—"वह चिट्ठी कुमुदको दे आओ।"

नवीनने देखा कि विप्रदासकी चिट्ठी है। समझ गया कि चिट्ठी आज सवेरे ही आई है, शामको अपने हाथसे कुमुदको देनेके लिए अपने पास रख लिया था। इसी तरह हर बार मिलनके लिए कुछ अर्घ्य हाथमें ले चलनेकी इन्हें इच्छा रहती है। आज आफिसके काममें सहसा तूफान उठ खड़ा होनेसे इनका यह प्रेमोपहार बीच ही में डूब गया।

मदरासका जो बैंक फेल हुआ है, उसपर लोगोंका पूरा विश्वास था। उसके साथ घोषाल-कम्पनीका जो संबन्ध है, उसके बारेमें अध्यक्षों या हिस्सेदारोंमें से किसीके भी मनमें कोई संशय न था। ज्यों ही मशीन बिगड़ी कि सब कहने लगे—'हम शुरूसे ही जानते थे', इत्यादि।

घातक आघातके समय जब कि साथ कोशिश करके व्यवसायकी रक्षा करनेकी जरूरत होती है, उसी समय पराजयके विषयमें

दोषारोप प्रबल हो उठता है; और जिनपर किसीकी ईर्ष्या होती है, उन्हें जेरबार करनेको कोशिश व्यापारको और भी चौपट कर देती है। मधुसूदन इस बातको जानता था कि ऐसी कोशिश की जायगी। मद्रास-बैंकके फेल होनेसे घोषाल-कम्पनीको कितना नुक़सान पहुँचेगा, इस बातको निश्चित रूपसे जाननेका तो अभी समय ही नहीं आया, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मधुसूदनकी प्रतिष्ठा नष्ट करनेमें यह भी एक मसालेका काम देगा। कुछ भी हो, दिन अच्छे नहीं, अब और सब बातें भूलकर इसीके लिए मधु सूदनको कमर कसनी होगी।

रातको मधुसूदनसे बातचीत होनेके बाद नवीनने घर आकर देखा कि अभी तक कुमुदके साथ मोतीकी माकी बातचीत हो रही है। नवीनने कहा—"बऊरानी, तुम्हारे भइयाकी चिट्ठी आई है।"

कुमुदने चौंककर चिट्ठी हाथमें ली। खोलते हुए हाथ काँपने लगे। डर गई, शायद कोई अप्रिय समाचार हो। शायद यह लिखा हो कि अभी उनका आना न होगा। बहुत धीरे-धीरे लिफाफा खोलकर चिट्ठी पढ़ी। जरा देर चुप रही। चेहरेसे तो यही मालूम होता है कि दिलपर कहीं चोट पहुँची है। नवीनसे बोली—"भइया आज शामको तीन बजे कलकत्ते आ गये हैं।"

"आज ही आ गये! उनकी तो—"

"लिखा है कि दो एक दिन बाद आनेकी बात थी, लेकिन किसी खास वजहसे पहले ही चला आना पड़ा।"

कुमुदने और कुछ नहीं कहा। चिट्ठीके आखिरमें लिखा था—'जरा तबीयत ठीक होते ही मैं तुमसे मिलने आऊँगा, इसके लिए तुम उद्विग्न न होना।' यही बात पहलेकी चिट्ठीमें लिखी थी। क्यों, क्या हुआ है? कुमुदने कौन-सा अपराध किया है?

यह तो मानो एक तरहसे साफ़-साफ़ ही कहना है कि तुम हमारे घर न आना। कुमुदके जीमें ऐसी आई की ज़मीनपर धूलमें लोटकर ज़रा रो ले ; लेकिन उस आवेगको रोककर वह पत्थरकी भाँति कठोर होकर बैठी रही।

नवीन समझ गया कि चिट्ठीमें कुछ-न-कुछ कड़ी मार है। कुमुदका चेहरा देखकर करुणासे उसका मन व्यथित होने लगा। बोला—"बऊरानी, उनके पास तो कल ही तुम्हें जाना चाहिये।"

"नहीं, मैं नहीं जाऊँगी।"—ज्यों ही उसके मुँहसे यह बात निकली, फिर उससे रहा न गया, दोनों हाथोंसे मुँह ढककर रो उठी।

मोतीकी माने कोई प्रश्न न करके कुमुदको छातीसे लगा लिया। कुमुदने रुँधे हुए गलेसे कहा--"भइयाने मुझे आनेके लिए मना कर दिया है।"

नवीनने कहा—"नहीं-नहीं, बऊरानी, तुमने ज़रूर समझनेमें भूल की है।"

कुमुदने ज़ोरसे सिर हिलाकर जता दिया कि उसने ज़रा भी ग़लती नहीं की।

नवीनने कहा—"तुमने कहाँ ग़लती की है, बताऊँ ? विप्रदास बाबूने समझा है कि भाई साहब तुम्हें वहाँ भेजना न चाहेंगे ; इसीसे, कहीं तुम्हें अपमानित न होना पड़े, उन्होंने तुम्हें बुलानेकी कोशिश नहीं की। कहीं पीछे तुम्हें कष्ट न पहुँचे, तुम व्यथित न हो, इस खयालसे, तुम्हें बचानेके लिए उन्होंने अपनी तरफसे ही तुम्हारा रास्ता साफ़ कर दिया है।"

कुमुदको क्षण-भरमें बड़ा आराम मालूम हुआ। अपनी भीगी आँखोंकी पलकोंको नवीनके मुँहकी ओर उठाकर चुपचाप स्निग्ध दृष्टिसे देखती रही! नवीनकी बात पूर्णतया सत्य है, इस बातमें

अब उसे ज़रा भी सन्देह न रहा। भइयाके स्नेहको समझनेमें क्षण-भरके लिए भी उसने ग़लती की, इसपर उसने अपनेको मन-ही-मन धिक्कारा। हृदयको एक प्रकारका बल मिल गया। अभी तुरत ही भइयाके पास दौड़ी न जाकर उनके आने की वह प्रतीक्षा जो कर सकेगी, यही अच्छा है।

मोतीकी माने ठोड़ीसे हाथ लगाकर कुमुदका मुँह उठाया, बोली—"ओ:फ़्हो! भइयाकी बातकी ज़रा भी आड़ी हवा लगी नहीं कि एकदम अभिमानका समुद्र उमड़ उठा।"

नवीनने कहा—"बऊरानी, तो कलके लिए तुम्हारे चलनेकी तैयारियाँ करूँ न।"

"नहीं, इसकी कोई ज़रूरत नहीं।"

"वाह, ज़रूरत कैसे नहीं? तुम्हें ज़रूरत नहीं तो न सही, मुझे तो है।"

"तुम्हें ज़रूरत किस बातकी?"

"वाह! हमारे भइयाको तुम्हारे भइया जैसा कुछ समझेंगे, वैसा ही समझ लेने देंगे हम! अपने भइयाकी तरफ़से मैं उनसे लड़ूँगा। तुम्हारे मुक़ाबिले हार नहीं माननेका। कल तुम्हें उनके यहाँ जाना ही होगा।"

कुमुदिनी हँसने लगी।

"बऊरानी, यह मज़ाककी बात नहीं है। हमारे घरानेकी अपकीर्तिसे तुम्हारा गौरव घटता है। अब तुम मुँह-हाथ धोओ, जाओ, भोजन करना है। भाई साहबका तो आज मैनेजर साहबके यहाँ न्योता है। मैं समझता हूँ, शायद आज वे भीतर सोने भी न आयेंगे; मैं देख आया हूँ, बाहरके कमरेमें उनके बिस्तर लग गये हैं।"

इस समाचारसे कुमुदको भीतर-ही-भीतर कुछ आराम मिला, उसके दूसरे ही क्षण आराम मिलनेपर शरम मालूम हुई।

रातको, सोते समय, मोतीकी माके साथ नवीनकी इस बारेमें बातचीत होने लगी। मोतीकी माने कहा—"तुमने तो जीजीको दिलासा दे दी, लेकिन अब ?"

"लेकिन अब क्या ? नवीनकी ज़बान और काम एक है। बऊरानीको जाना ही पड़ेगा, फिर जो होगा सो देखा जायगा।"

नये-बने राजाओंको पारिवारिक सम्मानका ज्ञान बहुत ही उग्र होता है। ये निश्चयपूर्वक समझ लेते हैं कि विवाह हो जानेके बाद नववधू अपने पूर्व पदसे वहुत ऊपर चढ़ गई है, इसलिए उसके मायका नामकी कोई बला है, इस बातको भूलने देना ही ठीक है। ऐसी दशामें दोनों ओर रक्षा करना यदि असम्भव मालूम हो; तो कम-से-कम एक ओरकी रक्षा तो करनी ही चाहिए। वह 'ओर' कौनसी है, उसका नवीनने मन-ही-मन निर्णय कर लिया। कुछ दिन पहले वह इस बातकी स्वप्नमें भी कल्पना न कर सकता था कि जहाँ भाई साहबका चरम अधिकार है, वहाँ भी किसी दिन भाई साहबके साथ लड़ाई छेड़नेका साहस वह कर सकेगा।

पति-पत्नीने परामर्श करके निश्चय किया कि यह प्रस्ताव मधुसूदनके सामने रखा जाय कि कल सवेरे कुमुद सिर्फ़ एक दफ़े विप्रदासके साथ कुछ देरके लिये भेंट कर आवे। अगर भाई साहब राज़ी हुए और कुमुदको वहाँ भेजा गया, तो दो-चार दिन कुमुदके वहीं बने रहनेका क़यासमें आने लायक़ बहाना बनानेमें नवीनको कुछ भी कठिनाई न होगी।

मधुसूदन बहुत रात बीते घर आया, साथमें था काग़ज़-पत्रों-का बोझा। नवीवने झाँककर देखा भाई साहब सोनेकी तैयारी न करके नाकपर चश्मा लगाकर नीली पेन्सिल हाथमें लिए आफिस-रूमकी टेबिलपर किसी दस्तावेज़पर निशान लगा रहे हैं,

और बीच-बीचमें नोट-बुकोंमें कुछ नोट भी करते जाते हैं। नवीन हिम्मत बाँधकर कमरेमें घुस पड़ा, और बोला—"भाई साहब, मैं भी कुछ काम करवाऊँ तुम्हारे साथ ?"

मधुसूदनने संक्षेपमें कहा—"नहीं।" व्यापारके इस संकटको मधुसूदन पूरी तौरसे स्वयं समझ लेना चाहता है; सब बातोंपर उसकी दृष्टि पड़ना आवश्यक है; इस काममें औरकी दृष्टिकी सहायता लेना अपनेको कमज़ोर बनाना है।

नवीनको कुछ कहनेका बहाना न मिला, तो वापस चला आया। और यह बात भी उसकी समझमें आ गई कि जल्दी कोई मौक़ा भी नहीं मिलनेका। नवीनकी प्रतिज्ञा है कि कल सवेरे ही बऊरानीको रवाना कर देगा। आज रात ही को उसके लिए सम्मति वसूल कर लेनी चाहिए।

कुछ देर बाद एक लैम्प भाई साहबकी टेबिलपर रखकर नवीनने कहा—"रोशनी बहुत कम थी।"

मधुसूदनने अनुभव किया—इस दूसरे लैम्पसे उसके काममें बहुत-कुछ सुभीता हुआ, परन्तु इस बहानेसे भी कोई बात न हो सकी, और नवीनको फिर बाहर चला आना पड़ा।

थोड़ी देर बाद नवीनने गुड़गुड़ीपर सुलगी हुई चिलम रख कर मधुसूदनके अभ्यासके अनुसार उसे चौकीके बाईं तरफ रखके आहिस्तेसे उसकी नली टेबिलपर धर दी। मधुसूदनने उसी वक्त महसूस किया कि इसकी भी जरूरत थी। क्षण-भरके लिए पेन्सिल रखकर वह हुक्का पीने लगा।

मौक़ा पाकर नवीनने बात छेड़ दी—"भाई साहब, सोने नहीं जाओगे ? बहुत रात हो चुकी है। बऊरानी तुम्हारे लिए शायद बैठी जाग रही होंगी।"

"बैठी जाग रही होंगी"—यह बात क्षण-भरमें मधुसूदनके कलेजेमें जाकर चुभ गई। पानीकी ऊँची लहरोंपर जहाज़ जब डगमगाता हुआ चल रहा था, एक छोटीसी चिड़िया आकर मानो उसके श्यामल द्वीपकी एकान्त वनच्छायाका दृश्य सामने आ गया; परन्तु इन सब बातोंपर ध्यान देनेके लिए अभी समय नहीं—जहाज़ चलाना होगा।

मधुसूदन अपने मनकी इस ज़रासी चंचलतासे डर गया। उसी समय उसने उसे धर दबाया, और बोला—"बड़ी बहूसे कह दो कि सो जायँ, मैं आज बाहर सोऊँगा।"

"नहीं तो उन्हें यहीं भेज दूँ"—कहकर नवीन गुड़गुड़ीकी चिलम फूँकने लगा।

मधुसूदनने यकायक झुँझलाकर कहा—"नहीं, नहीं।"

नवीन इतनेपर भी विचलित न हुआ, बोला—"वे जो बैठी हैं तुम्हारे साथ दरबार करनेको।"

रूखे स्वरमें मधुसूदनने कहा—"अभी दरबारके लिए वक्त नहीं।"

"तुम्हारे पास तो वक्त नहीं, भाई साहब, लेकिन उनके पास भी तो समय थोड़ा है।"

"क्या, हुआ क्या है?"

"ख़बर आई है कि विप्रदास कलकत्ते आ गये हैं, इसीसे बऊरानी कल सबेरे—"

"सबेरे जाना चाहती हैं?"

"ज्यादा देरके लिए नहीं, सिर्फ एक बार जा—"

मधुसूदनने ज़ोरसे हाथ हिलाकर कहा—"हाँ, सो जाती क्यों नहीं, जायँ, चली जायँ। बस, अब नहीं, तुम जाओ।"

हुक्म वसूल होते ही नवीन वहाँसे भागा। बाहर निकला ही था कि मधुसूदनकी आवाज़ कानोंमें पहुँची—"नवीन !"

डर मालूम हुआ कि फिर शायद भाई साहब हुक्म वापस न ले लें। कमरेमें आकर खड़े होते ही मधुसूदनने कहा—"बड़ी बहू अभी कुछ दिन अपने भइयाके यहाँ ही जाकर रहेंगी, तुम सब इन्तज़ाम कर देना।"

नवीनको भय हुआ कि भाई साहबके इस प्रस्तावपर उसके चेहरेसे कहीं उत्साह न प्रकट हो जाय। यहाँ तक कि वह ज़रा दुविधाका भाव दिखाकर सिर खुजाने लगा। बोला —"बऊरानीके चले जानेसे घर सूना-सूना सा मालूम देगा।"

मधुसूदन कुछ जवाब न देकर पेचवानकी नली रखकर अपने काममें जुट गया। समझ गया कि प्रलोभनका रास्ता अभी तक खुला हुआ है—उधर बिलकुल नहीं।

नवीन खुश होकर चला गया। मधुसूदनका काम चलता रहा; परन्तु कब इस 'काम' की धाराके पाससे और एक उल्टी मानस-धारा खुल पड़ी, इस बातको बहुत देर तक वह खुद ही न समझ सका। मालूम नहीं कब, नीली पेन्सिलने जरूरत पूरी होनेसे पहले ही रुखसत ले ली, पेचवानकी नली पहुँच गई मुँहमें। दिनमें मधुसूदनके मनने जब कुमुदकी चिन्ताके विषयमें बिलकुल छुट्टी ले रखी थी, तब पिछले दिनोंकी तरह अपनेपर अपना एकाधिपत्य पुनः प्राप्त हो जानेसे मधुसूदन बहुत खुश हुआ था; परन्तु अब ज्यों-ज्यों रात बीतती जाती है, त्यों-त्यों उसे सन्देह होने लगा कि शत्रु दुर्ग छोड़कर अभी भागा नहीं है—सुरंग की कोठरीमें दुबका हुआ है।

वर्षा थम गई है, कृष्णपक्षका चन्द्रमा बग़ीचेके एक कोनेमें खड़े पुराने सीसमके पेड़के ऊपर आकाशमें चढ़कर भीगी हुई

पृथ्वीको विह्वल कर रहा है। ठंडी हवा चल रही है। मधुसूदनका शरीर रजाईके भीतर किसी गरम कोमल स्पर्शके लिए माँग पेश करने लगा, नीली पेन्सिलको ज़ोरसे दबाकर वह रजिस्टरोंपर झुक पड़ा ; परन्तु उसके हृदयके गम्भीर आकाशमें एक बात क्षीण किन्तु स्पष्ट आवाज़के साथ गूँजने लगी—"बहूरानी शायद बैठी जाग रही होंगी।"

मधुसूदनने प्रतिज्ञा की थी कि कोई खास काम आज वह रातको पूरा कर ही रखेगा। वह कल सवेरे तक पूरा होता, तो भी कोई हानि न थी, लेकिन प्रतिज्ञाका पालन करना उसके व्यवसायकी धर्मनीति है। किसी भी कारणसे यदि उससे वह भ्रष्ट हो जाय, तो अपनेको वह किसी भी तरह माफ नहीं कर सकता। अब तक उसने अपने धर्मकी रक्षा बड़ी कठोरतासे ही की है। उसका पुरस्कार भी उसे काफी मिला है ; परन्तु इधर कुछ दिनोंसे दिनके मधुसूदनके साथ रातके मधुसूदनका सुर नहीं मिलता—एक वीणाके दो तारोंकी तरह। जिस दृढ़ प्रतिज्ञाको करके वह डेस्कपर झुककर जमके बैठा था—जब बहुत रात हो गई, तो उस प्रणकी किसी एक सँधमेंसे एक उक्ति भौंरेकी तरह भनभनाने लगी—"बहू-रानी शायद बैठी जाग रही होंगी।"

उठ बैठा। बत्ती बिना बुझाये, काग़ज़ात रजिस्टर वग़ैरह ज्यों-के-त्यों छोड़कर चल दिया ऊपर अपने सोनेके कमरे की तरफ़। अन्तःपुरमें, तिमंज़िलेपर जानेके रास्तेमें आँगनको घेरे हुए जो बरामदा पड़ता है, उस बरामदेमें रेलिंगके किनारे श्यामासुन्दरी बैठी थी। चन्द्रमा उस समय बीच आकाशमें था, उसकी चाँदनीने आकर उसे घेर लिया है। उस समय वह ऐसी दिखाई दे रही थी, मानो किसी उपन्यासके भीतरकी तसवीर हो ; अर्थात् मानो वह रोज़मर्राकी आदमिन नहीं है,

बहुत पासके अत्यन्त परिचयके आवरणसे निकलकर मानो वह बहुत दूर आ पहुँची है। वह जानती थी कि मधुसूदन इसी रास्तेसे सोनेके लिए ऊपर जाता है—जानेका वह दृश्य उसके लिए अत्यन्त तीव्र वेदनामय है, इसीसे उसका आकर्षण इतना प्रबल है; परन्तु केवल व्यर्थ वेदनासे अपने कलेजेको छलनी कर डालनेका पागलपन ही उसकी इस प्रतीक्षाका कारण नहीं, बल्कि उसमें एक आशा भी है—शायद क्षण-भरके लिए कुछ हो जाय; असम्भव कब सम्भव हो जाय, इसी आशासे रास्तेके किनारे बैठकर यह जगना है।

मधुसूदन उसकी तरफ़ एक नज़र फेंककर ऊपर चला गया। श्यामासुन्दरी अपने भाग्यपर गुस्सा होकर ज़ोरसे रेलिंग पकड़कर उसपर अपना सिर धुनने लगी।

ऊपर अपने कमरेमें जाकर मधुसूदनने देखा कि कुमुद बैठी जाग नहीं रही है,—घरमें अँधेरा पड़ा है, गुस्लखानेके अधखुले दरवाज़ेमें से थोड़ासा प्रकाश आ रहा है। मधुसूदनने एक दफे सोचा कि लौट जाये, लेकिन न जा सका। उसने गैस-बत्ती जला दी। कुमुद बिस्तरपर रजाई ओढ़े आरामसे सो रही है—बत्ती जलानेपर भी नींद न छूटी। कुमुदको इस सुखकी नींदपर उसे गुस्सा आया। बड़ी अधीरताके साथ मशहरी उठाकर धमसे पलंगपर जाकर बैठ गया। पलंग चरमराया और काँप उठा।

कुमुद चौंक पड़ी, उठकर बैठ गई। उसे मालूम था कि आज राजासाहब न आयँगे। यकायक उन्हें देखकर उसके चेहरेपर ऐसा एक भाव झलक उठा कि उसे देखकर मधुसूदनके कलेजेमें मानो शूल-सा चुभ गया। माथेमें खून चढ़ गया, कहने लगा—"मुझे तुम किसी भी तरह बरदाश्त नहीं कर सकतीं, क्यों?"

इस तरहके प्रश्नका वह क्या उत्तर दे, कुछ समझमें न आया। सचमुच ही मधुसूदनको देखकर आतंकसे उसका कलेजा

काँप उठा था। तब उसका मन सावधान न था। जिस भावको वह अपनेसे भी सर्वदा छिपाये रखना चाहती है, जिसकी प्रबलताको वह खुद ही पूरी तरह नहीं जानती, वह यकायक अपनेको प्रकाश कर बैठा।

मधुसूदन दाँत पीसकर बोला—"भइयाके पास जानेके लिए जी फड़फड़ाता है, क्यों?"

कुमुद इसी क्षण उसके पैरों पड़नेके लिए तैयार हो रही थी, लेकिन उसके मुँहसे भइयाका नाम सुनते ही वह कठोर हो उठी। बोली—"नहीं।"

"तुम नहीं जाना चाहतीं?"

"नहीं, मैं नहीं चाहती।"

"नवीनको मेरे पास दरबार करनेके लिए नहीं भेजा तुमने?"

"नहीं, नहीं भेजा मैंने।"

"भइयाके पास जानेकी बात तुमने उससे नहीं कही?"

"मैंने उनसे कहा था कि भइयाके यहाँ मैं नहीं जाऊँगी।"

"क्यों?"

"सो मैं नहीं कह सकती।"

"नहीं कह सकती? फिर तुमने वही नूरनगरी चाल चली?"

"हूँ तो मैं नूरनगरकी ही लड़की।"

"जाओ तुम उन्हींके यहाँ जाओ! नहीं हो, तुम यहाँके लायक नहीं हो। मेहरबानी की थी, लेकिन क़द्र नहीं जानी। अब पछताना पड़ेगा।"

कुमुद पत्थरकी तरह बैठी रही, कुछ जवाब न दिया। कुमुद-का हाथ पकड़कर जोरसे झकझोरकर मधुसूदनने कहा—"क्षमा माँगना भी नहीं जानतीं?"

"किस लिए?"

"तुम जो मेरे इस बिस्तरपर लेट सकी हो, इसलिए।"

कुमुद उसी वक्त बिस्तरेसे उठकर बग़लके कमरेमें चली गई।

मधुसूदन बाहर चल दिया—रास्तेमें देखा कि श्यामासुन्दरी उसी तरह बरामदेमें औंधी पड़ी हुई है। मधुसूदनने पास जाकर झुककर उसे उठाना चाहा, बोला—"क्या कर रही हो, श्यामा ?" सुनते ही श्यामा झटसे उठकर बैठ गई, मधुसूदनके पैरोंको छातीसे लगाकर गद्गद कंठसे बोली—"मुझे मार डालो तुम।"

मधुसूदनने हाथ पकड़कर उसे खड़ाकर दिया, बोला—"अरे तुम्हारी देह तो बिलकुल ठंडी हो रही है! चलो तुम्हें सुला आऊँ।" कह उसे अपने दुशालेमें लेकर दायाँ हाथ ज़ोरसे दबाकर उसके कमरेमें ले गया। श्यामाने चुपकेसे कहा—"ज़रा बैठोगे नहीं ?"

मधुसूदनने कहा—"काम है मुझे।"

रातको न जाने कहाँसे भूत सवार हो गया, जो मधुसूदनका तमाम काम चौपट कर देना चाहता है,—बस, अब नहीं! इतना तो वह समझ गया कि कुमुदकी तरफ़से उसकी जो उपेक्षा हुई है, उसकी क्षति-पूर्तिका भंडार और भी कहीं जमा है। प्रेमके भीतर मनुष्य अपना जो परम मूल्य अनुभव करता है, आज रातको उसके अनुभव करने की ज़रूरत मधुसूदनको थी। श्यामासुन्दरी सारे जीवन और मनसे उसके लिए प्रतीक्षा किये हुए है, इस सान्त्वनाको पाकर मधुसूदनमें आज रातमें काम करनेका ज़ोर आ गया। जिस अपमानका काँटा उसके कलेजेमें चुभ रहा है, उसका दर्द बहुत कुछ कम हो गया।

इधर रात को कुमुदको जो धक्का पहुँचा, उसमें उसकी एक सान्त्वना थी। जितनी बार मधुसूदनने उससे प्रेम दिखाया है, उतनी ही बार कुमुदके हृदयमें खींचतान मची है। प्रेमके मूल्यसे

ही यह कर्ज़ अदा करना चाहिए, इस कर्तव्यकी समझने उसे बहुत ही चंचल कर दिया है। इस लड़ाईमें कुमुदको जीतनेकी कोई आशा न थी; परन्तु यह पराजय बड़ी भद्दी है, कुमुदने उसे दबाये रखनेकी बार-बार और जी जानसे कोशिश की है। कल रातको वह दबी हुई पराजय एक ही क्षणमें बिलकुल पकड़ाई दे गई। कुमुदकी असावधान दशामें मधुसूदनने स्पष्टतया देख लिया कि कुमुदकी सारी प्रकृति मधुसूदनकी प्रकृतिके विरुद्ध है; यह अच्छा ही हुआ कि निश्चित-रूपसे जान लिया। इसके बाद परस्पर एक दूसरेके साथ अकपट भावसे अपना कर्तव्य पालन तो भी कर सकेंगे। मधुसूदन जहाँ उसे चाहता है, समस्या तो उसी जगह है; क्षोभके साथ जहाँ वह उसे वर्ज्जन करना चाहता है, सत्य वहाँ है। सचमुच ही मधुसूदनके बिस्तरपर सोनेका अधिकार उसे नहीं है। सोकर वह सिर्फ़ उसे धोखा दे रही है कि इस घरमें उसका जो पद है, वह तो विडम्बना है।

आज रातको बस यही एक प्रश्न बार-बार उसके मनमें उठ रहा है—"मेरे कारण उन्हें इतनी अड़चन क्यों ?" बात-बातमें मधुसूदन नूरनगरी चालका ज़िक्र करके कुमुदपर चुटकी लिया करता है इसके मानी यह हुए कि कुमुदका स्वभाव उन लोगोंसे बिलकुल अलग है, जात अलग है, लेकिन फिर क्यों मधुसूदन उससे प्रेम दिखाता है यह क्या कभी सच्चा प्रेम हो सकता है ? कुमुदका दृढ़ विश्वास है कि आज मधुसूदन अपने मनमें कुछ भी क्यों न ख़याल करे, लेकिन कुमुदसे उसका कभी जी नहीं भर सकता। जितनी जल्दी मधुसूदन इस बातको समझे, उतना ही सबके लिए मंगल है।

कल रातको नवीन भाई साहबसे सम्मति लेकर जितने आनन्दसे सोने गया था, आज सबेरे वह सारा-का-सारा काफ़ूर हो गया। रातके करीब ढाई बजे होंगे, मधुसूदनने उसी वक्त

नवीनको बुला भेजा। हुक्म हुआ कि कुमुदिनीको विप्रदासके यहाँ भेज दिया जाय, और जब तक वह खुद उसे न बुलाये, तब तक उसे यहाँ आनेकी जरूरत नहीं। नवीन समझ गया कि यह निर्वासन-दंड है।

आँगनको घेरे हुए चौकोन बरामदेमें जिस जगह कल रातको मधुसूदनके साथ श्यामासुन्दरीकी मुलाकात हुई थी, उसके ठीक सामनेके बरामदेसे सटा हुआ नवीनका कमरा है। उस समय वे दोनों—स्त्री-पुरुष कुमुदके विषयमें ही बातचीत कर रहे थे। इतने में गलेकी आवाज सुनकर मोतीकी माने ज्यों ही दरवाजा खोला कि चाँदनीके उजालेमें मधुसूदनके साथ श्यामाके मिलनका दृश्य उसके सामने पड़ा। समझ गई कि कुमुदके भाग्यके जालमें आज रातको चुपकेसे एक कड़ी गाँठ और लग गई।

नवीनसे मोतीकी मा बोली—"ऐसे संकटके समयमें जोजीका चला जाना क्या ठीक है?"

नवीनने कहा—"इतने दिनोंसे तो बऊरानी नहीं थीं, बात इतनी तो कभी नहीं बढ़ पाई थी। बऊरानी हैं, इसीलिए यह सब हो रहा।"

"तुम भी क्या बात कहते हो!"

"बऊरानीने जिस सोती हुई भूखको जगा दिया है, उसकी खुराक वे नहीं जुटा सकीं, इसीसे यह अनर्थ हो रहा है। मैं तो कहता हूँ, इस समय उनका दूर रहना ही अच्छा है; इससे और कुछ हो चाहे न हो, कम-से-कम वे शान्तिसे रह तो सकेंगी।"

"तो क्या इसी तरह चलता रहेगा?"

"जिस आगके बुझानेका उपाय नहीं, उसे खुद जलकर भस्म होने तक दूरसे देखते रहनेके सिवा और चारा ही क्या है।"

दूसरे दिन सवेरे हाबलू कुमुदके साथ-साथ घूमता रहा। पण्डितजी जब पढ़ने आये और उसे बुलवा भेजा, तो वह कुमुदके

मुँहकी ओर देखने लगा। कुमुद अगर कह देती, तो वह चला जाता, लेकिन कुमुदने बैरासे कह दिया—"आज हाबलूकी छुट्टी है।"

बहू कुछ दिनके लिए मायके जा रही है, कुमुदकी यात्राके समय आज इस बातका भान न हुआ। यह घर आज मानो उसे खोने बैठा है। जिस चिड़ियाको पिंजड़ेमें क़ैद किया गया था, आज मानो वह दरवाज़ा कुछ खुला पाकर उड़ चली, मानो वह अब इस पिंजड़ेमें कभी न घुसेगी।

नवीनने कहा—"बऊरानी, जल्दी आना यह बात पूरे मनसे कह सकता तो क्या न था, लेकिन मुँहसे निकली नहीं। जिनके यहाँ तुम्हारा यथार्थ सम्मान है, उन्हींके यहाँ रहो तुम। जब कभी किसी कारणसे नवीनकी, ज़रूरत हो, याद करना।"

मोतीकी माने अपने हाथकी बनी अमावट, अचार वग़ैरह एक मिट्टीके बरतनमें रखकर उसे पालकीमें रख दिया। विशेष कुछ बोली नहीं, लेकिन मनमें उसके आपत्ति बहुत ज़्यादा थी। जब तक बाधा स्थूल थी, जब तक मधुसूदनने कुमुदका बाहरसे अपमान किया है, तब तक मोतीकी माका सारा हृदय कुमुदके पक्षमें था; लेकिन जो बाधा सूक्ष्म है, जो मर्मगत है, विश्लेषण करके जिसके नामका निर्णय करना कठिन है, उसकी शक्ति इतनी प्रबलतम है, यह बात मोतीकी माके लिए सहज नहीं है। स्वामी जिस क्षणमें प्रसन्न होंगे, उसी क्षण शीघ्र ही स्त्री उसे अपना सौभाग्य समझेगी, मोतीकी मा इसीको स्वाभाविक मानती है, इसके व्यतिक्रमको ज्यादती! और तो क्या, इस बातपर भी उसे गुस्सा आता है कि अभी तक बहूरानीके विषयमें नवीनके हृदयमें दर्द है। कुमुदकी स्वाभाविक अरुचि बिलकुल अकृत्रिम है, जिसमें अहंकार नहीं, यहाँ तक कि इसीके कारण कुमुदको

अपने ही साथ अपना दुर्जय विरोध है, साधारणतः स्त्रियोंके लिए यह बात मान लेना कठिन है। जिस चीनी लड़कीने वहाँकी प्रथाके अनुसार अपने पैर विकृत करनेमें आपत्ति नहीं की, वह अगर सुने कि संसारमें ऐसी लड़कियाँ भी हैं, जो अपने इस पद-संकोचकी पीड़ाको स्वीकार करना अपमानजनक समझती हैं, तो अवश्य ही वह उस हिचकिचाहटको हँसके उड़ा दे—जरूर कहे कि ये सब नखरे हैं। जो निगूढ़ दृष्टिसे स्वाभाविक है, उसीको वह जानती है अस्वाभाविक। मोतीकी माको किसी दिन कुमुदके दुःखसे सबसे ज्यादा दुःख हुआ था, शायद इसीलिए आज उसका मन इतना कठोर होने लगा है। प्रतिकूल भाग्य जब वरदान देने आता है, तब उसके पैरोंपर सिर रखकर जो स्त्री शीघ्रतासे उसे ग्रहण नहीं कर सकती, उसपर ममता करना मोतीकी माके लिए असम्भव है—यहाँ तक कि क्षमा करना भी।

[४६]

मकानके सामने आते ही पालकीके दरवाजेको जरासा खिसकाकर कुमुदने ऊपरकी ओर देखा। विप्रदास रोज इस समय सड़कके किनारेवाले बरामदेमें बैठकर अखबार देखा करते थे; मगर आज देखा तो वहाँ कोई नहीं! 'आज कुमुद आनेवाली है'—यह खबर यहाँ भेजी ही नहीं गई थी। पालकीके साथ महाराज साहबके चपरासदार दरवानको देखकर यहाँ के दरवान घबरा-से गये, चौकन्ने हो गये, कि 'बहनजी' आई हैं। सहन पार करके पालकी अन्तःपुरकी ओर जा रही थी कुमुदने बीच ही में रुकवा ली, और फुर्तीसे उतरकर वह जल्दी-जल्दी बाहरकी सीढ़ियोंपर से ऊपर चढ़ी चली गई। वह चाहती है कि और किसीके देखनेसे पहले ही—सबसे पहले—भइयासे उसकी भेंट

हो। वह निश्चय-पूर्वक जानती थी कि बाहरके आराम-कमरेमें ही रोगीके रहनेकी व्यवस्था की गई होगी। वहाँ से, जंगलेमें से बगीचेकी गुंजा, करनार और पीपलके पेड़का एक कुंज-समूह दीख पड़ता है। सबेरेकी घाम पेड़-पत्तियोंके भीतर होकर इसी कमरेमें पहले दिखाई देती है। विप्रदास को यही कमरा पसन्द है।

कुमुदके जीनेके पास पहुँचते ही सबसे पहले टाम कुत्ता दौड़ा आया, और उसके ऊपर सामनेके दो पैर जमानेको कोशिश करता हुआ, पूँछ हिलाता हुआ अपनी भाषामें न जाने क्या-क्या कहने लगा—कुमुदको उसने तंग कर डाला। टाम भी उछलता-कूदता-बोलता हुआ कुमुदके साथ चला। विप्रदास एक तह करके रखे जानेवाले कोचपर अध-सोई हालतमें पड़े थे—घुटनों तक छींटकी फर्द पडी हुई है, दाहने हाथमें एक किताब है और वह हाथ बिस्तरपर शिथिल पड़ा हुआ है, मानो थककर कुछ ही देर पहले पढ़ना बन्द किया हो। चायका प्याला और प्लेट बगलसे जमीनपर पड़ी हुई है, जिसमें थोड़ीसी खाई हुई रोटी बच रही है। सिरहानेके पास दीवालमें लगे हुए सेल्फपर किताबें उलटी-सुलटी बे-सिलसिलेसे पड़ी हैं। रातको जो लैम्प जला था, वह धुएँ से काला होकर अभी तक एक कोने में पड़ा हुआ है।

कुमुद विप्रदासके चेहरेकी तरफ देखकर चौंक पड़ी। भइया-की ऐसी विवर्ण रुग्ण-मूर्त्ति तो उसने कभी नहीं देखी। तबके विप्रदास और अबके विप्रदास—दोनोंमें मानों कई युगोंका अन्तर है। भइयाके पैरों तले सिर रखकर कुमुद रोने लगी।

"अरे, कुमुद ! आ गई ? आ, यहाँ आ।"—कहकर विप्रदासने उसे पासमें खींच लिया। यद्यपि चिट्ठीमें विप्रदासने उसे आनेकी एक तरहसे मनाई की थी, फिर भी उन्हें आशा थी कि

कुमुद आयेगी। जब देखा कि कुमुद आ सकी है, तो उन्होंने समझा कि शायद अब कोई बाधा नहीं रही—कुमुदके लिए उसकी घर-गिरस्ती अब सहज हो गई है। कुमुदको लिवानेके लिए इनकी तरफसे ही प्रस्ताव, पालकी और आदमी भेजनेकी व्यवस्था होनी चाहिए थी—नियम तो ऐसा ही है—लेकिन ऐसा न होनेपर भी कुमुद चली आई, विप्रदासने इससे उसकी जितनी स्वाधीनता की कल्पना कर ली, उतनी स्वाधीनताकी प्रत्याशा उन्होंने मधु-सूदनके घर कभी भी किसी हालतमें नहीं की थी।

कुमुदने दोनों हाथोंसे विप्रदास के बिखरे हुए बालोंको ज़रा सम्हालते हुए कहा—"भइया, तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया है?"

"मेरा चेहरा अच्छा हो, इधर ऐसी तो कोई घटना हुई नहीं—लेकिन तेरी यह क्या हालत हो गई। बिलकुल फक्क पड़ गई है!"

इतनेमें खबर पाकर क्षेमा-बुआ आ पहुँचीं। साथ ही दरवाजे-के पास नौकर-नौकरानियोंकी भीड़ जमा हो गई। क्षेमा-बुआको प्रणाम करते ही बुआने उसे छातीसे चुपटाकर माथा चूमा। नौकर-चाकरोंने आकर पैर छुए। सबके साथ कुशल-सम्भाषण हो जाने-के बाद कुमुदिनीने कहा—"बुआ, भइयाका चेहरा बहुत खराब हो गया है।"

"यों ही थोड़े ही हो गया है! तुम्हारे हाथकी सेवा न मिलने-से उनकी देह किसी भी तरह सुधरना ही नहीं चाहती। कितने दिनोंका अभ्यास है, कोई ठीक है!"

विप्रदासने कहा—"बुआ, कुमुदको खानेके लिए कहोगी?"

"खायगी नहीं तो क्या! उसको भी कहनी पड़ेगी क्या? पालकीवालों और दरवान वग़ैरह सबको बिठा आई हूँ, जाऊँ, उन्हें खवा आऊँ। तब तक तुम दोनों बैठे बातें करो, मैं जीनती हूँ।"

विप्रदास क्षेमा-बुआको इशारेसे पास बुलाकर उनके कानमें कुछ कह दिया। कुमुदने समझा कि उसकी ससुरालसे आये हुए आदमियोंकी किस ढङ्गसे विदा की जायगी, उसीका परामर्श किया गया है। इस परामर्शमें कुमुद आज दूसरे पक्षकी हो गई है। उसकी कोई राय ही नहीं यह उसे जरा भी अच्छा न लगा। कुमुद भी इसका बदला लेनेपर उतारू हो गई। इस घरमें उसका जो चिरकालसे स्थान चला आया है, उसपर उसने दुबारा दखल जमानेका काम शुरू कर दिया।

पहले तो भइयाके खानसामा गोकुलको फुस-फुस करके कुछ हुक्म दिया, फिर लगी अपने मनका-सा घर सजाने। प्लेट प्याला, लेम्प, सोडा-वाटरकी खाली बोतल, फटी बेंतकी चौकी, मैले तौलिये और बनियाइनें—एक तरफसे सब हटाकर बरामदेमें रख दिये। सेल्फपर किताबें ठीकसे सजा दीं, भइयाके हाथके पास एक तिपाई सरकाकर रख दी, और उसपर सजा दीं पढ़नेकी किताबें, कलमदान, ब्लाटिंग-पैड, पीनेके पानीकी काँचकी सुराही और गिलास, छोटासा एक शीशा, कंघी और ब्रुश।

इतनेमें गोकुल एक पीतलके 'जग'में गरम पानी, पीतलकी एक चिलमची और साफ तौलिया ले आया और उसने ये चीजें बेंतके मूढ़ेपर रख दीं। भइयाकी सम्मतिकी जरा भी प्रतीक्षा न करके कुमुदने गरम पानीमें तौलिया भिगोकर उनका मुँह-हाथ अंगोछकर बाल काढ़ दिये, विप्रदासने शिशुकी तरह चुपचाप सह लिया। कब कौनसी दवा पिलाना और पथ्यके नियम सब जानकर वह इस तरह मुस्तैद होकर बैठी कि मानो उसके जीवनमें और कहीं भी कोई दायित्व नहीं है।

विप्रदास मन-ही-मन सोचने लगे—इसका क्या अर्थ? सोचा था—मिलने आई है, फिर चली जायगी, लेकिन लक्षण तो ऐसे

नहीं दिखाई देते। विप्रदास जानना चाहते हैं कि ससुरालमें कुमुदका सम्बन्ध कैसा और कहाँ तक पहुँचा है; मगर साफ-साफ पूछनेमें उन्हें संकोच मालूम हो रहा है। कुमुद अपने ही मुँहसे सुनायगी, इस आशामें रहे। सिर्फ आहिस्तेसे एक बार पूछा—"आज तुझे जाना कब होगा?"

कुमुदने कहा—"आज नहीं जाना होगा मुझे।"

विप्रदासने विस्मित होकर पूछा—"इसमें तेरे ससुराल-वालोंको कोई आपत्ति तो नहीं है?"

"नहीं तो, मेरे पतिकी सम्मति है।"

विप्रदास चुप बने रहे। कुमुद घरके एक कोनेमें टेबिलपर चादर बिछाकर उसपर दवाकी शीशी, बोतल आदि ठीक ढंगसे सजा कर रखने लगी। थोड़ी देर बाद विप्रदासने पूछा—"तो क्या तुझे कल जाना पड़ेगा?"

"नहीं तो, अभी तो मैं कुछ दिन तुम्हारे ही पास रहूँगी।"

टाम कुत्ता कोचके नीचे शान्त होकर निद्रा देवीकी साधनामें नियुक्त था, कुमुदने उसपर लाड़ करके उसके प्रीतिउच्छ्वासको असंयत कर दिया। उसने उछलकर कुमुदकी गोदके ऊपर दोनों पैर उठाकर अपनी भाषामें ऊँचे स्वरमें अलापना शुरू कर दिया। विप्रदासने समझ लिया कि कुमुदने यकायक कोई गोलमालकी सृष्टि करके उसके पीछे अपनी आड़ कर ली है।

कुछ देर बाद कुत्तेके साथ खेलना बन्द करके कुमुदने मुँह उठाकर कहा—"भइया, तुम्हारा बार्ली पीनेका वक्त हो गया, ले आऊँ?"

"नहीं, वक्त नहीं हुआ"—कहकर इशारा करके कुमुदको खाटके पास चौकीपर बिठा लिया। अपने हाथपर उसका हाथ लेकर कहा—"कुमुद, मुझसे तू खोलकर कह, कैसे चल रहा है तेरे यहाँ?"

तुरत ही कुमुद कुछ कह न सकी। सिर नीचा किये बैठी रही; देखते-देखते चेहरा हो गया सुर्ख़, बचपनकी तरह भइयाके प्रशस्त वक्षस्थलपर मुँह रखकर रो उठी; बोली—"भइया, मैंने सब-का-सब ग़लत समझा, मैं कुछ जानती न थी।"

विप्रदास धीरे-धीरे कुमुदके माथेपर हाथ फेरने लगे। थोड़ी देर बाद बोले—"मैं तुझे ठीकसे शिक्षा न दे सका। मा होतीं, तो तुझे ससुराल जाने लायक़ बना देतीं।"

कुमुदने कहा—"मैं शुरूसे केवल तुम्हीं लोगोंको जानती हूँ, यहाँसे दूसरी जगह जाकर इतना फरक पाऊँगी, इसकी मैंने कल्पना भी न की थी। बचपनसे मैंने जितनी भी कल्पना की है, सब तुम्हीं लोगोंके साँचेमें। इसीसे ज़रा भी मनमें डरी नहीं। मैं जानती हूँ, माको बहुत बार बाबूजीने कष्ट दिये हैं, लेकिन वह उनका था उपद्रव, उसकी चोट बाहरी थी, भीतरी नहीं। यहाँ तो सारा-का-सारा मानो भीतरी अपमान है मेरा।"

विप्रदास कोई बात न कहकर, लम्बी साँस भरकर, चुपचाप बैठे-बैठे सोचते रहे। यह बात तो वे उस विवाहके अनुष्ठानके आरम्भमें ही समझ गये थे कि मधुसूदन उन लोगोंसे बिलकुल अलग दूसरी ही दुनियाका आदमी है। उसीके विषय उद्वेगसे ही, मालूम होता है, उनका शरीर किसी भी तरह स्वस्थ नहीं हो रहा है। इस दिङ्नागके स्थूल हस्तावलेपसे कुमुदके उद्धार करनेका तो कोई उपाय नहीं है। सबसे ज़्यादा मुश्किल यह है कि इस आदमीके हाथ ऋणसे उनकी सम्पत्ति रहनमें पड़ी है। इस अपमानित सम्बन्धकी मार कुमुदको भी सता रही है। इतने दिनों रोग-शय्यापर पड़े-पड़े विप्रदास बार-बार केवल यही सोचा करते हैं कि मधुसूदनके इस ऋणके बन्धनसे किस तरह छुटकारा मिले। कलकत्ते आनेकी उनकी इच्छा नहीं थी, इसलिए कि कहीं

कुमुदकी ससुरालमें उनका सहज (स्वाभाविक) व्यवहार असंभव न हो जाय। कुमुदपर उनका जो स्वाभाविक स्नेहका अधिकार है, कहीं वह पद-पदपर लांछित न होने लगे, इसीसे निश्चय किया था कि नूरनगरमें ही रहेंगे। कलकत्ते आनेके लिए मजबूर हुए इसलिए कि किसी महाजनसे कर्ज़ मिल जाय तो अच्छा हो। जानते हैं कि यह बड़ा मुश्किल काम है, इसीसे इसकी दुश्चिन्ताका बोझ उनकी छातीपर सवार है।

कुछ देर बाद, कुमुदने विप्रदासकी ओरसे गरदनको ज़रा दूसरी ओर फेरकर कहा—"अच्छा, भइया, पतिपर किसी भी तरह मैं मनको प्रसन्न नहीं कर पाती,—यह क्या मेरा पाप है?"

"कुमुद, तू तो जानती है, पाप-पुण्यके सम्बन्धमें मेरा मत शास्त्रोंसे नहीं मिलता।"

अन्यमनस्क होकर कुमुद एक सचित्र अंग्रेजी मासिक पत्रके पन्ने उलटने लगी। विप्रदासने कहा—"भिन्न-भिन्न मनुष्योंका जीवन अपनी घटनाओं और अवस्थाओंमें परस्पर इतना अधिक भिन्न हो सकता है कि अच्छे-बुरेके साधारण नियमोंको खूब पक्का करके बाँध देनेपर भी बहुधा वह 'नियम' ही हो जाते हैं—धर्म नहीं।"

कुमुदने मासिक पत्रकी ओर नीचेको निगाह किये हुए ही कहा—"जैसे मीरा बाईका जीवन।"

अपने भीतर कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यका द्वन्द्व जब कभी भी कठिन हो उठा है, उसी समय कुमुदको मीरा बाईकी बात याद आई है। एकाग्र चित्तसे वह चाहती है कि कोई उसे मीरा बाईके आदर्शको अच्छी तरह समझा दे।

कुमुद ज़रा कोशिश करके संकोचको दूरकर कहने लगी,—"मीराबाई अपने यथार्थ स्वामीको अपने हृदयमें ही पा गई थीं—

इसीसे सामाजिक स्वामीको वह इस तरह मनसे छोड़ सकी थीं, लेकिन घर-गिरस्तीको छोड़नेका उतना बड़ा हक़ क्या मुझे है ?"

विप्रदासने कहा—"कुमुद, अपने भगवानको तूने तो संपूर्ण मनसे ही पाया है ?"

"किसी समय ऐसा भी समझती थीं; मगर जब संकटमें पड़ी, तो देखा कि प्राण मेरे कैसे सूख-से गये हैं; इतनी कोशिश की लेकिन किसी भी तरह अपने आगे उन्हें मैं सत्य रूपमें नहीं ला पाई। मुझे सबसे बड़ा दुख तो यही है।"

"कुमुद, मनके अन्दर ज्वार-भाटा खेला करता है। कुछ डर मत कर, बीच-बीचमें रात आती है, यह ठीक है, लेकिन इससे दिनका नाश तो नहीं होता। जो कुछ पाया है, तेरे प्राणोंके साथ वह एक हो गया है।"

"यही असीस दो, भइया, जिससे उन्हें न भूल जाऊँ। निर्दयी हैं वे, दुःख देते हैं—अपनेको देंगे इसीलिये।"

"भइया, अपने लिए सोच करा-कराकर मैं तुम्हें थकाये देती हूँ।"

"कुमू, तेरे बचपनसे ही तेरे लिए सोचनेका मुझे जो अभ्यास पड़ गया है। आज अगर तेरी बात जानना बन्द हो जाय—तेरे लिए सोच न पाऊँ, तो मुझे सूना मालूम पड़ता है। उस शून्यताको टटोलते-टटोलते ही तो मेरा मन थक गया है।"

कुमुद विप्रदासके पैरोंपर हाथ फेरती हुई कहने लगी—"मेरे लिए तुम कुछ सोच मत करो, भइया। मेरी जो रक्षा करनेवाले हैं, वह मेरे भीतर ही हैं, मुझपर विपद क्यों आने लगी।"

"अच्छा, जाने दे ये सब बातें। तुझे मैं जिस तरह गाना सिखाता था, जी चाहता है, उसी तरह आज भी तुझे सिखाऊँ।"

"बड़े भाग्य थे जो तुमने सिखाया था, भइया, वही तो मुझे बचाता है; पर आज नहीं, पहले तुम जरा ठीक हो लो। आज बल्कि मैं तुम्हें एक गान सुनाऊँ।"

भइयाके सिरहानेके पास बैठकर कुमुद आहिस्ते-आहिस्ते गाने लगी:—"पिय घर आये, सोई प्यारी पिय प्यार रे?

मीराके प्रभु गिरिधर नागर,
चरण-कमल बलिहार रे!'

विप्रदास आँखें मीचकर सुनने लगे। गाते-गाते कुमुदकी दोनों आँखें भर आईं—एक अपूर्व दर्शनसे। भीतरका आकाश प्रकाश-मय हो उठा। प्रियतम घर आये हैं, हृदयमें चरण-कमलोंका स्पर्श पा रही है। अत्यन्त सत्य हो उठा अन्तरलोक—जहाँ मिलन होता है। गान गाते-गाते वहाँ पहुँच गई है। "चरण-कमल बलि-हार रे!"—सारे जीवनको भर दिया उन चरण-कमलोंने, अन्त नहीं है उनका—संसारमें दुःख अपमानके लिए जगह रही कहाँ! "पिय घर आये"—इससे ज्यादा और क्या चाहिए! यह गान कभी भी अगर खतम न हो, तब तो चिरकालके लिए बच गई कुमुद।

तिपाईपर कुछ रोटी-टोस्ट और एक प्याला बार्ली रखकर गोकुल चला गया। कुमुदने गाना रोककर कहा—"भइया, कुछ दिन पहले मन-ही-मन मैं गुरु ढूँढ़ रही थी, मुझे जरूरत क्या है! तुमने तो मुझे गानका मन्त्र दे ही दिया है।"

"कुमू, मुझे शर्मिन्दा न कर। मुझ जैसे गुरु गली-गली मिलते हैं, वे दूसरोंको जो मन्त्र देते हैं, खुद उसके मानी ही नहीं जानते। कुमू, कितने दिन यहाँ रह सकती है, ठीकसे बता तो?"

"जितने दिन बुलावा न आवे।"

"तूने यहाँ आना चाहा था?"

"नहीं, मैंने नहीं चाहा।"

"इसके मानी ?"

"मानीकी बात सोचनेसे कोई लाभ नहीं, भइया । कोशिश करनेसे भी न समझ सकोगे। तुम्हारे पास आ सकी हूँ, यही बहुत है। जितने दिन रह सकूँ, उतना ही अच्छा है। भइया, तुम्हारा खाना तो हो ही नहीं रहा, खा लो पहले।"

नौकरने आकर खबर दी—"मुकुर्जी साहब आये हैं।"

विप्रदासने मानो ज़रा व्यस्त होकर कहा—"बुला लाओ यहाँ।"

[४७]

कालूके घरमें घुसते ही कुमुदने उसे प्रणाम किया। कालूने कहा—"छोटी लल्ली, आ गई ? अब भाई साहबके आराम होनेमें देर न लगेगी।"

कुमुदकी आँखें भर आईं। आँसू सम्हालकर बोली—"भइया बार्लीमें नीबू नहीं निचोड़ोगे ?"

विप्रदासने उदासीनता दिखलाते हुए हाथ उलटा, अर्थात् न सही, क्या हर्ज है। कुमुद जानती है कि भइयाको बार्ली भाती नहीं, इसीसे वह जब कभी उन्हें बार्ली खिलाती, बार्लीमें नीबूका रस और थोड़ा-सा गुलाबजल और बर्फ डालकर उसे शरबत-सा बना देती थी। उतना आयोजन आज नहीं है, फिर भी विप्रदासने अपनी इच्छा किसीको जताई नहीं—जो कुछ सामने आ गया, उसीको अरुचिके साथ खा लिया है।

बार्ली ठीक तौरसे बना लानेके लिए कुमुद बाहर चली गई।

विप्रदासने उद्विग्न होकर पूछा—"कालू-भइया क्या ख़बर है, कहो ?"

"तुम्हारे अकेलेके दस्तख़तसे कर्ज़ देने के लिए कोई राज़ी नहीं होता, सुबोधके भी दस्तखत चाहिए। मारवाड़ी धनियोंमेंसे कोई-कोई दे सकता है, लेकिन वह बिलकुल सट्टेका-सा खेल है—बहुत ही ज्यादा सूद चाहता है, सो अपनेको पुसायगा नहीं।"

"कालू-भइया, सुबोधको तार देना होगा, आनेके लिए, अब देरी करनेसे काम नहीं चलेगा।"

"मुझे भी ढंग अच्छे नहीं दिखाई देते। उस दफ़े तुम्हारी अँगूठी बेचकर असल कर्ज़मेंसे कुछ चुकानेके लिए जो रुपया ले गया था, मधुसूदन उसे लेनेको राज़ी ही नहीं हुआ, मैं तभी समझ गया कि मामला ठीक नहीं। अपनी मर्ज़ीके माफ़िक अचानक कब किस दिन फाँस कस दे, कौन कह सकता है।"

विप्रदास चुपचाप पड़े सोचने लगे।

कालूने कहा—"भाई साहब, छोटी लल्ली जो आज अचानक ही सवेरे चली आई, नाखुश-नाराज करके तो नहीं आई? मधुसूदनको नाराज करने-लायक़ अभी हमारी अवस्था नहीं है, इस बातको याद रखना होगा।"

"कुमुद कहती है, पतिकी उसे सम्मति मिली है।"

"उस सम्मतिकी शकल कैसी है, बिना देखे, मन निश्चिन्त नहीं होगा। कितनी सावधानीसे उसके साथ बरताव करता हूँ, सो तुम्हें क्या बताऊँ भाई साहब! गुस्सेमें जब सारी देह जल रही थी तब भी सब-कुछ शान्तिसे सहा है, गौरीशंकर पहाड़की तरह धौरी दुपहरीमें भी उसकी बरफ़ नहीं गलती। एक तो वैसे ही महाजन, तिसपर बहनोई,—ऐसेको निभाना टेढ़ी खीर है।"

विप्रदासने कुछ जवाब नहीं दिया, चुपचाप पड़े-पड़े सोचने लगे।

कुमुद बार्ली लेकर आ गई। विप्रदासके मुँहके पास प्याला थामकर बोली—"भइया, लो, इसे पी लो।"

विप्रदास अपनी चिन्तामेंसे सहसा चौंक पड़े। कुमुद समझ गई, भइया अब तक किसी गहरे उद्वेगमें डूबे हुए थे।

कालू जब कमरेसे बाहर गया, तो कुमुद उसके पीछे-पीछे गई और बरामदेमें उसके पास जाकर बोली—"कालू भइया, बात क्या है, मुझे सब बताना होगा।"

"क्या बताना होगा, बहन ?"

"तुम लोग किसी भारी चिन्तामें पड़े हुए हो।"

"ज़मीन-जायदाद हो और चिन्ता न हो, संसारमें ऐसा भी कहीं होता है, लल्लो ? यह तो काँटेदार पेड़का फल है, भूखके मारे तोड़कर खाना भी पड़ता है और तोड़ते वक़्त सारी देह छिल भी जाती है।"

"ये सब बातें पीछे होंगी, मुझे बताओ, क्या हुआ है ?"

"ज़मींदारी-सम्बन्धी बातें लड़कियोंसे कहना मना है।"

"मुझे ठीक मालूम है, तुम लोगोंमें किस विषयकी बातचीत हो रही है।—बताऊँ ?"

"अच्छा बताओ।"

"भइयापर मेरे पतिका कर्ज़ है, इसी बारेमें।"

कुछ जवाब न देकर कालू अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंको—सकौतुक विस्मयकी हँसीके साथ—फाड़-फाड़कर कुमुदके चेहरेकी ओर देखता रहा।

"तुम्हें मुझे बताना ही होगा, मैंने ठीक कहा है या नहीं ?"

"है तो भइयाकी ही बहन न, बात कहनेसे पहले ही बात समझ जाती है।"

ब्याहके बाद पहले-पहल जिस दिन मधुसूदनने विप्रदासके महाजन होनेका दावा करके दम्भके साथ बात कही थी, उसी

दिनसे कुमुदने भइयाके साथ उसके पतिके सम्बन्धका अगौरव समझ लिया था। प्रतिदिन उसने एकाग्र चित्तसे चाहा है कि यह मिट जाय। कुमुदको इसमें सन्देह न था कि उसके भइयाके मनमें इस बातका असम्मान काँटेकी तरह चुभ रहा है। उस दिन नवीनने ज्यों ही विप्रदासकी चिट्ठीकी व्याख्याकी, त्यों ही कुमुदके मनमें आई कि सबका मूल लेन-देनका यह सम्बन्ध ही है। कुमुद इन सब बातोंको खूब अच्छी तरह समझ गई कि भइयाका शरीर क्यों इतना दुर्बल है और किस कामकी खास ताक़ीदसे भइया कलकत्ते चले आये हैं।

"कालू-भइया, मुझसे छिपाओ मत, भइया कहींसे कर्ज़ लेनेके लिए यहाँ आये हैं।"

"हाँ, तो, कर्ज़ ले कर ही तो कर्ज़ चुकाना होगा, रुपये तो आसमानसे नहीं टपकते। सगे-सम्बन्धियोंका कर्ज़दार होकर रहना तो अच्छा नहीं।"

"हाँ, सो तो ठीक बात है,—तो रुपयोंका इन्तज़ाम कर सके हो?"

"उसीकी फ़िराक़में घूम-फिर रहा हूँ, हो जायगा, डर किस बातका?"

"नहीं, मैं जानती हूँ, कोई ठीक इन्तज़ाम हुआ नहीं।"

"अच्छा, छोटी लल्ली, सब-कुछ तुम जानती ही हो तो मुझसे पूछती क्यों हो? बचपनमें एक दिन तुमने मेरी मूँछें पकड़कर पूछा था, मूँछें क्यों होती हैं? मैंने कहा था—ठीक वक़्तपर मूँछके बीज बोये थे इसलिए। बस, इतनेसे ही प्रश्नका उसी समय समाधान हो गया। अब पूछती तो जवाबके लिए डाक्टर बुलाना पड़ता। सभी बातें तुम्हें स्पष्ट-रूपसे जाननी ही होंगी, संसारका ऐसा नियम नहीं।"

"मैं तुमसे पहलेसे ही कहे देती हूँ, कालू भइया, भइयाकी सब बातें मुझे जाननी ही होंगी।"

"किस तरह भइयाकी मूँछें उगीं, सो भी ?"

"देखो, इस तरह बातको दबा नहीं सकोगे। मैं भइयाका मुँह देखकर ही समझ गई कि रुपयोंका इन्तज़ाम नहीं कर सके हो।"

"मान लो, नहीं ही हो सका, तो उसके जाननेसे तुम्हें लाभ क्या होगा ?"

"सो मैं नहीं कह सकती, पर यह बात मुझे जाननी ही होगी। तुम्हें रुपये उधार नहीं मिले ?"

"न, नहीं मिले।"

"आसानीसे नहीं मिलेंगे ?"

"मिलेंगे ज़रूर, लेकिन आसानीसे नहीं—बहन, तुम्हारी बातोंका जवाब देनेकी कोशिश न करके अगर रुपयोंकी खोजमें निकलूँ, तो काम शायद कुछ आगे बढ़ सकता है। मैं चला अब।"

थोड़ी दूर आगे जाकर कालू लौट पड़ा, कुमुदसे कहा—लल्ली, तुम जो आज यहाँ चली आई हो, इसमें तो कोई गड़बड़ नहीं है ? ठीक सच-सच कहना।"

"है कि नहीं, मैं खूब स्पष्टतया नहीं जानती।"

"पतिकी सम्मति मिल गई थी ?"

"बिना माँगे ही उन्होंने सम्मति दे दी थी।"

"गुस्सेमें ?"

"सो मुझे ठीक नहीं मालूम, कहा है—बुलानेसे पहले तुम्हारे आनेकी ज़रूरत नहीं।"

"यह कोई कामकी बात नहीं, उससे पहले ही चली जाना, अपनेसे ही जाना।"

"ऐसे जानेसे हुक्मउदूली होगी।"।

"अच्छा, सो मैं देख लूँगा।"

भइया आज जो ऐसी विपत्तिमें पड़े हैं, इसका सारा अपराध कुमुदपर है—इस बातकी याद किये बिना उससे रहा नहीं गया। अपनेको मारनेकी इच्छा होती है—खूब कड़ी मार। सुना है, ऐसे साधु-सन्त हैं, जो कंटक-शय्यापर सोते हैं, कुमुद ऐसी शय्यापर सोनेको राज़ी है, अगर उसका कुछ फल मिले। कोई योगी—कोई सिद्ध पुरुष यदि उसे रास्ता दिखा दे, तो हमेशाके लिए वह उसके हाथ बिक सकती है। ज़रूर ऐसा कोई होगा, पर वह मिले कहाँ? यदि अबला न होती, तो कोई-न-कोई उपाय वह करती ही करती; पर मझले भइया क्या कर रहे हैं! अकेले बड़े भइयापर सारा बोझ लादकर किस हृदयसे इंग्लैंडमें बैठे हुए हैं?

कुमुदने कमरेमें घुसकर देखा कि विप्रदास ऊपर सोटोंकी ओर ताकते हुए चुपचाप बिस्तरपर पड़े कुछ सोच रहे हैं। ऐसा करनेसे क्या शरीर सुधर सकता है! विरुद्ध भाग्यके दरवाज़ेपर सिर धुन डालनेकी इच्छा होती है।

भइयाके सिरहानेके पास बैठकर उनके माथेपर हाथ फेरते हुए कुमुदने कहा—"मझले भइया कब आयेंगे?"

"मालूम नहीं कब आयेगा।"

"उन्हें आनेके लिए लिखो न।"

"किस लिए?"

"काम-काजका सारा बोझ अकेले तुम्हारे ही सिरपर आ पड़ा है, इसे तुम ढोओगे किस तरह?"

"कोई दावादार होता है, कोई जिम्मेदार, इन्हीं दोनोंसे संसार चलता है। जिम्मेदारीको ही मैंने अपना लिया है, ईसे मैं दूसरेको क्यों दूं?"

"मैं अगर पुरुष होती, तो ज़बरदस्ती तुमसे छीन लेती।"

"तब तो तू समझ सकती है कुमुद, जिम्मेदारीको सिरपर लादनेका एक लालच है, तू खुद लेनेमें असमर्थ है इसीलिए मझले भइयापर लादकर अपनी साध मिटाना चाहती है। क्यों, मैंने ही ऐसा कौनसा क़सूर किया है!"

"भइया, तुम कर्ज़ लेने आये हो?"

"कैसे समझ लिया?"

"तुम्हारा चेहरा देखकर ही मैं समझ गई। अच्छा, मैं क्या कुछ भी नहीं कर सकती?"

"कैसे, बता?"

"ऐसे ही, मान लो, किसी दस्तावेज़पर दस्तख़त करके। मेरे दस्तख़तकी क्या कुछ भी क़ीमत नहीं?"

"बहुत ही ज्यादा क़ीमत है, लेकिन वह मेरे लिए, महाजनके लिए नहीं।"

"तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ भइया, बताओ, मैं क्या कर सकती हूँ।"

"लच्छिमी-बिटिया होकर शान्त बनी रह, धीरज धरकर प्रतीक्षा करती रह। याद रख, संसारमें यह भी एक बड़ा भारी काम है। तूफानके सामने नावको ठीक रखना जैसे एक काम है, माथेको ठीक रखना भी वैसा ही एक काम है। मेरा इसराज उठा ला, ज़रा बजा।"

"भइया, मेरी बड़ी इच्छा होती है कि कुछ करूँ।"

"बजाना क्या 'कुछ' नहीं है।"

"मैं चाहती हूँ कोई खूब कठिन काम।"

"दस्तावेज़पर दस्तख़त करनेकी अपेक्षा इसराज बजाना ज्यादा कठिन है। उठा ला बाजा।"

[४८]

किसी दिन, मधुसूदनसे और सब जैसे डरते थे श्यामासुन्दरी को भी उतना ही डर था। भीतर-ही-भीतर कभी मधुसूदन मानो उसकी ओर झुका-सा है, श्यामासुन्दरीने इस बातका अन्दाज़ा लगा लिया था, परन्तु किस तरफ़से घेरा लाँघकर उसके पास जाया जाय, इस बातका उसे अन्दाज़ नहीं मिलता था। अँधेरेमें टटोल-टटोलकर बीच-बीचमें इसकी कोशिश भी की है, पर हर बार लौटी है धक्का खाकर। मधुसूदन एकनिष्ठ होकर व्यवसायको बनाकर तैयार कर रहा था, कांचनकी साधनामें कामिनीको उसने बहुत ही तुच्छ समझा है, स्त्रियाँ इसीलिए उस से बहुत डरा करती थीं; परन्तु इस डरनेमें भी एक आकर्षण है। डरके मारे काँपती हुई छाती और संकुचित व्यवहारको लिए हुए श्यामासुन्दरी ज़रा-से एक आवरणकी आड़में मुग्ध मनसे मधुसूदनके आसपास फिरती रही है। बीच-बीचमें जब कभी असावधान दशामें मधुसूदनने उसे थोड़ी-बहुत सह दी है, दरअसल उसी समय डरनेकी बात हुई है। उसके बाद शीघ्र ही कुछ दिन विपरीत दिशासे मधुसूदनने इस बातको प्रमाणित करनेकी कोशिश की है कि उसके जीवनमें स्त्रियाँ बिलकुल ही हेय हैं। इसीसे श्यामासुन्दरीने अब तक अपनेको बहुत ही संयत रखा था।

मधुसूदनके ब्याहके बादसे, उससे अब रहा नहीं जाता था। मधुसूदन अगर और-और साधारण स्त्रियोंकी तरह कुमुदकी भी अवज्ञा करता, तो वह किसी तरह सहन भी होता; लेकिन श्यामाने जब देखा कि मधुसूदन सरीखा आदमी भी रास ढीली करके किसी स्त्रीको लेकर अन्ध-वेगसे उन्मत्त हो सकता है, तब तो संसमकी रक्षा करना उसके लिए आसान न रहा। इन दिनों वह हिम्मत बाँधकर जब-तब ज़रा-ज़रा आगे बढ़ रही थी, देख रही

थी—आगे बढ़ा जा सकता है। बीच-बीचमें ज़रा-ज़रा बाधा आई है, परन्तु वह भी, देखा कि, कट जाती है। मधुसूदनकी कमज़ोरी पकड़ाई दे गई, इसीलिए अब श्यामाके अपने अन्दर भी धैर्य बन्धन नहीं मानना चाहता। कुमुदके चले आनेकी पूर्व-रात्रिको मधुसूदनने श्यामाको अपनी ओर जितना खींचा था, वैसा तो और कभी हुआ नहीं। उसके बाद ही श्यामाको डर मालूम हुआ—कहीं उलटा धक्का ज़ोरसे आकर न लगे; मगर श्यामा समझ गई है कि कायरता अगर न दिखावे, तो भयका कारण आपसे आप दूर हो जायगा।

मधुसूदन सवेरे ही बाहर चला गया था, दोपहरको एक बजे बाद घर लौटा है। इधर बहुत दिनोंसे उसके स्नानाहारके नियम का ऐसा व्यतिक्रम नहीं हुआ है। आज वह बहुत ही हारा-थका और अलसाया हुआ अभी घर आया। आते ही पहली बात उसे याद आई कुमुदकी—कुमुद अपने भइयाके घर चली गई है और खुश होकर ही गई है। अब तक मधुसूदन अपने पैरोंपर खड़ा था, मालूम नहीं कब ज़रा ढील दी है—शरीर और मनकी आतुरताके समय किसी युवतीके प्रेमको शरण देनेकी सुप्त इच्छा हृदयमें जाग उठी--इसीसे अनायास ही कुमुदके चले जानेसे उसे अपने ऊपर ऐसा धिक्कार आया। आज भोजनके समय श्यामा जान-बूझकर ही पास आकर नहीं बैठी; क्या मालूम, कल रातमें अपनेको पकड़ाई देनेके बाद मधुसूदन अपने ऊपर नाराज हुआ हो तो। खानेके बाद मधुसूदन ऊपरके अपने सूने कमरेमें जाकर थोड़ी देर तक चुपचाप बैठा रहा, उसके बाद खुद ही उसने श्यामाको बुला भेजा। श्यामा लाल रंगका एक विलायती दुशाला ओढ़े, मानो कुछ,संकुचित भावसे, कमरेमें घुसकर एक किनारेसे नीचेको निगाह किये खड़ी रही। मधुसूदनने बुलाया—"आओ, यहाँ आओ, बैठो।"

श्यामा सिरहानेके पास बैठकर—"तुम तो आज बड़े दुबले-से दिखाई पड़ते हो।"—कहकर ज़रा झुककर उसके माथेपर हाथ फेरने लगी।

मधुसूदनने कहा—"ओ हो, तुम्हारे हाथ बड़े ठंडे हैं।"

रातको मधुसूदन जब सोने आया, श्यामासुन्दरीने बिना बुलाये ही कमरेमें घुसकर कहा—"ओः, तुम अकेले हो।"

श्यामासुन्दरीने, मानो कुछ स्पर्द्धाके साथ, किसी प्रकारका आवरण नहीं रहने दिया। मानो सबको साक्षी रखकर बिना किसी संकोचके वह अपना अधिकार पक्का कर लेना चाहती है। समय भी ज्यादा नहीं है, जाने कब कुमुद आ जाय, उसके पहले ही दखल पूरा हो जाना चाहिए। दखल चौड़ेमें होनेसे उसका ज़ोर रहता है, कहीं कुछ लज्जा रह गई तो ठीक नहीं। हाल देखते-देखते दासियों और नौकर-चाकरोंमें भी बात फैल गई। मधुसूदनके अन्दर बहुत दिनोंकी प्रवृत्तिकी आग जितने ज्यादा ज़ोरसे दबी हुई थी, उतने ही ज्यादा ज़ोरसे वह बेरोक हो गई, उसने किसीकी पर्वाह नहीं की, घरमें खुल्लमखुल्ला अपनी उन्मत्तता ज़ाहिर कर दी।

नवीन और मोतीकी मा दोनों ही समझ गये कि इस बाढ़को अब रोका नहीं जा सकता।

"जीजीको बुलओगे नहीं? अब और देर करना क्या अच्छा है?"

"यही तो सोच रहा हूँ। भाई साहबके बिला हुक्मके तो कोई चारा नहीं। देखूँ कोशिश करके।"

जिस दिन सबेरे नवीन कौशलसे भाई साहबके सामने इस बातको छेड़नेके लिए उनके पास गया, देखा तो भाई साहब कहीं

बाहर जानेके लिए तैयार हैं—दरवाज़ेके सामने गाड़ी तैयार खड़ी है।

नवीनने पूछा—"कहीं जा रहे हो क्या ?"

मधुसूदनने ज़रा संकोचको दूर करते हुए कहा—"उसी ज्योतिषी वेंकटस्वामीके पास।"

नवीनके सामने अपनी कमज़ोरीको दबाये रखना चाहता था। सहसा याद उठ आई, उसे साथ ले चलनेसे कुछ सहूलियत हो सकती है। इसीसे बोला—"चलो मेरे साथ।"

नवीनने सोचा—बुरी तरह फँसे! बोला—"पहले देख आऊँ जाकर. वह घरपर है या नहीं। मुझे तो मालूम पड़ता है वह देश चला गया, कम-से-कम जानेकी बात तो थी।"

मधुसूदनने कहा—"अच्छी बात है चलो देख आवें।"

नवीन निरुपाय होकर साथ चल दिया, लेकिन मनमें उसके प्रमाद भरा था।

ज्योतिषीके मकानके सामने गाड़ी ठहरते ही नवीनने झटपट उतरकर ज़रा उझका-उझकी करके कहा—"मालूम होता है, कोई है नहीं मकानमें।"

ज्यों ही कहा कि उसी क्षण स्वयं वेंकटस्वामी दँतौन चबाते-चबाते दरवाज़ेके पास आ गये। नवीनने जल्दीसे आगे बढ़कर उनके पास जाकर प्रणाम किया, और कहा—"सावधानी से बात कहियेगा।"

उस अँधेरे पुराने घरमें एक तख़्तपर सब बैठ गये। नवीन बैठा मधुसूदनके पीछे। मधुसूदनके कुछ कहनेके पहले ही नवीन कह बैठा—"महाराजा साहबके दिन आजकल बहुत ख़राब जा रहे हैं, ग्रह कब शान्त होंगे, बताइये शास्त्रीजी।"

मधुसूदनने नवीनके ऐसे ढीले-ढाले प्रश्नसे ज़रा नाख़ुश होकर उसकी जाँघको अंगूठेसे ज़ोरसे दबा दिया।

वेंकटस्वामीने राशिचक्रसे बिलकुल स्पष्ट दिखा दिया कि मधुसूदनके धन-स्थानमें शनिकी दृष्टि पड़ी है।

ग्रहका नाम जानकर मधुसूदनको कोई लाभ नहीं—उसके साथ समझौता करना कठिन है। जो-जो आदमी उसके साथ शत्रुता कर रहे हैं, साफ तौरसे उन्हींका परिचय चाहिए ; वर्णमाला के किसी भी वर्गमें हो, नाम निकालना ही होगा। नवीन को यह दिक्क़त थी कि वह मधुसूदनके आफिसका हाल बिलकुल नहीं जानता था। इशारेसे भी सहायता नहीं पहुँचा सकता। वेंकटस्वामी 'मुग्धबोध' के रटे हुए सूत्र दुहराते जाते और तिरछी निगाहसे मधुसूदनके चेहरेकी ओर देखते जाते। आज तो नाम बतानेमें भृगुमुनि बिलकुल चुपकी साध गये हैं। सहसा शास्त्रीजी कह बैठे—"शत्रुता कर रही है एक स्त्री।"

नवीनकी जानमें जान आई। वह स्त्री श्यामासुन्दरी ही है, किसी क़दर यह कहला लिया जाय, बस, फिर कोई फिकर नहीं। मधुसूदन नाम चाहता है। शास्त्रीजीने अब वर्णमालाके वर्ग कहने शुरू किये। 'कवर्ग' शब्द कहकर मानो वे भृगुमुनिकी ओर कान लगाये रहे—कटाक्षसे देखने लगे मधुसूदनकी ओर। 'कवर्ग' सुनते ही मधुसूदनके चेहरेपर ज़रा कुछ चमक-सी दौड़ गई। उधर पीछेसे 'नहीं' का इशारा करनेके लिए नवीन दाएँ-बाएँ गरदन हलाने लगा। नवीनको क्या मालूम कि मदरासमें इस इशारेका उल्टा अर्थ होता है। वेंकटस्वामीको अब सन्देह न रहा—गलेपर ज़रा ज़ोर देकर बोले—'क-वर्ग।" मधुसूदनका मुँह देखकर ठीक समझ लिया था कि कवर्गका पहला वर्ण ही है। इसीसे उसकी ज़रा और भी व्याख्या करके कहा—'क' में ही मधुसूदनका सारा 'कु' है—अर्थात् बुराई या अशुभ।

इसके बाद पूरा नाम जाननेके लिए आग्रह न दिखाकर व्यग्रताके साथ मधुसूदनने पूछा—"इसका प्रतिकार क्या है ?"

वेंकटस्वामीने गंभीरता-पूर्वक कहा—"कंटकेनैव कंटकं"—अर्थात् उद्धार भी कोई स्त्री ही करेगी।

मधुसूदन चकित हो उठा। वेंकटस्वामीने मानव चरित्र-विद्याका अध्यन किया है।

नवीनने चंचल होकर पूछा—"स्वामी जी, घुड़दौड़में महाराजका घोड़ा क्या जीत गया?"

वेंकटस्वामी जानते हैं कि रेसमें अधिकांश घोड़े जीतते नहीं, जरा हिसाब लगानेका-सा बहाना बनाकर कह दिया—"हानि दिखाई देती है।"

कुछ ही दिन पहले मधुसूदनके घोड़ेने बड़ी जबरदस्त बाज़ी मारी है। मधुसूदनको कोई बात कहनेका मौक़ा न देकर, मुँहपर अत्यंत विमर्षता लाकर नवीन पूछने लगा—"स्वामीजी, मेरी लड़की कैसे पार उतरेगी?" कहना न होगा कि नवीनके कोई लड़की है ही नहीं

वेंकटस्वामीने ठीक अन्दाज़ा लगा लिया कि वरकी तलाशमें है। नवीनके चेहरेसे ही समझ लिया कि लड़की अप्सरा न होगी। कह दिया—"पात्र जल्दी नहीं मिलेगा, बहुत रुपये देने पड़ेंगे।"

मधुसूदनको जरा भी मौक़ा न देकर तर-ऊपर दस-बारह ऊटपटांग प्रश्न करके और उनका विचित्र उत्तर दिलवाकर नवीन ने कहा—"भाई साहब, अब क्या? चलो।"

गाड़ीपर सवार होते ही नवीन कहने लगा—"भाई साहब, इसकी सब चालाकी है। ढोंगी कहींका!"

"मगर उस दिन तो—"

"उस दिन उसने पहलेसे ही पता लगा लिया था।"

"जाना कैसे कि मैं आऊँगा।"

"मेरी ही बेवकूफी थी। मेरा क़सूर हुआ कि मैं उसके पास तुम्हें ले आया था।"

ज्योतिषीकी ढकोसलेबाज़ी कितनी ही क्यों न साबित हो, लेकिन कवर्गका 'क' मधुसूदनके मनमें चुभा ही रहा। सोच-विचार कर देखा कि नक्षत्रोंका अनादर करके फुटकर प्रश्नोंका अंटसंट जवाब देता है, मगर असली प्रश्नोंके उत्तरमें भूल नहीं होती। मधुसूदनने जिसकी कभी आशा नहीं की थी, वही दुःसमय उसके विवाहके साथ-ही-साथ आया। इससे बढ़कर स्पष्ट प्रमाण और क्या होगा?

नवीनने धीरे-धीरे ज़िक्र छेड़ा—"भाई साहब, दो सप्ताह तो हो गये, अब बऊरानीको बुला लें।"

"क्यों, ऐसी जल्दी क्या है?—देखो नवीन, तुम्हें कहे देता हूँ, ये सब बातें आइन्दा कभी हमारे सामने न छेड़ा करो। जिस दिन हमारी खुशी होगी, बुला लेंगे।"

नवीन भाई साहबको पहचानता है, समझ गया कि यह बात खतम हो चुकी। फिर भी, हिम्मत बाँधकर पूछ ही बैठा—"मझली बऊ अगर बऊरानीसे मिलने जाना चाहे, तो कोई हर्ज है?'

मधुसूदनने अवज्ञाके साथ संक्षेपमें कहा—"चली न जाय!"

[४६]

विप्रदासने बड़ी उतावलीके साथ सामनेकी आरामकुर्सीकी ओर इशारा करके कहा—"आइये नवीन बाबू, आइये यहाँपर बैठिये।"

नवीनने कहा—"शायद आपको मेरा परिचय नहीं मिला। आप समझते होंगे, मैं कोई राज-घरानेका लाड़ला लड़का हूँगा; मगर यह बात नहीं, मैं तो आपकी जो छोटी बहन हैं, उनका अधम सेवक हूँ। मेरा सम्मान करके आप तो मेरा आशीर्वाद

ही हड़प लेना चाहते हैं,—लेकिन आपको हो क्या गया ? आपका ऐसा अच्छा शरीर—अब तो छाया-ही-छाया रह गई है !"

"शरीर सत्य नहीं—छाया है, बीच-बीचमें इस बातका भान होते रहना अच्छा ही है। इससे अन्तका पाठ सुगम हो जाता है।"

इतनेमें कुमुद आ गई, घरमें घुसतेके साथ ही बोली—"देवरजी चलो कुछ खा लो।"

"खाऊँगा, मगर एक शर्त है,—जब तक वह पूरी न हो जायगी, तब तक यह ब्राह्मण अतिथि तुम्हारे द्वारपर भूखा ही पड़ा रहेगा।"

"क्या शर्त, सुनूँ तो सही ?"

"जब तक हमारे यहाँ थीं, अरजी पेश कर रखी थी, वहाँ बस नहीं चलता था। भक्तको एक तसवीर देनी होगी तुम्हें। उस दिन कहा था, नहीं है, आज यह बात नहीं कह सकतीं। तुम्हारे भइयाके घरमें सामने ही तो टँगी है दीवालपर।"

अच्छी तसवीर दैवात् कभी उतर आती है। कुमुदकी वह तसवीर इसी तरहकी मानो दैवकी रचना है। माथेपर जिस उजालेके पड़नेसे कुमुदके मनका चेहरा मुँहपर खिल उठता है, वही उजाला पड़ा था उस चित्रमें। ललाटपर निर्मल बुद्धिकी दीप्ति है और आँखोंमें गम्भीर सरलताकी सकरुणता। तसवीरमें खड़ी है वह। उसका सुन्दर दाहना हाथ एक सूनी कुर्सीके हत्थेपर रखा हुआ है। मालूम होता है, मानो वह अपनी ही एक दूरकी छाया देखकर ठिठक गई है।

अपनी इस तसवीरपर कुमुदकी दृष्टि नहीं पड़ी है। उसके भइयाने कलकत्तेसे चित्रकार बुलाकर ब्याहके कई रोज़ पहले यह चित्र खिंचवाया था। इसके बाद अपने कमरेमें उसे लगवाया

है, इससे कुमुदका हृदय पिघल गया। यह जानकर कि फोटोकी कापी और भी ज़रूर होगी, भइयाके मुँहकी ओर देखा। नवीनने कहा--"समझ गये, विप्रदास बाबू, बऊरानीकी कृपा हुई है। देखिये न, उनकी आँखोंकी ओर देखिये अयोग्य होनेकी वजहसे ही उनकी विशेष करुणा है मुझपर।"

विप्रदासने मुस्कुराकर कहा—"कुमुद, मेरे उस चमड़ेके बकसमें और भी कई तसवीरें रखी हैं, अपने भक्तको तू वरदान देना चाहे, तो कोई कमी न होगी।"

कुमुद जब नवीनको जिमानेके लिए भीतर ले गई, तो कालू आया घरमें। बोला—"मैंने छोटे बाबूको तार दिया है, जल्दी आनेके लिए।"

"मेरे नामसे?"

"हाँ, तुम्हारे ही नामसे, भाई साहब। मुझे मालूम है, तुम अन्त तक 'हाँ' 'ना' करते रहोगे, इधर समय बड़ा कठिन आ रहा है। डाक्टरसे जो कुछ सुना, उससे मालूम होता है, तुम्हारे ऊपर अब ज्यादा बोझ नहीं डाला जा सकता।"

डाक्टरका कहना है कि हृदय-विकारके लक्षण दिखाई दे रहे हैं, शरीर और मनको शान्त रखना चाहिए। किसी समय विप्रदासको हदसे ज्यादा कुश्तीका नशा था, यह उसीका फल है, उसके साथ मिल गया है मनका उद्वेग।

सुबोधको इस तरह जबरदस्ती बुलाना अच्छा होगा या नहीं विप्रदासकी कुछ समझमें न आया। चुपचाप सोचने लगे। कालूने कहा—"बड़े बाबू, व्यर्थ सोचमें पड़े हो, जमींदारीकी कोई-न-कोई अन्तिम व्यवस्था अभीसे हो जानी चाहिए, और यह काम बिना उनके पूरा हो नहीं सकता। बारह पर-सेन्ट ब्याजपर मारवाड़ीके हाथ सिर नहीं बेच सकते। जिसमें वह दो लाख

रुपये तो पहलेसे ही ब्याजके काट लेगा, उसके ऊपर फिर दलाली न्यारी है।"

विप्रदासने कहा—"अच्छा, आने दो सुबोधको। लेकिन आयेगा तो?"

"कितने ही बड़े साहब क्यों न हों, तुम्हारा तार पाते ही उनसे रह न जायगा। इसके लिए तुम खातिर जमा रखो; लेकिन भाई साहब, अब देर करना ठीक नहीं, बिटियाको ससुराल भेज दो।"

विप्रदास कुछ देर चुपचाप बैठे रहे, फिर बोले—"बिना मधुसूदनके बुलाये भेजनेमें बाधा है।"

"क्यों, बिटिया क्या मधुसूदनके कारखानेकी मजदूरिन है? अपने घर जायगी, उसमें हुक्म किस बातका?"

भोजन समाप्त करके नवीन अकेला ही विप्रदासके कमरेमें आया। विप्रदासने कहा—"कुमुदका तुमपर बड़ा स्नेह है।"

नवीनने कहा—"हाँ, शायद मैं अयोग्य हूँ, इसीसे उनका इतना ज्यादा स्नेह है।"

"उसके बारेमें तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ, तुम मुझसे कोई बात छिपाना नहीं।"

"ऐसी मेरी कोई भी बात नहीं, जो आपसे नहीं कही जा सके।"

"कुमुद जो यहाँ आई है, मुझे मालूम होता है, उसमें कुछ गड़बड़ है।"

"आपने ठीक ही समझा है। जिसके अनादरकी कल्पना भी नहीं की जा सकती, संसारमें उसका भी अनादर होता है।"

"तो अनादर हुआ है?"

"उसी लिहाजसे तो आया हूँ। और तो कुछ कर नहीं सकता, चरणोंकी धूल लेकर मन-ही मन माफी चाहता हूँ।"

"कुमुद अगर आज ही ससुराल लौट जाय, तो उसमें कोई हानि है?"

"सच कह दूँ, वहाँ जानेके लिए कहनेकी मेरी हिम्मत नहीं पड़ती।"

दरअसल बात क्या है, इस बारेमें विप्रदासने नवीनसे कुछ पूछ-ताछ नहीं की। समझा कि पूछना बेजा होगा। कुमुदसे भी कोई बात पूछकर भेद जननेकी उनकी रुचि न हुई। भीतर ही भीतर छटपटाने लगे। कालूको बुलाकर पूछा—"तुम तो उनके यहाँ जाया-आया करते हो, मधुसूदनके बारे में तुम शाद कुछ जानते होगे।"

"कुछ-कुछ अभास मिला है, लेकिन पूरा हाल जाने बिना तुमसे कुछ कहूँगा नहीं। और दो दिन सब्र करो, पूरा हाल तुम्हें दूँगा।"

आशंकासे विप्रदासका हृदय व्यथित हो उठा। प्रतिकार करनेका कोई उपाय उनके पास नहीं था, इसीलिए दुश्चिन्तासे उनका हृदय मारे दर्दके रह-रहकर चीख मारमे लगा।

[५०]

कुमुद बहुत दिनोंसे जो बात एकान्त-मनसे चाह रही थी, वह पूरी हो गई। उसी परिचित घरमें, अपने भइयाके स्नेहके उसी परिवेष्टनमें वह लौट आई, परन्तु यहाँ आकर देखा कि उसका वह स्वाभाविक स्थान अब नहीं रहा। रह-रहकर अभिमान से उसके मनमें आता है कि लौट जाय, क्योंकि वह स्पष्ट समझ रही है कि सभीके मनमें हमेशा प्रश्न उठ रहा है—'वह वापस क्यों नहीं जाती, क्या हुआ है उसे?' भइयाके गहरे स्नेहमें वही

एक उत्कंठा है, इन बारेमें उनमें स्पष्ट आलोचना नहीं चल सकती। उसका विषय वह स्वयं है और उसीसे वह बात छिपाई जाती है।

शाम हो चली, धूप उतर रही है। सोनेके कमरेमें खिड़कीके पास कुमुद बैठी है। कौए काँव-काँव कर रहे हैं। बाहर रास्तेमें गाड़ियोंके आने-जानेका शब्द और बस्तीके लोगोंका नाना प्रकारका कलरव हो रहा है। नूतन बसन्तकी हवा शहरके ईंट-पत्थरोंपर रंग नहीं ला सकी है। सामनेके मकानको अपनी आड़में छिपाये हुए एक बदामका पेड़ खड़ा है, अस्थिर हवा उसीके घने हरे पत्तोंको हिला-डुलाकर तीसरे पहरकी धूपके टुकड़े-टुकड़े करके उसे छितरा देने लगी। ऐसे ही समयमें पालतू हरिणी अपने अनजाने जंगलकी ओर भाग जाना चाहती है। जिस दिन हवामें वसन्तका स्पर्श होता है, मालूम होता है, मानो पृथ्वी उत्सुक होकर ताक रही है नील आकाशके सुदूर मार्गकी ओर। जो कुछ चारों ओर घेरे हुए है, वही मिथ्या मालूम होने लगता है, और जिसका पता नहीं लगा है, जिसकी तसवीर खींचते समय रंग आसमानमें बिखर जाता है, तसवीर झाँककर जल-स्थलके इशारोंपर भाग जाती है, मन उसीको समझता है सबसे बढ़कर सत्य। कुमुदका मन हाँप रहा है और भागना चाहता है सब-कुछ छोड़कर, अपनेको भी छोड़कर, परन्तु यह कैसी दीवार है! आज इस घरमें भी मुक्ति नहीं। कल्पनामें मृत्युको उसने मधुर बना लिया। मन-ही-मन बोली—'साँवरे जमुनाके किनारे खड़े हैं, वे ही साँवरे, उन्हींके अभिसारमें चली हूँ, दिनपर दिन कितना लम्बा सफर है—कितने दुःखका सफर है।' याद उठ आई—भइयाकी बीमारी बढ़ रही है—उनकी सेवा करने आई थी मैं, मैंने ही आकर बीमारी बढ़ा दी, अब मैं जो-कुछ करूँगी, सब उल्टा होगा। दोनों हाथोंसे मुँह दबाकर कुमुद जी खोलकर

रो ली। रोनेका वेग थमनेपर निश्चय किया कि घर लौट जायगी, जो होगा सो देखा जायगा—सब सह लेगी—अन्तमें तो मुक्ति है ही शीतल, गम्भीर, मधुर। उसी मृत्युकी कल्पना ज्यों-ज्यों उसके मनके अन्दर अपना घर बनाने लगी, त्यों-त्यों अपने जीवनका भार उसे हलका मालूम होने लगा। मन-ही-मन गुनगुनाने लगी :—

पथपर रयन अँधेरी,
कुंजपर दीप उजियारा।

दोपहरको कुमुद भइयाको सुलाकर चली आई थी, अब दवा और पथ्य देनेका समय हो गया। कमरेमें आकर देखा, विप्रदास उठकर बैठे हुए गोदपर पोर्टफोलिओ रखकर सुबोधको अंगरेजीमें चिट्ठी लिख रहे हैं। फटकारनेके सुरमें कुमुदने कहा—"भइया, आज तुम अच्छी तरह सोये भी नहीं।"

विप्रदासने कहा—"तूने समझ रखा है कि सोनेसे ही विश्राम होता है! मन जब चिट्ठी लिखने का जरूरत समझता है, तब चिट्ठी लिखनेसे ही विश्राम मिलता है।"

कुमुदने समझा कि ज़रूरत उसीकी बजहसे है। समुद्रके इसपार एक भाईको व्याकुल कर दिया है, समुद्रके उसपार और एक भाईको विकल करने चली है, क्या ही तक़दीर लेकर जनमी थी उनकी यह बहन। भइयाको चाय पिलानेके बाद धीरे-धीरे उसने कहा—"बहुत दिन हो गये, अब घर जाना ठीक होगा।"

विप्रदासने कुमुदके मुँहकी ओर देखकर समझनेकी कोशिश की कि कहनेका भाव क्या है। इतने दिनोंसे भाई-बहन दोनोंमें जो स्पष्ट समझने-समझानेका भाव था, वह अब नहीं रहा; अब तो मनकी बातके लिए अँधेरेमें टटोलना पड़ता है। विप्रदासने लिखना बन्द कर दिया। कुमुदको पास बिठाकर, बिना कुछ कहे

उसके हाथपर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगे। कुमुदने उस भाषाको समझा। गिरस्तीकी गांठ कड़ी हो गई है, परन्तु प्रेममें ज़रा भी कमी नहीं आई है। आँखोंसे आँसू टपकना चाहते थे, ज़बरदस्ती उन्हें रोक लिया। कुमुदने मन-ही-मन कहा—'इस प्रेमपर भार नहीं लादूँगी।' इसीसे फिरसे उसने कहा—"भइया मैंने जानेका निश्चय कर लिया है।"

विप्रदास क्या जवाब दें, कुछ सोच न सके; सम्भव है कुमुदके जानेमें ही भलाई हो, कम-से-कम कर्तव्य तो यही है। चुप बैठे रहे। इतनेमें कुत्ता जाग गया, और वह कुमुदकी गोदपर दोनों पैर रखकर विप्रदासकी छोड़ी हुई रोटीके टुकड़ेके लिए प्रार्थना करने लगा।

रामस्वरूप नौकरने आकर खबर दी कि चटर्जी महाशय आये हैं। कुमुदने उद्विग्न होकर कहा—"आज दिनमें तुम सोये नहीं हो, इसपर कालू-भइयासे बहस करके थक जाओगे। बल्कि मैं जाती हूँ, कोई बात होगी तो सुने आती हूँ, फिर तुमसे आकर कहूँगी, ठीक समयपर।"

"तू बड़ी कहींकी डाक्टर बन गई है! एक आदमीकी बात कोई दूसरा आदमी सुन आवे, इससे रोगीका मन बहुत सुस्थिर होगा, यही सोचा है तूने!"

"अच्छा, मैं नहीं सुनूँगी, लेकिन आज रहने दो।"

"कुमुद, किसी अंगरेज़ कविने कहा है—'सुना हुआ संगीत मधुर होता है, किन्तु अश्रुत संगीत उससे भी मधुर।' उसी तरह सुना हुआ समाचार थकावट ला सकता है, मगर बिना सुना समाचार और भी ज्यादा थकावट लाता है, इसलिए जल्दी ही सुन लेना अच्छा है।"

"लेकिन मैं पन्द्रह मिनट बाद ही आ जाऊँगी, और तब भी अगर तुम लोगोंकी बातचीत खतम न हो, तो मैं बीच में ही इसराज बजाना शुरू कर दूंगी—भीमपलश्री।"

"अच्छा, मंजूर है।"

आध घंटे बाद इसराज हाथमें लिये ही कुमुद कमरे में घुसी परन्तु विप्रदासके चेहरेका भाव देखकर उसी समय इसराज दीवालके सहारे एक कोनेमें रखकर भइयाके पास आकर बैठ गई और उनका हाथ पकड़कर पूछने लगी—"क्या हुआ, भइया?"

कुमुद इतने दिनोंसे विप्रदासमें जो अस्थिरता देख रही थी, उसमें एक तरहका गंभीर विषाद था विप्रदासके जीवनमें दुःख-संताप बहुत आये हैं, किसीने भी उन्हें जल्दी विचलित होते नहीं देखा। पुस्तक पढ़ना, गाना-बजाना, दूरबीन लेकर तारे देखना घोड़ेपर चढ़ना, जगह-जगहसे नये-नये बिना जाने पेड़-पौधे मँगाकर उनसे बगीचा लगाना इत्यादि नाना विषयोंमें उनकी उत्सकता रहनेसे अपने विषयके दुःख-कष्टोंको अपने अन्दर कभी उन्होंने जमने नहीं दिया। अबकी बार रोगकी दुर्बलताने अपनी छोटी सी परिधिके भीतर उन्हें बहुत ज्यादा बाँध लिया है। अब वे बाहरसे सेवा और संग पानेके लिए उन्मुख रहते हैं, चिट्ठी पत्री ठीक समयपर न मिलनेसे उद्विग्न हो जाते हैं, दुश्चिन्ताएँ देखते-देखते काली हो उठती हैं। इसीसे भइयापर कुमुदका जो स्नेह है, उसने आज मानो मातृस्नेहके समान रूप धारण किया है—उसके ऐसे धीर गंभीर आत्म-संयमी भइयाके अन्दर न जाने कहाँसे बालकोंका-सा भाव आ गया है,—इतना अनादर, इतनी चंचलता, इतनी जिद। और उसीके साथ इतना गंभीर विषाद और उत्कंठा।

परन्तु कुमुदने आकर देखा कि भइयाका वह आवेश दूर हो गया! उनकी आँखोंमें जो आग जल रही है, मानो वह महादेव-

के तृतीय नेत्रके समान है,—अपनी किसी वेदनाके लिए नहीं—अपनी दृष्टिके सामने वह विश्वके किसी पापको देख रहा है, उसे जलाकर भस्म करना चाहता है। कुमुदकी बातका कोई उत्तर न देकर सामनेकी दीवालपर एकटक देखते हुए विप्रदास चुपचाप बैठे रहे।

कुमुदने कुछ देर बाद फिर पूछा—"भइया, क्या हुआ, बताओ न?"

विप्रदासने मानो किसी दूरके लक्ष्यकी ओर दृष्टि रखते हुए कहा—"दुःखसे बचनेकी कोशिश करनेसे वह और भी धर दबाता है। उसे जोरके साथ स्वीकार करना होगा।"

"तुम उपदेश दो, मैं स्वीकार करूँगी भइया।"

"मैं देख रहा हूँ, स्त्रियोंका जो अपमान है, वह किसी एकका नहीं, बल्कि सारे समाजके भीतर है।"

कुमुद अच्छी तरह भइयाकी बातका अर्थ न समझ सकी।

विप्रदासने कहा—"दर्दका सिर्फ अपना ही समझकर अब तक कष्ट सह रहा था, आज समझमें आया कि इसके साथ लड़ना होगा सबकी तरफसे।'

विप्रदासके सफेद फक गोरे चेहरेपर लाल आभा दौड़ गई। उनकी गोदमें रेशमी बेल-बूटे चौखूँटा तकिया था, उसे धक्का देकर सहसा अलग कर दिया। बिस्तरसे उठकर बग़लकी कुर्सीपर बैठना ही चाहते थे कि कुमुदने उनका हाथ थामकर कहा—"शान्त होओ भइया, उठो मत, तबीयत और भी खराब हो जायगी" कहकर ऊँचे तकियेके सहारे उन्हें लिटा दिया।

विप्रदासने अपने ओढ़नेके चद्दरेका मुट्ठीमें दबाकर कहा—"सहनेके सिवा स्त्रियोंके लिए और कोई रास्ता नहीं, इसीसे उनके ऊपर बार-बार मार आकर पड़ती है। अब कहनेके दिन आ गये

कि 'नहीं सहेंगी'। कुमुद, यहीं तू अपना घर समझकर रह सकेगी ? उनके यहाँ अब तेरा जाना नहीं होगा।"

कालूसे आज विप्रदासने बहुतसी बातें सुनी हैं।

श्यामासुन्दरीके साथ मधुसूदनका जो सम्बन्ध हुआ है, उसमें दबा-ढका कुछ नहीं था। दोनों निःसंकोच हो गये हैं। लोग उन्हें अपराधी समझ रहे हैं, इसीसे दोनों गर्वित हो उठे हैं। इस सम्बन्धमें बारीक़ काम कुछ भी न था, इसीसे उनके लिए परस्पर बचना और लोकमतकी परवाह करना अनावश्यक था। सुना गया है कि मधुसूदनने श्यामाको कभी-कभी मारा-पीटा भी है। श्यामाने जब शोर मचाकर प्रतिवाद किया है, तब मधुसूदनने उसे सबके सामने ही कहा है—"जा, दूर हो यहाँसे, बदज़ात कहींकी, निकल जा हमारे घरसे।" मगर इससे भी कुछ बना-बिगड़ा नहीं है। श्यामाके सम्बन्धमें मधुसूदनने अपना कर्तृत्व ज्योंका त्यों रखा है, अपनी इच्छासे मधुसूदनने अपने आप जो कुछ दिया है, उससे ज़्यादा लेनेके लिए श्यामाने जब कभी हाथ बढ़ाया है, फौरन उसने फटकार खाई है। श्यामाकी इच्छा थी कि घर-गिरस्तीके काममें मोतीकी माके स्थानपर वह दख़ल जमावे, मगर उसमें भी बाधा आई; मधुसूदनका मोतीकी मापर पूर्ण विश्वास है श्यामापर उसका विश्वास नहीं। श्यामाके विषयमें उसकी कल्पनामें रंग नहीं लगा, मगर उसपर ख़ूब ज़बरदस्त आसक्ति पैदा हो गई है। मानो वह जाड़ेमें हर वक्त काम आनेवाली मैली रज़ाई है, उसपर बेल-बूटोंका बिलकुल अभाव है, वह कोई ख़ास सम्हालनेकी चीज़ नहीं, खाटसे नीचे धूलमें गिर जानेपर भी कुछ बनता-बिगड़ता नहीं; मगर उससे आराम बहुत है। श्यामाको सम्हालकर चलनेकी तनिक भी जरूरत नहीं। इसके सिवा, श्यामा जो उसे सारे मनसे

बड़ा मानती है, उसके लिए वह सब-कुछ सहनेको—सब कुछ करनेको राज़ी है, इस बातका निःसंशय भरोसा होनेसे मधुसूदन-का आत्म-सम्मान स्वस्थ है। कुमुदके रहते उसके आत्म-सम्मानने प्रतिदिन बहुत ज्यादा धक्के खाये हैं।

मधुसूदनके इस आधुनिक इतिहासको जाननेके लिए कालूको बहुत ज्यादा खोज नहीं करनी पड़ी। उनके घरके नौकर-चाकरोंमें इस विषयकी काफ़ी चर्चा हो चुकी है, अन्तमें अत्यन्त अभ्यस्त हो जानेसे चर्चाका ज़माना भी एक तरहसे बीत चुका है।

खबर सुनते ही विप्रदासके कलेजेमें मानो आगका तीर लगा। मधुसूदनने कुछ दाबने-ढकनेकी कोशिश भी नहीं की, अपनी स्त्रीको खुली तौरसे अपमानित करना इतना सहज है—स्त्रीपर अत्याचार करनेमें बाहरकी बाधा इतनी कम है! स्त्रीको निरुपाय बनाकर पतिके अधीन करनेमें समाजने हज़ारों तरहके यन्त्र और यन्त्रणाओंकी सृष्टि की है, और मज़ा यह कि उस शक्तिहीन स्त्रीको पतिके उपद्रवसे बचानेके लिए कोई भी आवश्यक मार्ग ही नहीं रखा गया! इसीका कठिन दुःख और असम्मान घर-घरमें युग-युगमें किस प्रकार व्याप्त हो गया है, एक क्षणमें विप्रदासने मानो उसे देख लिया। सतीत्वकी गरिमाका गाढ़ा प्रलेप देकर इस व्यथाको दबानेकी कोशिश होती है, परन्तु उस वेदनाको असम्भव करनेकी—उसका अस्तित्व मिटानेकी—ज़रा भी कोशिश नहीं की जाती। हाँ, स्त्रियाँ इतनी सस्ती हैं—इतनी नाचीज़ हैं।

विप्रदासने कहा—"कुमुद, अपमान सहते जाना कोई कठिन काम नहीं, मगर सहना अन्याय है। तमाम स्त्रियोंकी तरफ़से तुझे अपने सम्मानका दावा करना होगा, इसपर समाज तुझे जितना दुःख दे सके, देने दे।"

कुमुदने कहा—"भइया, तुम किस अपमानकी बात कह रहे हो, मैं ठीक समझ नहीं सकी।"

विप्रदासने कहा—"तो क्या तूने सब बातें नहीं सुनीं ?"

कुमुदने कहा—"नहीं तो।"

विप्रदास चुप रहे। थोड़ी देर बाद बोले—"स्त्रियोंके अपमान-का दुःख मेरी छातीके अन्दर जमा हो रहा है। क्यों, तुझे मालूम है ?"

कुमुद कुछ न कहकर भइयाके मुँहकी ओर देखती रही। थोड़ी देर बाद, विप्रदास कहने लगे—"जिन्दगी-भर माने जो कष्ट उठाये थे, उसे मैं किसी तरह भूल नहीं सकता ; हमारा धर्म-बुद्धि-हीन समाज उसके लिए जिम्मेवार है।"

यहींपर भाई-बहनमें भेद है। कुमुदका अपने पितासे बहुत ज्यादा प्रेम था, वह जानती थी कि उनका हृदय कितना कोमल था। समस्त अपराधोंके होते हुए भी उसके बाबूजी बहुत बड़े थे, इस बातको याद किये बिना उससे रहा नहीं जाता ; यहाँ तक कि उसके बाबूजीके जीवनमें जो शोचनीय दुर्घटना हुई थी, उसके लिए वह अपनी माको ही मन-ही-मन दोष देती है।

विप्रदासने भी अपने पिताको बड़ा जानकर उनकी भक्ति की है; परन्तु बार-बार अपने चरित्र-दोषके कारण माको सबके सामने असम्मानित करनेमें उन्होंने अपनेपर अंकुश नहीं रखा, इसके लिए विप्रदासका मन किसी भी तरह उन्हें क्षमा नहीं कर सका। उनकी माने भी क्षमा नहीं किया, इस बातका विप्रदासको गौरव है।

विप्रदासने कहा—"माका जो अपमान हुआ था, उसमें सारी स्त्री-जातिका असम्मान है। कुमुद, तू व्यक्तिगत रूपसे अपनी बात भूलकर उस असम्मानके विरुद्ध खड़ी होना, किसी भी तरह हार न मानना।"

कुमुदने सिर झुकाकर धीरेसे कहा—"लेकिन बाबूजीका मा पर प्रेम बहुत था, इस बातको भूलो मत, भइया। उस प्रेमसे बहुत पाप क्षमा हो जाते हैं।"

विप्रदासने कहा—"मैं जानता हूँ, मगर इतना प्रेम होते हुए भी वे इतनी आसानीसे माका अपमान कर सकते थे, यह पाप समाजका है। समाजको इसके लिए मैं क्षमा नहीं कर सकता। समाजमें प्रेम नहीं है, है सिर्फ़ विधि-विधान।"

"भइया, तुमने कुछ नई बात सुनी है क्या ?"

"हाँ, सुनी है, सब बातें तुझे धीरे-धीरे बताऊँगा।"

"अच्छी बात है। मुझे डर लगता है कि आजकी इन सब बातोंसे तुम्हारा शरीर और भी कमज़ोर न हो जाय।"

"नहीं कुमुद, ठीक इससे उल्टा होगा। इतने दिनोंसे दुःखों-की थकावटसे शरीर अलसा-सा गया था। लेकिन आज तो मन कह रहा है कि जीवनके अन्तिम दिन तक लड़ाई लड़नी होगी, मेरे शरीरके भीतरसे ताक़त आ रही है।"

"किस बातकी लड़ाई भइया !"

"जिस समाजने नारीको उसका मूल्य देनेमें इतना ज्यादा धोखा दिया है, उसके साथ लड़ाई लड़नी है।"

"तुम उसका क्या कर सकते हो, भइया ?"

"मैं उसे मानूँगा नहीं। इसके सिवा और भी क्या कर सकता हूँ, सोचना होगा,—आजसे ही शुरू करता हूँ, कुमुद। इस घरमें तेरे लिए जगह है, वह बिलकुल तेरी निजी जगह है, और किसी के साथ समझौता करके नहीं। यहींपर तू अपने ज़ोर से रहना।"

"अच्छा भइया, सो सब हो जायगा, लेकिन अब तुम बातें मत करो भइया।"

इतनेमें खबर आई कि मोतीकी मा आई हैं।

[५१]

मोतीकी माको लेकर कुमुदिनी सोनेके कमरेमें जा बैठी। बातचीत करते-करते अँधेरा हो आया, बैरा आया बत्ती जलाने, कुमुदने मना कर दिया।

कुमुदने सभी बातें सुनीं; चुपचाप बैठी रही।

मोतीकी माने कहा--"घरको भूत लग गया है, बऊरानी। वहाँ टिकना अब मुश्किल ही है, तुम क्या नहीं जाओगी ?"

"मेरा क्या बुलावा आया है ?"

"नहीं, बुलानेकी शायद याद भी नहीं रही होगी ; लेकिन तुम्हारे बिना जाये तो काम ही नहीं चल सकता।"

"मैं क्या कर सकती हूँ ? मैं तो उन्हें तृप्त नहीं कर सकूँगी। विचार कर देखा जाय तो मेरे ही कारण सब-कुछ हुआ है; मगर कोई उपाय भी नहीं था। मैं जो कुछ दे सकती थी, उसे वे ले नहीं सके। आज मैं रीते हाथ जाकर क्या करूँगी ?"

"कहती क्या हो बऊरानी, घर तो तुम्हारा ही है, वह तो तुम्हारे छोड़ देनेसे चल ही नहीं सकता !"

"घरसे क्या मतलब समझती हो बहन ? घर-द्वार, चीज़-वस्त, नौकर-चाकर ? मुझे शर्म आती है यह कहनेमें कि उसपर मेरा अधिकार है। ख़ास महलमें ही जब अधिकार खो बैठी हूँ, तो क्या अब बाहरकी उन सब चीज़ोंपर लोभ हो सकता है ?"

"क्या कह रही हो, बऊरानी ? तुम क्या अब घर जाओगी ही नहीं बिलकुल ?"

"सब बातें अच्छी तरह समझमें नहीं आ रही हैं। और कुछ दिन पहले होता, तो भगवानसे संकेत चाहती, दैवज्ञके पास पूछने जाती, लेकिन मेरा वह सब भरोसा धुलकर पुछ चुका है। शुरूमें

सभी लक्षण अच्छे थे। अन्तमें कोई भी ठीक न बैठा। आज कितनी बार बैठी-बैठी सोचती रही हूँ कि देवताकी अपेक्षा भइया-के विचारपर भरोसा रखती, तो इतनी विपत्ति न आती; मगर फिर भी तो मनमें देवताके बारेमें एक दुबिधा उठ खड़ी हुई है, हृदयके अन्दर उससे छुटकारा नहीं मिल रहा। घूम-फिरकर वहीं आकर लोटने लगती हूँ।"

"तुम्हारी बातें सुनकर तो मुझे डर लगता है। घर क्या जाओगी ही नहीं ?"

"यह सोचना तो कठिन है कि कभी जाऊँगी ही नहीं; मगर यह भी आसान नहीं कि जाऊँगी ही।"

"अच्छा, तुम्हारे भइयासे एक बार पूछ देखूँ। देखें वे क्या कहते हैं। उनके दर्शन तो हो जायँगे ?"

"चलो, अभी लिये चलती हूँ।"

मोतीकी मा विप्रदासके कमरेमें पैर रखते ही, उनका चेहरा देखकर, ठिठककर खड़ी रह गई, मालूम हुआ मानो वह अपने सामने एक भूकम्पके बादका मन्दिर देख रही है—जिसकी बत्तियाँ बुझ गई हैं, शिखर टूट गया है। भीतर अन्धकार और सन्नाटा है। मोतीकी मा उनके पैर छूकर ज़मीनपर बैठ गई।

विप्रदासने ज़रा कुछ उतावली के साथ कहा—"यह है तो सही चौकी।"

मोतीकी माने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, यहीं ठीक है।"

घूँघटके भीतर उसके आँखोंमें आँसू छलकने लगे। समझ गई कि भइयाकी यह हालत ही कुमुदको व्यथित किये हुए है।

कुमुदने प्रसंगको सहज कर देनेके लिए कहा—"भइया, ख़ास कर ये यही पूछने आई हैं कि मेरे बारेमें तुम्हारी क्या राय है।"

मोतीकी माने कहा—"नहीं, नहीं, राय पूछना पीछेकी बात है, मैं आई हूं उनके चरणोंके दर्शनके लिए।"

कुमुदने कहा—"ये जानना चाहती हैं कि उनके घर मुझे जाना चाहिए या नहीं।"

विप्रदास उठकर बैठ गये, बोले—"वह तो पराया घर है, वहाँ जाकर कुमुदसे रहा कैसे जायगा ?"

यदि यह बात क्रोधके स्वरमें कहते, तो उसके भीतरकी आग ऐसी न धधक उठती। शान्त कंठस्वर था, चेहरेपर उत्तेजनाका कोई लक्षण ही न था।

मोतीकी माने फुसफुस करके कुछ कहा, जिसका अभिप्राय था कि कुमुद उसके पास बैठकर उसकी बातें विप्रदासके कानों तक पहुँचा दे। कुमुद राजी नहीं हुई, बोली—"तुम्हीं कहो न, गला खोलकर।"

मोतीकी माने स्वरको और भी जरा स्पष्ट करके कहा—"जो उनका अपना है, उसे कोई पराया नहीं कर सकता, फिर चाहे वह कोई भी क्यों न हो।"

"यह बात ठीक नहीं। कुमुद तो आश्रित-मात्र है। उसे अपने अधिकारका जोर नहीं है। उसे घरसे अलग कर देनेसे शायद लोग निन्दा ही करेंगे, पर कोई बाधा नहीं देगा। जो कुछ दंड है, सो सब उसीके लिए है। फिर भी, अनुग्रहका आश्रय भी सहन कर लिया जाता, यदि वह महद् आश्रय होता।"

ऐसी बातका क्या जवाब दे, मोतीकी मा कुछ सोच न सकी। पतिके आश्रयमें विघ्न होनेसे लड़कीवाले ही तो हाथ-पैर छूकर खुशामद किया करते हैं, यहाँ तो उल्टी बात है।

कुछ देर चुप रहकर बोली—"लेकिन अपनी घर-गिरस्तीके बिना स्त्रियाँ जो जी ही नहीं सकतीं, पुरुषोंका जीवन तो बहावमें बहते-बहते बीत जाता है; मगर स्त्रियोंको तो कहीं-न-कहीं स्थिति चाहिए ही ?"

"स्थिति कहाँ है ? असम्मानमें ? मैं तुमसे कहे देता हूँ, कुमुदको जिसने गढ़ा है, उसने शुरूसे अन्त तक बड़ी श्रद्धासे गढ़ा है। ऐसी योग्यता किसीमें नहीं जो कुमुदकी अवज्ञा कर सके—चक्रवर्ती सम्राट्में भी नहीं।"

कुमुदपर मोतीकी माका बहुत ही ज्यादा प्रेम है, भक्ति है; मगर फिर भी किसी स्त्रीका इतना मूल्य हो सकता है कि जिसका गौरव पतिको भी लांघ जाय, यह बात मोतीकी माको ठीक नहीं जँची। घर-गिरस्तीमें पतिके साथ झगड़ा-टंटा हो सकता है, स्त्रीके भाग्यमें अनादर-अपमान भी काफ़ी बड़ा हो सकता है, यहाँ तक कि उससे छुटकारा पानेके लिए स्त्री अफीम खाकर या गलेमें फाँसी लगाकर मर जाती है, यहाँ तक तो उसकी समझमें आता है; लेकिन इसके मानी यह नहीं कि पतिको बिलकुल त्यागकर स्त्री अपने ज़ोरसे रहेगी चाहे जहाँ, इस बातको तो मोतीकी मा दर्प ही समझती है। स्त्री होकर इतना घमंड क्यों! मधुसूदन चाहे जितना अयोग्य हो, चाहे जैसा अन्यायकरे, फिर भी वह है तो पुरुष ही; एक जगह वह अपनी स्त्रीसे आप ही बड़ा है, वहाँ किसी तरहका विचार चल ही नहीं सकता। विधाताके साथ मामला चलाकर जीतेगा कौन ?

मोतीकी माने कहा—"आखिर किसी-न किसी दिन तो वहाँ जाना ही पड़ेगा, इसके सिवा कोई रास्ता ही नहीं।"

"जाना ही पड़ेगा, यह बात तो ख़रीदे हुए गुलामके सिवा और किसी आदमीके लिए लागू ही नहीं हो सकती।"

"मन्त्र पढ़कर स्त्रीको तो खरीद ही लिया जाता है। सात फेरे जिस दिन पड़ गये, उसी दिन वह तो शरीर और मनसे बँध ही गई, अब तो भागनेका कोई रास्ता ही नहीं रहा। यह बंधन तो मौतसे भी बढ़कर है। स्त्री होकर जब पैदा हुई हैं, तो इस जन्मके लिए तो स्त्रीके भाग्यको किसी तरह फिराया नहीं जा सकता।"

विप्रदास समझ गये कि स्त्रियोंका सम्मान स्त्रियोंमें ही सबसे कम है। वे जानती ही नहीं कि इसीलिए घर-घर स्त्रियोंके भाग्यमें अपमानित होना इतना सहज है। वे अपनी रोशनी आप ही बुझा बैठी हैं। उसपर हमेशा मरती हैं डरके ही मारे, हर वक्त चिन्ता उन्हें खाये ही जाती है, अयोग्य पुरुषके हाथमें पड़कर खाती हैं मार, और समझती हैं कि उसे चुपचाप सह लेना ही स्त्री-जन्मकी सर्वोच्च सार्थकता है। नहीं,—मनुष्य अपमानको इतना सिर-माथे नहीं ले सकता। समाजने जिन्हें इतना नीचे डाल दिया है, वे ही तो समाजको प्रतिदिन नीचे ले जा रही हैं।

विप्रदासकी खाटके पास ही कुमुद सिर झुकाये ज़मीनपर बैठी थी। विप्रदासने मोतीकी मासे कुछ न कहकर कुमुदके माथे-पर हाथ रखकर कहा—"एक बात तुझसे कहता हूँ, कुमुद, समझनेकी कोशिश करना। सामर्थ्य जहाँ पाई-चीज़ है, जिसकी कोई परख नहीं, अधिकार बनाये रखनेके लिए जिसे योग्यताका कोई प्रमाण नहीं देना पड़ता, वहाँ वह संसारमें सिर्फ़ हीनताकी ही सृष्टि करती है। यह बात मैंने तुझसे बहुत बार कही है, अपने संस्कार-को तू छोड़ नहीं सकी—कष्ट झेले हैं। तू जब ख़ास तौरसे ब्राह्मण-भोजन कराती थी, तब किसी दिन तुझे बाधा नहीं दी, सिर्फ बार-बार समझनेकी कोशिश की है; विचारे किसी मनुष्यकी श्रेष्ठता मान लेनेसे सिर्फ उसीका अनिष्ट होता हो, सो नहीं, उससे समाजकी श्रेष्ठताके आदर्शको छोटा किया जाता है। इस तरहकी अन्ध-श्रद्धाके द्वारा अपने ही मनुष्यत्वका अनादर किया जाता है, इस बातको कोई सोचता क्यों नहीं? तूने तो अंगरेज़ी साहित्य कुछ-कुछ पढ़ा है, समझी नहीं, ऐसी जितनी भी दल-गढ़न्त और शास्त्र-गढ़न्त निरंकुश शक्तियाँ हैं, उन सबके विरुद्ध सारे संसारमें आज लड़ाईकी हवा बह रही है। दुनिया-भरकी मनगढ़न्त अन्ध-दासताओंको बड़ा नाम देकर मनुष्य दीर्घकाल

तक उनका पोषण करता आया है, आज उन्हें निर्मूल करनेका दिन आ गया है।"

कुमुदने सिर नीचा किये हुए ही कहा—"भइया, तुम्हारे कहनेका मतलब क्या, स्त्री स्वामीसे भी बढ़ जाय ?"

"नहीं, अन्याय अतिक्रमको तो मैं बुरा समझता हूँ। पर पति भी स्त्रीको अतिक्रम न करे—मेरे कहनेका मतलब यही है।"

"यदि करे, तो क्या स्त्रीको भी—"

कुमुदकी बात खतम होनेसे पहले ही विप्रदास कहने लगे—"स्त्री यदि उस अन्यायको मान ले, तो वह सब स्त्रियोंपर अन्याय करना होगा। इसी तरह प्रत्येक स्त्रीके द्वारा दुःख बढ़ता ही जाता है। तभी तो अत्याचारका रास्ता पक्का हो गया है।"

मोतीकी माने ज़रा-कुछ अधैर्यके स्वरमें ही कहा—"हमारी बऊरानी सती-लक्ष्मी हैं, उनका कोई अपमान करे, तो वह अपमान उन्हें छू भी नहीं सकता।"

विप्रदासका कंठ अब ज़रा उत्तेजित हो उठा—"तुम लोग सती-लक्ष्मीकी बात ही सोचती रहती हो। और जो कापुरुष बेधड़क उसे अपमानित करनेका अधिकार पाकर प्रतिदिन उसका दुरुपयोग करता रहता है, उसकी दुर्गतिकी बात क्यों नहीं सोचतीं ?"

कुमुद उसी समय उठकर खड़ी हो गई और विप्रदासके बालोंमें उँगलियाँ फेरती हुई बोली—"तुम अब बात मत करो, भइया, थक जाओगे। तुम जिसे मुक्ति कहते हो, जो ज्ञान द्वारा प्राप्त होती है, उसके लिए हमारा खून ही बाधक है। हम आदमी से भी लिपटी रहती हैं और विश्वाससे भी; किसी भी तरह उसकी उलझन नहीं सुलझा सकतीं। जितनी चोट खाती हैं, उतनी ही घूम-फिरकर उसीमें फँसती जाती हैं। तुम लोग बहुत

जानते हो, उसीसे तुम लोगोंका मन छुटकारा पा जाता है ; हम लोग बहुत मानती हैं, उसीसे हमारे जीवनका शून्य भरता है। तुम जब समझा देते हो, तो समझ जाती हूँ कि शायद मेरी ग़लती है ; लेकिन ग़लती समझ लेना और ग़लती छोड़ देना, क्या एक ही बात है ? लताकी तरह हमारी ममता सब कुछको जकड़-जकड़कर लिपट जाती है, चाहे उसमें भलाई हो या बुराई, फिर उसे छोड़ नहीं सकती।"

विप्रदासने कहा—"इसीलिए तो संसारमें कापुरुषोंकी पूजाकी पुजारिनोंकी कमी नहीं होती। वे जानते वक्त तो अपवित्रको अपवित्र ही जानती हैं, लेकिन मानते वक़्त उसे पवित्र-सा बनाकर ही मानती हैं।"

कुमुदने कहा—"क्या करूँ भइया, घर-गिरस्तीको दोनों हाथोंसे जकड़े रहनेके लिए ही हमारी सृष्टि हुई है। इसीसे हम पेड़को भी जकड़े रहती हैं और सूखे ठूँठको भी। जितनी देर हमें गुरुको माननेमें लगती है—उतनी ही देर पाखंडीको माननेमें। जाल तो हमारे अपने ही भीतर है। दुःखसे हमें बचावे कौन ? इसीलिए सोचती हूँ कि दुःख यदि पाना ही है, तो उसे मानकर ही उससे बचनेकी कोशिश करनी चाहिए। इसीसे तो स्त्रियाँ इतनी ज़्यादा धरमकी शरण लिया करती हैं।"

विप्रदासने कुछ नहीं कहा, चुपचाप बैठे रहे।

किन्तु उनका चुपचाप बैठा रहना भी कुमुदको कष्टकर मालूम हुआ। कुमुद जानती है कि बोलनेकी अपेक्षा इस चुप्पीका वज़न और भी ज़्यादा है।

घरमें घूम-फिरकर मोतीकी माने कुमुदसे आकर पूछा—"क्या ठीक किया बऊरानी ?"

कुमुदने कहा—"नहीं जा सकूँगी। और, मुझे तो उन्होंने आनेके लिए हुक्म नहीं दिया है।"

मोतीकी मा भीतर-ही-भीतर कुछ खीझ उठी। ससुरालके प्रति उसकी अधिक श्रद्धा हो, सो बात नहीं; फिर भी ससुरालके बारेमें बहुत दिनोंका ममत्व-बोध उसके हृदयपर अधिकार किये हुए है। वहाँकी कोई भी बहू उसे लंघन कर जाय, यह बात उसे किसी भी तरह अच्छी नहीं लगी। कुमुदको उसने जो कुछ कहा, उसका भाव यह था कि पुरुषोंकी प्रकृतिमें हमदर्दी कम होती है और असंयम ज्यादा, यह तो बनी-बनाई बात है। सृष्टि तो हमारे हाथमें नहीं है, जो मिला है उसीके साथ निभाकर चलना होगा। "ये लोग ऐसे ही हैं"—कहकर मनको तैयार करके जैसे बने वैसे घर-गिरस्तीको चलाना ही चाहिए। क्योंकि घर-गिरस्ती ही स्त्रियोंकी अपनी चीज है। पति अच्छे हों या बुरे, घर-गिरस्तीको तो अंगीकार करना ही होगा। अगर यह बात बिलकुल असम्भव हो, तो मरनेके सिवा और कोई गति ही नहीं।

कुमुदने हँसकर कहा—"और नहीं तो यही सही। इसमें मौतका क्या दोष?"

मोतीकी माने उद्विग्न होकर कहा—"ऐसी बात मत कहो।"

कुमुद नहीं जानती कि कुछ दिन हुए, उसके मुहल्लेमें ही एक सत्रह-अठारह वर्षकी बहूने कार्बोलिक ऐसिड खाकर आत्म-हत्या कर ली थी। उसका एम० ए० पास पति है—गवर्मेन्ट आफिसमें ऊँची नौकरी करता है। स्त्रीने चाँदीकी एक कंघी खो दी थी, माने उसकी शिकायत की, पतिने उठाकर स्त्रीके एक लात जमा दी। मोतीकी माके रोंगटे खड़े हो गये उसकी याद आते ही।

•इतनेमें ही नवीन आ गया। कुमुद प्रसन्न हो उठी। बोली—"मैं तो जानती थी, लालाजीके आनेमें ज्यादा देर न लगेगी।"

नवीनने मुस्कराकर कहा—"न्यायशास्त्रपर बऊरानीका दखल है पहले देखा श्रीमती धुआँको, उससे श्रीमान् अग्निके आविर्भाव-का अन्दाज़ लगानेमें कठिनता नहीं मालूम हुई होगी।"

मोतीकी माने कहा—"बऊरानी, तुम्हींने इनको शह दे-देकर सिरपर चढ़ाया है। मनमें वो समझते हैं कि तुम उन्हें देखकर ख़ुश होती हो, इसी मिजाज़में—"

"मुझे देखकर भी जो ख़ुश हो सकती हैं, उनमें क्या कुछ कम सामर्थ्य है? जिन्होंने मुझे बनाया है, उन्हें भी अपने हाथका काम देखकर अनुताप हुआ है, और जिन्होंने मेरा पाणिग्रहण किया, उनके मनका भाव तो 'देवा न जानन्ति कुत्तो मनुष्यः'।"

"लालाजी, तुम दोनों मिलकर शास्त्रार्थ करो, तीसरा व्यक्ति रहकर छन्दोभंग नहीं करना चाहता, अब मैं जाती हूँ।"

मोतीकी माने कहा—"यह क्या बात, बहन? यह तीसरा व्यक्ति कौन है? तुम या मैं? तुम क्या समझती हो कि गाड़ीका किराया खर्च करके वे मुझे देखने आये हैं यहाँ?"

"नहीं, अब जाती हूँ, इनके लिए ब्यालू भेज दूँ।"

कहकर कुमुद चली गई।

[५२]

मोतीकी माने पूछा—"कुछ खबर है क्या?"

"है। देर न कर सका, तुम्हारे साथ सलाह करने आया हूँ। तुम तो चली आईं, उसके बाद अचानक भाई साहब चले आये मेरे कमरेमें। मिजाज था उस समय बहुत ख़राब। मामूली क़ीमतका एक गिल्टी किया हुआ चुरटका ऐस्ट्रे (राखदान) टेबिलसे ग़ायब हो गया है। फिलहाल जिसने उसे लिया है, उसने अवश्य ही उसे सोना समझा है, नहीं तो क्यों

व्यर्थ अपना सत्यानाश करने बैठता। जानती तो हो मामूली-सी कोई चीज इधर-उधर हो जानेसे भाई साहबकी विपुल सम्पत्तिकी भीत मानो हिल जाती है, यह उनसे सहा नहीं जाता। आज सबेरे आफिस जाते वक्त मुझसे कह गये थे—श्यामाको देश भेज देनेके लिए। मैं खूब उत्साहके साथ ही उस पवित्र कार्यमें लग गया था। मैंने ठीक किया था कि आफिससे उनके लौटनेके पहले ही इस कामको पूरा कर दूँगा। इतनेमें दोपहरको डेढ़ बजे भाई साहब अचानक आ धमके सीधे मेरे कमरेमें। बोले—'अभी रहने दो।' कहकर बाहर जा रहे थे कि इतनेमें उनकी निगाह पड़ गई डेस्कपर रखी हुई बऊरानीकी उस तसवीरपर। ठिठक गये। मैं ताड़ गया कि तिरछी नज़रका सीधा करके तसवीर देखनेमें भाई साहबको शरम मालूम होती है। मैंने कहा—'भाई साहब ज़रा बैठिये, ढाकेकी एक साड़ी तुम्हें दिखाना है। मोतीकी माकी छोटी भौजाईका चौक है, सो उसे भेजनी है। लेकिन गणेशराम कीमतमें मुझे ठग रहा है, ऐसा मालूम होता है। तुमसे ज़रा उसकी कीमत जँचवानी है। मेरी समझमें तो तेरह रुपये उसकी कीमत नहीं हो सकती। ज्यादासे ज्यादा होगी तो नौ साढ़े-नौ रुपयेके भीतर होनी चाहिए।"

मोतीकी मा दंग रह गई, बोली—"यह बात तुम्हारे दिमागमें कहाँसे आई? मेरी छोटी भौजाईके चौकेको तो अभी कोई सम्भावना ही नहीं। उसके गोदके बच्चेकी उमर तो कुल डेढ़ महीनेकी है। बात बनाकर कहनेमें आजकल तुम बड़े चलते-पुर्जे हो गये हो, मालूम होता है। यह नई विद्या तुम्हें कहाँसे मिल गई?"

"जहाँसे कालिदासको कवित्व मिला था—वाणी वीणा-पाणिसे।"

"वीणापाणि जब तक तुम्हें छोड़ न दें, तब तक तुम्हारे साथ घर-गिरस्ती चलाना मुश्किल होगा।"

"प्रतिज्ञा की है, स्वर्गारोहणके समय नरकके दर्शन करता जाऊँगा, बऊरानीके चरणोंमें यही मेरा दान है।"

"मगर साढ़े-नौ रुपये क़ीमतकी ढाकेकी साड़ी हाल-की-हाल तुम्हें मिल कहाँसे गई?"

"कहीं भी नहीं। बीस मिनट बाद वापस आकर कह दिया कि गणेशराम वह साड़ी मुझसे बिना कहे ही वापस ले गया है। भाई साहबके चेहरेको देखकर समझ गया कि इस बीचमें तसवीरने उनके दिमाग़में घुसकर स्पप्नका रूप धारण कर लिया है। न मालूम क्यों, संसारमें मेरे ही सामने भाई साहबको ज़रा-कुछ आँखोंकी शरम है, और किसीकी होती तो तसवीरको चटसे उठाकर चल देनेमें उन्हें ज़रा भी संकोच न होता।"

"तुम भी तो कम लोभी नहीं हो। भाई साहबको उसे दे ही देते तो तुम्हारा क्या बिगड़ जाता।"

"सो दे दी,—मगर ऐसे नहीं दी। मैंने कहा—'भाई साहब, इस तसवीरपर-से आयल-पेन्टिंग कराके उसे तुम अपने सोनेके कमरेमें लगवा लो तो ठीक हो न?' भाई साहबने मानो उदासीन भावसे कहा—'अच्छा' देखा जायगा।' कहकर वे तसवीर लेकर ऊपरके कमरेमें चले गये। उसके बाद क्या हुआ, ठीक मालूम नहीं। शायद उनका आफिस जाना नहीं हुआ, और उस तसवीरके वापस मिलनेकी मैंने आशा भी नहीं रखी।"

"तुम अपनी बऊरानीके लिये जब स्वर्ग ही खोनेको राजी हो, तो साथमें एक तसवीर और भी सही।"

"स्वर्गके विषयमें सन्देह है, तसवीरके बारेमें ज़रा भी सन्देह नहीं था। ऐसी तसवीर जब कभी उतरती है—दैवसे।

जिस दुर्लभ लग्नमें उनके मुँहपर लक्ष्मीका प्रसाद पूर्ण-रूपसे उतर आया था, ठीक वही शुभ योग उस तसवीरमें आ बैठा है। किसी-किसी दिन रातको सोतेसे उठकर बत्ती जलाकर मैंने उस तसवीरको देखा है। दिआके उजालेमें उसके भीतरका रूप मानो और भी ज्यादा होकर दिखाई देता है।"

"क्यों जी, मेरे सामने तुम्हें इतनी ज्यादती करते ज़रा भी डर नहीं लगता ?"

"डर अगर हो तो तुम्हारे सोचनेकी बात भी होती। उन्हें देखकर मेरा आश्चर्य किसी तरह जाता ही नहीं। सोचता हूँ, हम लोगोंके भाग्यमें यह सम्भव हुआ कैसे ? मेरे तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं—जब मैं सोचता हूँ कि मुझे उनसे बऊरानी कहनेका हक़ है। और वे इस तुच्छ नवीन जैसे आदमीको पास बिठाकर हँसती हुई खिला-पिला सकती हैं, संसारमें यह इतना सहज हुआ कैसे ? हमारे घरानेमें सबसे बढ़कर अभागे भाई साहब हैं। जो चीज़ उन्हें सहज-स्वभाव मिली, उसे ऐसी कठिनतासे बाँधने चले कि उसे खो ही बैठे।"

"क्यों जी, बऊरानीकी बातोंमें जब तुम्हारा मुँह खुल जाता है, तो फिर बन्द ही नहीं होता !—बात क्या है !"

"मझली बऊ, मुझे मालूम है, तुम्हें ज़रा यह खटकता है।"

"नहीं, हर्गिज़ नहीं।"

"हाँ, थोड़ा-सा ! मगर इसी प्रसंगमें एक बातकी याद दिला देना ठीक होगा। नूरनगर स्टेशनपर पहले बऊरानीके भइयाको देखकर तुमने जो बातें कहीं थीं, चलती बोलीमें उसे भी ज्यादती कहा जा सकता है।"

"अच्छा, अच्छा, उन सब तर्कोंको रहने दो, तुम क्या कहना चाहते थे, कहो।"

"मुझे तो मालूम पड़ता है कि भाई साहब आज-हो-कलमें बऊरानीको बुलवा भेजेंगे। मुझे मालूम है, बऊरानी इतने आग्रह-से मायके चली आईं, उसके बाद फिर इतने दिन हो गये—जाने-का नाम तक नहीं, इससे भाई साहबका अभिमान हद दर्जे तक पहुँच गया है। यह बात किसी तरह भाई साहबकी समझमें ही नहीं आती कि सोनेके पिंजड़ेसे चिड़ियाको लोभ क्यों नहीं। अबोध चिड़िया है, अकृतज्ञ है।"

"यह तो अच्छी बात है, जेठजी ही बुला लें। बात तो यही थी।"

"मेरी समझसे बुलानेके पहले ही अगर बऊरानी चली जायँ, तो अच्छा हो। भाई साहबके उतने अभिमानकी जीत ही सही। इसके सिवा विप्रदास बाबू भी चाहते हैं कि बऊरानी अपने घर जायँ, मैंने ही मना कर दिया था।"

विप्रदासके साथ इस बारेमें आज क्या-क्या बातें हुई हैं, मोतीकी माने उसका कुछ भी आभास नहीं दिया, बोली—"विप्र-दास बाबूके पास जाकर कहो तो सही।"

"मैं जाता हूँ, सुनकर वे प्रसन्न होंगे।"

इतनेमें कुमुदने दरवाज़ेके पास आकर बाहरसे ही कहा—"भीतर आ सकती हूँ।"

मोतीकी माने कहा—"तुम्हारे लालाजी तो प्रतीक्षामें बैठे ही हैं।"

"जन्म-जन्मसे प्रतीक्षा कर रहा था, अब दर्शन मिले हैं।"

"उँह, लालाजी, इतनी बात बना-बनाकर कहना तुम सीखे कहाँसे ?"

"मुझे खुद ही आश्चर्य होता है, समझमें नहीं आता।"

"अच्छा, चलो अब खाने चलो।"

"खानेसे पहले एक बार तुम्हारे भइयासे मिल लूँ—बातचीत करनी है।"

"नहीं, सो नहीं होगा।"

"क्यों ?"

"आज भइया बहुत बोले हैं, अब आज रहने दो।"

"अच्छी खबर है !"

"सो होने दो, कल चले आना बल्कि। आज कोई भी बात नहीं।"

"कल शायद छुट्टी न मिले, शायद कोई विघ्न आ जाय। दुहाई है तुम्हारी, आज बस एक बार पाँच मिनटके लिए। तुम्हारे भइया खुश होंगे, कोई हानि नहीं पहुँचेगी उन्हें।"

"अच्छा, पहले तुम ब्यालू कर लो, उसके बाद।"

ब्यालू करनेके बाद कुमुद नवीनको विप्रदासके कमरेमें ले गई। देखा कि भइया उस समय भी सोये नहीं हैं। घरमें अँधेरा था, दिआकी लौ मन्द पड़ गई थी। खुले हुए जंगलेमेंसे तारे दिखाई दे रहे हैं; रह-रहकर जोरोंसे दखिनी हवा चली आ रही है; घरके पर्दे, बिछानेकी झालर, अलगनीपर टँगे विप्रदासके कपड़े तरह-तरहकी छाया फैलाते हुए काँप रहे हैं। जमीनपर अखबारका एक पन्ना इधरसे उधर उड़ा-उड़ा फिरता है। विप्रदास अधलेटी हालतमें निश्चल होकर चुपचाप बैठे हैं। आगे बढ़नेमें नवीनके पैर नहीं उठते। सन्ध्याकी छाया और रोगकी शीर्णताने विप्रदासको एक आवरण दे डाला है, मालूम होता है, मानो वह संसारसे बहुत दूर हैं, मानो अन्य लोकमें हैं। मालूम हुआ—उनके समान इस तरहका अकेला आदमी संसारमें और कोई नहीं।

नवीनने आगे बढ़कर विप्रदासके पैर छुए, कहा—"विश्राममें खलल नही डालना चाहता। एक बात कहकर चला जाऊँगा।

समय हो गया, बऊरानी अब घर चलें, इसके लिए हम लोग बाट जोह रहे हैं।"

विप्रदासने कोई उत्तर नहीं दिया, चुपचाप पैठे रहे।

कुछ देर बाद नवीनने कहा—"आपकी आज्ञा पाते हीं उन्हें लिवा जानेकी तैयारी करूँ—"

इतनेमें कुमुद धीरेसे आकर भइयाके पैरोंके पास बैठ गई। विप्रदासने उसके मुँहकी ओर देखते हुए कहा—"अगर तू समझे कि तेरे जानेका समय हो गया, तो जा कुमू।"

कुमुदने कहा—"नहीं, भइया, नहीं जाऊँगी।" कहकर वह विप्रदासके घुटनोंपर औंधी होकर झुक पड़ी।

घरमें सन्नाटा था, सिर्फ़ बीच-बीचमें रह-रहकर जोरोंकी हवा आती और एक ढीली खिड़कीको खड़खड़ा जाती, साथ ही बाहरके बग़ीचेके पेड़के पत्ते भी अकुला उठते।

कुमुद थोड़ी देर बाद उठ खड़ी हुई, नवीनसे बोली—"चलो, अब देर मत करो। भइया, तुम सोओ।"

मोतीकी माने घर आकर नवीनसे कहा—"इतनी ज्यादती लेकिन अच्छी नहीं होती।"

"यानी, आँखोंमें सुई चुभाना चाहे जैसा हो, मगर आँखोंका लाल हो उठना बिलकुल ही ठीक नहीं।"

"नहीं जी, नहीं, यह उनका घमंड है। संसारमें उनके योग्य कुछ मिलेगा ही नहीं, वे सबके ऊपर हैं।"

"मझली बऊ, इतना बड़ा घमंड सबको नहीं सोभता, पर उनकी बात न्यारी है।"

"इसका मतलब यह थोड़े ही है कि नाते-रिश्तेदारोंसे बिगाड़ते फिरें?"

"नाते-रिश्तेदार कहनेसे ही नाते-रिश्तेदार थोड़े ही हो जाते हैं। वे हम लोगोंसे बिकुल अलग श्रेणीके आदमी हैं।

नातेके हिसाबसे उनके साथ व्यवहार करनेमें मुझे संकोच होता है।"

"कोई चाहे कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो, फिर भी नातेदारीका जोर होता है, यह याद रखना।"

नवीन समझ गया कि इस आलोचनामें कुमुदपर मोतीकी माकी ईर्ष्याकी भी बू मौजूद है। इसके सिवा यह भी सच है कि स्त्रियोंके लिए पारिवारिक बन्धनका मूल्य बहुत ज्यादा होता है। इसीसे नवीनने इस विषयमें वृथा तर्क न करके कहा—"और कुछ दिन देख लें। भाई साहबके आग्रहको भी जरा बढ़ जाने दो, इसमें हर्ज क्या है।"

[५३]

मधुसूदनके घरमें श्यामाका स्थान पक्का हो गया है, इससे वह प्रत्याशा कर सकती थी, किन्तु उस बातका उसे अनुभव तो होता नी नहीं। पहले तो उसे ऐसा मालूम हुआ था कि घरके नौकर-चाकरोंपर उसको कर्तृत्व प्राप्त हो गया है, किन्तु अब पद-पदकर समझ रही है कि वे उसे मालिकिनके आसनपर बिठानेको मनसे राजी नहीं हैं। हिम्मत करके प्रकट रूपसे उसकी अवज्ञा कर सकें तो मानो वे सुखकी नींद सोयें—ऐसी हालत है। इसी लिए श्यामा जब-तब बेमतलब उन्हें डाँटती-फटकारती और बिना कारण फरमाइश करके उनके दोष पकड़ती है। खिच-खिच करती रहती है। बाप-महतारी तकको गाली-गलौज देती है। कुछ दिन पहले इस घरमें श्यामा किसी गिनतीमें न थी,—लोगोंकी इस धारणाको धोकर पोंछ डालनेके लिए उसने बड़ी कड़ाईसे माँजने-घिसनेका काम शुरू किया था, लेकिन उसका कुछ परिणाम न निकला। घरके एक पुराने नौकरने श्यामाकी फटकार न सह सकनेके कारण कामसे इस्तीफा दे दिया। इसपर श्यामाको बुरी

तरह सिर झुकाना पड़ा था। उसकी वजह यह कि अपने धन-भाग्यके विषयमें मधुसूदनमें कुछ अन्ध-संस्कार मौजूद हैं। जो नौकर उसकी आर्थिक उन्नतिके समयके हैं, उनकी मृत्यु या पदत्यागको भी वह असगुन समझता है। यही कारण है कि उस समयका एक स्याही-लगा भद्दा पुराना डेस्क आफिस-रूममें हालके क़ीमती असबाबोंके बीचमें बिना किसी संकोचके ज्यों-का-त्यों विराजमान है, और उसपर उसी ज़मानेकी जस्तेकी दावत और एक सस्ते दामकी बिलायती काठकी क़लम अभी तक रखी हुई है। उस क़लमसे उसने अपने व्यापारके पहले और बड़े एक दस्तावेजपर दस्तखत किये थे। उस समयके उड़िया नौकर दधिया ने जब कामसे इस्तीफा दिया, तो मधुसूदनने उसपर ध्यान ही नहीं दिया, उल्टी उसकी तक़दीरसे बख्शीश और मिल गई। इसपर श्यामासुन्दरीने घोरतर अभिमान करना चाहा, मगर वहाँ किसकी दाल गल सकती थी। दधियाका हास्यपूर्ण चेहरा उसे देखना पड़ा। श्यामाके लिए एक मुश्किल है कि वह मधुसूदनको सचमुच ही चाहती है, इसीसे मधुसूदनके मिजाज़पर ज्यादा दबाव डालनेकी उसकी हिम्मत नहीं पड़ती। सुहाग किस सीमा तक आकर स्पर्धाका रूप धारण करेगा, बहुत डरते-डरते उसका अन्दाज़ा करके चलती है। मधुसूदन भी निश्चित समझता है कि श्यामाके बारेमें चिन्ता करने या समय नष्ट करनेकी ज़रूरत नहीं। लाड़-प्यारसे होनेवाले अपव्ययका परिमाण घटा देनेपर भी दुर्घट-नाकी आशंका बहुत कम है। फिर भी श्यामाके बारेमें उसका एक स्थूल मोह है, परन्तु उस मोहको सोलहो आना भोगमें लाते हुए भी आसानीसे उसे सम्हालते हुए चला जा सकता है,—इस आनन्दसे मधुसूदनको उत्साह मिलता है, इसका व्यतिक्रम होनेसे बन्धन टूट जाता। मधुसूदनके लिए कामसे बढ़कर और कोई चीज नहीं। उस कामके लिए सबसे ज्यादा जरूरी है उसका

अविचलित कर्तृत्व। उसकी सीमाके भीतर श्यामाका कर्तृत्व प्रवेश करनेसे डरता है; ज़रासा पैर बढ़ाया था कि ठोकर खाकर लौट आया। इसीसे श्यामा अपनेको बार-बार दान ही करती है, दावा करते ही ठगा जाती है। रुपये-पैसे चीज़ वस्त आदिसे श्यामा हमेशा ही बंचित है—जिसपर उसके लोभका अन्त नहीं। उसमें भी उसे एक हद तक चलना पड़ता है। इतने बड़े धनीसे जिस चीज़की अनायास ही आशा की जा सकती थी, वह भी उसके लिए दुराशा हो गई। मधुसूदन बीच-बीचमें किसी-किसी दिन खुश होकर उसे कुछ-कुछ कपड़ा-लत्ता और गहना-गुरिया ला देता है, लेकिन उससे उसकी संग्रह करनेकी भूख मिटती नहीं, छोटी-मोटी लोभकी चीज़ हड़प करनेके लिए बार-बार उसका हाथ चंचल हो उठता है; किन्तु उसमें भी बाधा है। इसी तरहकी एक मामूली घटनाके लिए कुछ दिन पहले उसके निर्वासनकी व्यवस्था हुई थी, लेकिन श्यामाके संग और सेवाका मधुसूदन आदी हो गया था—उसकी वह आदत पान-तमाखूके अभ्यासकी तरह सस्ती, पर ज़बरदस्त थी। उसमें व्याघात होनेसे मधुसूदनके काममें ही बाधा आयेगी, इस आशंकासे ही अबकी बार श्यामाका दंड रद्द हो गया, परन्तु दंडका भय सिरके ऊपर लटकता रहा।

अपने इस तरहके कमजोर अधिकारके अंदर श्यामासुन्दरीके मनमें एक आसंका लगी ही रहती है—जाने कब आकर कुमुद अपना सिंहासन अधिकार कर बैठे। इस ईर्ष्याकी पीड़ासे उसके मनमें ज़रा भी शान्ति नहीं। वह जानती है कि कुमुदके साथ उसकी प्रतियोगिता चल ही नहीं सकती, दोनोंका क्षेत्र एक नहीं है। कुमुद मधुसूदनके अधिकारके बाहर है—वहीं उसका बेहद ज़ोर है; और श्यामा बहुत रोई-बिलखी है, कितनी ही बार सोचा है—'मैं मर जाऊँ तो अच्छा।' तक़दीर ठोंककर उसने कहा

है—'इतनी सस्ती मैं हुई क्यों ?' उसके बाद सोचा है—'सस्ती हूँ, इसीसे जगह मिल गई है; जिसकी क़ीमत ज्यादा है, उसका आदर ज्यादा है; जो सस्ती है, वह शायद सस्तेपनके कारण ही जीत जाती है।'

मधुसूदनने जब श्यामाको ग्रहण नहीं किया था, तब श्यामाको इतना असह्य दुःख नहीं था। उसने अपने उपवासी भाग्यको एक तरहसे स्वीकार ही कर लिया था। कभी-कभी मामूली खुराकको ही उसने काफ़ी समझा है। आज अधिकार पाने और न पानेमें किसी भी तरह सामंजस्य नहीं हो रहा। 'अब खोया, अब खोया' के डरसे मन आतंकित हो उठा है। भाग्यकी रेल-लाइन ऐसी कच्ची तौरसे बिछाई गई है कि 'डिरेल' (पटरीसे उतरने) का भय सर्वत्र और प्रति क्षणमें ही है। मोतीकी माके पास जाकर एक बार साफ़ मनसे बातचीत करके सान्त्वना पानेकी उसने कोशिश की थी। लेकिन वह ऐसी झुंझलाहटके साथ सिर हिलाकर अलग ही से बचकर निकल गई कि उसका अगर वह कोई घातक बदला ले सकती, तो तुरन्त लेती; परन्तु वह जानती है कि घरके इन्तज़ामके विषयमें मधुसूदन मोतीकी माकी क़द्र करता है, वहाँ ज़रा भी धक्का नहीं सह सकता। तभीसे दोनोंकी बोल-चाल बंद है; जहाँ तक बनता है, मुँह देखादेखी भी नहीं। इस तरह इस घरमें श्यामाका स्थान पहलेसे भी संकीर्ण हो गया है। कहीं भी उसे ज़रा स्वच्छंदता नहीं।

इतनेमें, एक दिन उसने शामको सोनेके कमरेमें आकर देखा टेबिलपर दीवालसे सटा हुआ कुमुदका फोटोग्राफ। जो बज्र उसके सिरपर आकर गिरता, उसकी विद्युत्शिखा उसकी आँखोंके सामने दिखाई दी। काँटेमें फँसी हुइ मछलीकी तरह भीतरसे उसका दिल फड़फड़ाने लगा। मनमें आई कि तसवीरसे निगाह

हटा ले, लेकिन नहीं हटा सकी। एकटक देखती रही, चेहरा फ़क पड़ गया, आँखें जलने लगीं, मुट्ठी मज़बूतीसे बाँध ली। कोई चीज़ तोड़ डालनेकी—फाड़-चीर डालनेकी इच्छा होती है। इस डरसे कि इस घरमें रहनेसे कोई चीज़ नुक़सान कर डालेगी, भागकर वह बाहर निकल आई। अपने घरमें जाकर बिस्तरपर औंधी पड़ रही और बिछौनेकी चादरको चीथ-चीथकर टुकड़े-टुकड़े करडाले।

रात हो आई। बाहरसे बैराने ख़बर दी कि महाराज ऊपर बुला रहे हैं। कहनेकी सामर्थ्य नहीं कि 'नहीं जाती'। झटपट उठकर मुंह-हाथ धोकर बूटीदार ढाके की साड़ी पहनकर ऊपरसे ज़रा खुशबू छिड़ककर गई ऊपर – मधुसूदनके कमरेमें। वह भरसक इस बातकी कोशिशमें रही कि तसवीरपर उसकी निगाह न जाय। लेकिन ठीक तसवीरके सामने ही बत्ती है—उसके सारे प्रकाशने माना किसीकी दीप्त दृष्टिकी तरह उस तसवीरको उद्भासित कर रखा है। घर-भरमें वह तसवीर ही सबसे बढ़कर देखने-लायक़ चीज़ बन गई है। श्यामाने नियमानुसार पनबट्टामेंसे पान निकाल कर मधुसूदनको पान दिया, उसके बाद पैरोंपर हाथ फेरने लगी। किसी भी कारणसे हो, आज मधुसूदन प्रसन्न था। विलायती दुकानसे चाँदीका एक फोटोग्राफका फ्रेम ख़रीद लाया था। गभीरताके साथ श्यामासे उसने कहा—"यह लो।" श्यामाको लाड़ करते समय भी मधुसूदन मधुर रसकी अवतारणामें काफ़ी कंजूसी किया करता है। क्योंकि वह जानता है कि उसे ज़रा भी शह देनेसे फिर वह उसकी मर्यादा नहीं रख सकती। फ्रेम एक ब्राउन कागज़में मुड़ा हुआ था। श्यामाने आहिस्तेसे काग़ज़ खोल डाला, बोली—"क्या होगा इसका ?"

मधुसूदनने कहा—"नहीं जानती, इसमें फोटोग्राफ रखा जाता है।"

श्यामाकी छातीके भीतर मानो किसीने हनके हंटर मारा, बोली—"किसका फोटोग्राफ रखोगे ?"

"तुम खुद अपना रखना। उस दिन वो जो फोटो उतरवाया था।"

"मुझे इतने सुहागका क्या करना है।"—कहकर उसने फ्रेम उठाकर धरतीसे दे मारा।

मधुसूदनको बड़ा आश्चर्य हुआ, बोला—"इसके मानी क्या ?"

"इसका माने कुछ नहीं।"—कहकर हाथोंसे मुँह ढककर रोने लगी। उसके बाद बिछौनेसे उठकर ज़मीनपर पड़कर सिर धुनने लगी। मधुसूदनने सोचा—कम दामकी चीज़ उसे पसन्द नहीं आई, शायद उसकी इच्छा थी एक कीमती गहनेके लिए। दिन-भर आफिसका काम करनेके बाद शामको घर आकर उसे यह उपद्रव ज़रा भी अच्छा न लगा। यह तो लगभग हिस्टीरिया है। हिस्टीरियासे उसे बड़ी चिढ़ है। बड़े ज़ोरसे कड़ककर बोला—"उठो जल्दी, जल्दी उठो !"

श्यामा उठकर तेज़ीके साथ घरसे बाहर चली गई। मधुसूदनने कहा—"यह सब यहाँ किसी तरह नहीं चल सकता।"

मधुसूदन श्यामाको अच्छी तरह जानता है। वह निश्चित समझता था कि अभी आती है, आकर पैरों पड़कर माफी माँगेगी,—उस समय ज़रा डाँटकर दो बातें सुना देनी हैं।

दस बज गये; मगर श्यामा नहीं आई। और एक बार श्यामाके दरवाज़ेके बाहरसे आवाज़ आई—"महाराज बुलाते हैं।"

श्यामाने कह दिया—"महाराजको कह दो कि मेरी तबीयत खराब है।"

मधुसूदन सोचने लगा—इतनी हिमाकत! बड़ी हिम्मत बढ़ गई है, हुक्म पाकर भी नहीं आती।

मनमें सोचा था कि और थोड़ी देर बाद आवेगी। सो भी नहीं आई! ग्यारह बजनेमें पंद्रह मिनट बाक़ी हैं। बिस्तरसे उठकर तेज़ीके साथ वह श्यामाके पास चल दिया। घरके भीतर घुसते ही देखा कि अँधेरा पड़ा है। अंधेरेमें साफ दिखाई दिया। श्यामा ज़मीनपर पड़ी है। मधुसूदनने सोचा—यह सब नखरे हैं, सिर्फ मनवानेके लिए।

गरजकर बोला—"उठके चलो सीधेसे, जल्दी उठो। नखरे मत दिखाओ।"

श्यामा बिना कुछ कहे उठकर चल दी पीछे-पीछे।

[५४]

दूसरे दिन, मधुसूदन आफिस जानेसे पहले खा-पीकर जब ऊपर आराम करने गया, तो देखा कि टेबिलसे तसवीर ग़ायब! और दिनकी तरह श्यामा आज पान लेकर मधुसूदनकी सेवाके लिए तैयार न थी। आज वह गैरहाज़िर थी। उसे बुल-वाया गया। चली तो आई, पर साफ मालूम हुआ कि आज वह ज़रा कुँद है। मधुसूदनने पूछा—"टेबिलपर तसवीर थी, कहाँ गई?"

श्यामाने अत्यन्त आश्चर्यका बहाना करके कहा—"तसवीर! कैसी तसवीर!"

बहानेकी हद ज़रा ज़रूरतसे ज़्यादा बढ़ गई। साधारणतः पुरुषोंकी बुद्धिपर स्त्रियोंको अश्रद्धा होती है, इसीसे ऐसा हुआ।

मधुसूदनने गुस्सेमें आकर कहा—"तसवीर देखी नहीं तुमने!"

श्यामाने निहायत भली-मानसकी तरह मुँह बनाकर कहा—"नहीं तो!"

मधुसूदन गरज उठा—"झूठ बोल रही हो!"

"झूठ क्यों बोलूँगी, तसवीर लेकर मैं करूँगी क्या?"

"कहाँ रखी है, जाओ निकालकर लाओ जल्दी! नहीं तो अच्छा नहीं होगा।"

"हे भगवान, कैसी आफत है। तुम्हारी तसवीर मैं कहाँ पाऊँगी, जो निकाल लाऊँ?"

बैरा बुलाया गया। मधुसूदनने उससे कहा—"मझले बाबूको बुलाओ।"

नवीन आया। मधुसूदनने कहा—"बड़ी बहूको बुला लो।"

श्यामा मुँह बनाकर काठकी पुतलीकी तरह चुपचाप खड़ी रही। नवीनने कुछ देर बाद सिर खुजालाते हुए कहा—"भाई साहब, एक दफे तुम खुद वहाँ जाओ तो कैसा? तुम्हीं जाकर अगर लिवा लाओ तो बऊरानीको खुशी होगी।"

मधुसूदन कुछ देर गम्भीरताके साथ हुक्का पीता रहा, फिर बोला—"अच्छा, कल इतवार है, कल जाउँगा।"

नवीनने अपनी स्त्रीसे जाकर कहा—"एक काम कर आया हूँ"

"मेरी सलाह लिये बिना ही?"

"सलाह लेनेकी बक्त नहीं था।"

"तब तो मालूम होता है तुम्हें पछताना पड़ेगा।"

"ताज्जुब नहीं' जन्मपत्रीमें बुद्धि-स्थानमें और कोई ग्रह नहीं है, है सिर्फ अपनी स्त्री, इसीलिए हमेशा तुम्हें अपने आसपास रखकर चलता हूँ। बात यह है—भाई साहबने आज हुक्म दिया कि बऊरानीको बुला लो। मैं चटसे कह बैठा—तुम खुद जाकर अगर लिवा लाओ तो अच्छा हो। भाई साहब न मालूम कैसे मिजाजमें थे, राजी हो गये। तभीसे सोच रहा हूँ, इसका नतीजा क्या होगा।"

"अच्छा नहीं होगा। विप्रदास बाबूका जैसा मिजाज़ देखा, क्या कहते, क्या कह बैठेंगे—कुछ ठीक नहीं। अन्तमें जाकर कहीं महाभारतकी लड़ाई न छिड़ जाय। तुमने ऐसा क्यों किया ?"

पहला कारण यह है कि बुद्धिका कोठा ठीक उसी समय सूना था—तुम थीं दूसरी जगह। दूसरी बात यह कि उस दिन बऊ-रानीने जब कहा था कि 'मैं नहीं जाऊँगी', तो मैं उसके भीतरी मानीको समझ गया था। उनके भइया बीमार हालतमें कलत्ते आये, फिर भी एक दिनके लिए महाराज उनसे मिलने नहीं गये,—उनकी यह उपेक्षा उन्हें बहुत खटक रही थी।"

सुनकर मोतीकी मा ज़रा चौंक उठी, उसे आश्चर्य हुआ कि अब तक इस बातपर उसका ध्यान क्यों नहीं गया। दर असल बात यह है कि ससुरालके बड़प्पनपर उसे ज़रा अहंकार है—यद्यपि वह खुद इस बातको नहीं जानती। उसका मन इस बातकी गवाही नहीं देता कि अन्य साधारण आदमियोंकी तरह महाराजा मधुसूदनपर भी नातेदारीकी जिम्मेवारी है।

उस दिनके तर्कको दुहराते हुए नवीनने ज़रा चुटकी ली, कहा—"अपनी बुद्धिसे शायद यह बात याद नहीं आता, तुम्हीने मुझे याद दिला दी थी।"

"कैस, सुनूं ?"

"उस दिन तुम्हींने कहा था कि नातेदारीकी जिम्मेवारी आत्म-अभिमानसे भी बढ़कर है। इससे मुझे यह समझनेकी हिम्मत आ गई कि 'महाराज' जैसे इतने बड़े आदमीको भी विप्र-दास बाबूसे मिलने जाना चाहिए था।"

मोतीकी मा हार माननेको तैयार नहीं, बात ही उड़ा दी—"कामके वक्त इतनी फ़ालतू बातें करते हो, जिसका ठीक नहीं। पहले यह सोचो कि करना क्या चाहिए।"

"पहलेसे ही सब बातोंमें शुरूसे अन्त तक सोचनेसे पीछे धोखा खाना पड़ता है। पहले सोचना चाहिए हालकी बात—विप्रदास बबूसे भाई साहबका मिलने जाना। मिलने जानेपर उसका नतीजा क्या हो सकता है, अभीसे इस बातकी चिन्ता करना अपनी चिन्ताशीलताका परिचय देना है, परन्तु वह होगी अति-चिन्ताशीलता।"

"क्या जानें, मुझे मालूम होता है, बड़ी मुश्किल होगी।"

[५५]

उस दिन सवेरे बहुत देर तक कुमुद अपने भइयाके कमरेमें बैठकर गाती-बजाती रही है। सवेरेके सुरमें अपनी व्यक्तिगत वेदना विश्वकी चीज़ बनकर असीम रूपमें दिखाई देती है। बन्धनसे उसकी मुक्ति होती है। महादेवकी जटामें सर्प मानो भूषण होकर शोभा पाते हैं। व्यथाकी नदियाँ व्यथाके समुद्रमें जाकर बड़ा विराम पाती हैं। उसका रूप बदल जाता है, चंचलता लुप्त हो जाती हूँ गम्भीरतामें। विप्रदासने उसास भर कर कहा—"संसारमें क्षुद्र काल ही सत्य होके दिखाई देता है कुमू, चिरकाल रहता है ओटमें; गानमें चिरकाल ही आता है सामने, क्षुद्र काल हो जाता है तुच्छ, उसीसे मनको मुक्ति मिलती है।"

इतनेमें खबर आई—"महाराज मधुसूदन आये हैं।"

क्षणमें कुमुदका चेहरा फ़क पड़ गया; उसे देखकर विप्रदासके हृदयको बड़ी चोट पहुँची, बोले—"कुमू, तू भीतर जा। तेरी शायद ज़रूरत नहीं होगी।"

कुमुद जल्दीसे चली गई। मधुसूदन जान-बूझकर ही आया है विना खबर दिये। इस पक्षवालोंको आयोजनके दैन्यको ढकने-

का अवकाश न मिले, यह थी उसके मनमें। मधुसूदनकी धारणा है कि बड़े घरके आदमी होनेके कारण विप्रदासके मनने एक तरहका बड़प्पन है। यह कल्पना उससे सही नहीं जाती, इसीलिए आज वह इस तरह आया कि मानो मिलने नहीं आया दर्शन देने आया है।

मधुसूदनकी पोशाक थी विचित्र,—घरके नौकर-चाकर, दास-दासियाँ उसके प्रभावमें मुग्ध हो जायँ—ऐसा वेश था। धारीदार विलायती शर्टके ऊपर एक रंगीन फूलदार सिल्ककी वास्कट है, कँधेपर तह की हुई चद्दर, पहनावेमें अच्छी तरह हिफ़ाजतसे गुनी हुई काली किनारीकी शान्तिपुरी धोती, पैरोंमें वार्निशदार काले दरबारी जूते, बड़े-बड़े हीरे-पन्नोंकीअंगूठियोंसे अंगुलियाँ झिल-मिला रही हैं। प्रशस्त उदरकी परिधि वेष्टन किये हुए घड़ीकी मोटी सोनेकी चेन पड़ी है, हाथमें एक शौक़ीनी छड़ी है—हाथीके मुँहकी शकलका उसका हत्था है, उसपर तरह-तरहके रत्न जड़े हुए हैं। मधुसूदन जल्दीसे असमाप्त नमस्कारका आभास देकर पलंगके पास एक आराम-कुर्सीपर बैठ गया, बोला—"कैसी तबियत है विप्रदास बाबू, शरीर तो उतना अच्छा नहीं मालूम होता।"

विप्रदासने उसका कुछ उत्तर न देकर कहा—"तुम्हारा शरीर तो अच्छा ही मालूम होता है।"

"खूब अच्छा हो, सो तो नहीं कह सकता—रोज़ शामको सिरमें दर्द होने लगता है, और भूख भी अच्छी तरह नहीं लगती। खाने-पीनेकी ज़रा भी बदपरहेज़ी हुई कि तकलीफ हुई। और फिर कभी-कभी रातको नींद नहीं आती, यह सबसे ज्यादा दुखदायी है।"

शुश्रूषाके लिए हरदम किसीकी ज़रूरत है, इस बातकी भूमिका पाई गई।

विप्रदासने कहा—"शायद आफिसके काममें ज्यादा परिश्रम करना पड़ता है।"

"ऐसा कुछ नहीं! आफिसका काम अपने ही आप चला जाता है, मुझे विशेष कुछ नहीं देखना पड़ता। मैक्नटन साहबपर ही ज्यादातर कामका भार है, सर आर्थर पीबडी भी मुझे बहुत कुछ सहायता पहुँचाते हैं।"

पेचवान आया, पानका डिब्बा और सुपारी-इलायची-ज़र्दा आदि लिये नौकर आ खड़ा हुआ, उसमें से एक इलायची उठाकर मुँहमें डाल ली, और कुछ नहीं लिया। पेचवानका नल हाथमें लेकर दो-एक बार मुँहमें दिया; फिर वह बाएँ हाथमें गोदके ऊपर ही लटकता रहा फिर उसका व्यवहार नहीं हुआ। भीतरसे खबर आई—नाश्ता तैयार है। मधुसूदनने ज़रा उतावलीके साथ कहा—"यह तो नहीं होगा। पहले ही कह चुका हूँ, खाने-पीनेके सम्बन्धमें बड़े परहेज़से चलना पड़ता है।"

विप्रदासने फिर दूसरी बार अनुरोध नहीं किया। नौकरसे कहा—"बुआजीको कह दे, उनकी तबीयत ठीक नहीं, कुछ खायेंगे नहीं।"

विप्रदास चुप बने रहे। मधुसूदनने आशा की थी, कुमुदका ज़िक्र वे खुद ही करेंगे। इतने दिन हो गये, अब कुमुदको ससुराल लिवा ले जानेके लिए विप्रदास आप ही प्रसंग छेड़ेंगे, मगर कुमुदका तो नाम भी नहीं लेते। भीतर-ही-भीतर उसे ज़रा-ज़रा गुस्सा आने लगा। सोचने लगा, यहाँ आकर भूल की! यह सब नवीनकी ही शरारत है। अभी जाकर उसे खूब कड़ी सज़ा देनेके लिए उसका मन छटपटाने लगा।

इतनेमें एक मामूली-सी काली किनारीकी सफेद साड़ी पहने, आँखों तक घूँघट किये हुए कुमुद आ पहुँची। विप्रदासको ऐसी

उम्मेद न थी। वे आश्चर्यमें आ गये। पहले पतिके, फिर भइया-के पाँव छूकर कुमुदने मधुसूदनसे कहा—"भइयाकी तबियत खराब है, कमज़ोर हैं, इन्हें ज्यादा बात करनेकी मनाई कर दी है डाक्टरने। तुम इस बगलके कमरेमें आ जाओ।"

मधुसूदनके चेहरेपर सुर्खी आ गई। जल्दीसे उठ खड़ा हुआ। पेचवानकी नली गोदसे धरतीपर गिर पड़ी विप्रदासके मुँहकी ओर बिना देखे ही कहा—"अच्छा, तो अब चलता हूँ।"

पहले तो मनमें आई कि दनदनाता हुआ सीधा जाकर गाड़ी-पर सवार हो और घर चला जाय, परन्तु मन जो हिलग गया है। बहुत दिन बाद आज कुमुदको देखा है। मामूली सीधे-सादे कपड़े पहने हुए उसने आज ही देखा है। उसे पहले-पहल। कुमुदको इतना सुन्दर पहले कभी नहीं देखा उसने। इतनी संयत इतनी सरल। मधुसूदनके घर वह थी बनी-ठनी बहू—जैसे बाहरकी लड़की। आज मानो वह बहुत पाससे दिखाई दी। कैसी सरल सौम्य मूर्ति है। मधुसूदनका जी चाहने लगा—ज़रा भी देर न करके अभी उसे ले जाय। 'वह मेरी है, मेरी ही है, मेरे घरकी है, मेरे ऐश्वर्यकी है, मेरे सारे तन और मनकी है'—हेर-फेरकर यही कहनेको जी चाहता है उसका।

बगलके कमरेमें सोफेकी ओर इशारा करके कुमुदने जब बैठनेके लिए कहा, तो उसे बैठना ही पड़ा बिलकुल बाहरका कमरा न होता, तो हाथ पकड़कर कुमुदको अपने पास सोफेपर बिठा लेता। कुमुद बैठी नहीं, एक कुर्सीके पीछे उसकी पीठपर हाथ रखकर खड़ी रही। बोली—"मुझसे कुछ कहना चाहते हो?"

ठीक इस सुरमें यस प्रश्न मधुसूदनको अच्छा न लगा, कहा—"चैलोगी नहीं घर?"

"नहीं।"

मधुसूदन चौंक पड़ा, बोला—"बात क्या है!"

"मेरी तो तुम्हें ज़रूरत नहीं।"

मधुसूदने समझा—श्यामासुन्दरीकी बात सुन ली होगी, यह उसीका अभिमान है। यह अभिमान उसे अच्छा ही लगा। कहने लगा—"क्या बात कहती हो, जिसका ठीक नहीं। जरूरत नहीं तो क्या है? सूना घर किसे अच्छा लगता है?"

इस विषयमें वाद-विवाद करनेकी कुमुदकी प्रवृत्ति न हुई। संक्षेपमें फिरसे उसने कहा—"मैं नहीं जाऊँगी।"

"इसके मानी? घरकी बहू घर नहीं जाओगी—?"

कुमुदने संक्षेपमें कहा—"नहीं।"

घधुसूदन सोफेसे उठ खड़ा हुआ, बोला—"क्या! जाओगी नहीं! जाना ही होगा।"

कुमुदने कुछ जवाब नहीं दिया। मधुसूदन कहने लगा—"जानती हो, पुलिस बुलाकर तुम्हें ले जा सकता हूँ चुटिया पकड़-कर! 'नहीं' कहनेसे ही हो गया!"

कुमुदने चुप बनी रही। मधुसूदनने गरजकर कहा—"भइया के स्कूलमें फिर नूरनगरी चाल सीखना शुरू कर दिया मालूम होता है।"

कुमुदने एक बार तिरछी नज़रसे भइयाकेकमरेकी तरफ देखा, फिर बोली—"चुप हो जाओ, इस तरह चिल्लाकर बात मत करो।

"क्यों? तुम्हारे भइयासे डरते हुए बात करना होगा क्या? मालूम है, इसी घड़ी उन्हें मैं घरसे निकालकर रास्तेमें खड़ा कर सकता हूँ।"

दूसरे ही क्षणमें कुमुदने देखा कि उसके भइया दरवाजे पर आकर खड़े हो गये हैं। लम्बा क़द है, दुबला-पतला शरीर, पांडुवर्ण मुख, बड़ी-बड़ी आँखोंसे ज्वाला निकल रही है, एक

मोटा सफेद चदरा ओढ़े हुए हैं—छोर उसका जमीनपर लोट रहा है; कुमुदको बुलाकर कहा—"आ कुमू, मेरे कमरेमें आ जा।"

मधुसूदन चिल्ला उठा, बोला—"याद रहेगी तुम्हारी यह हिमाक़त! तुम्हारे नूरनगरका नूर न मिटा दिया तो मेरा नाम मधुसूदन नहीं।"

अपने कमरेमें पहुँचते ही विप्रदास बिछौनेपर लेट गये। आँखे बन्द कर लीं, नींदसे नहीं—थकावट और चिन्तासे। कुमुद सिरके पास बैठकर पंखासे हवा करने लगी। इस तरह बहुत देर हो जानेपर क्षेमा-बुआने आकर कहा—"आज क्या खायेगी नहीं कुमू? रात तो बहुत हो गई?"

विप्रदासने आँखें खोलकर कहा—"कुमू, जा खा आ।—ज़रा अपने कालू-भइयाको भेज देना।"

कुमुदने कहा—"भइया, तुम्हारे पैरो पड़ती हूँ, अभी कालू भइयाको रहने दो, ज़रा सोनेकी कोशिश करो।"

विप्रदास मुँहसे कुछ न कहकर गहरी वेदनाकी दृष्टिसे कुमुदके मुँहकी ओर देखते रहे। थोड़ी देर बाद गहरी साँस लेकर फिर आखें मीच लीं। कुमुद धीरेसे उठकर बाहर निकल आइ, और दरवाज़ा भेड़ दिया।

थोड़ी देर बाद ही कालूने खबर भेजी कि वह मिलना चाहते हैं। विप्रदास उठकर तकियेके सहारे बैठ गये।

कालूने कहा—"जमाई आकर थोड़ी देर बाद ही चल दिये-क्या, बात क्या है? कुमुदकी विदाके बारेमें कुछ कहा था क्या उन्होंने?"

"हाँ, कहा तो था। कुमुदने उसका जवाब दे दिया है,—नहीं जायगी वह।"

कालू बहुत डर गया, बोला—"कहते क्या हो, भाई साहब ! तब तो सत्यानास हो गया।"

"सत्यानाससे हम लोग कभी भी नहीं डरे, डरते हैं असम्मान से—अपमानसे।"

"तो तैयार हो जाओ देर करना ठीक नहीं। खूनमें भरा है, जायगा कहाँ। मैं जानता हूँ, तुम्हारे पिताजीने मजिस्ट्रेटको नीचा दिखानेके लिए कम से कम दो लाख रुपयेका नुकसान उठाया था। छाती ठोंककर विपत्ति बुलाना, यह तो तुम लोगोंका पैत्रिक शौक है। यह बात कम-से-कम हमारे खानदानमें नहीं है, इसीसे तुम लोगोंका पागलपन मुझसे चुपचाप नहीं सहा जाता।—मगर अब बचें कैसे ?"

विप्रदास ऊँचे उठे हुए बाएँ घुटनेपर दाहना पैर रखकर तकियेके सहारे लेट गये और आँखें मींचकर कुछ सोचने लगे। अन्तमें सोच-साचकर आँखें खोलकर बोले—"लिखा-पढ़ीकी शर्तके अनुसार मधुसूदन छः महीनेका नोटिस बिना दिये हमसे रुपया माँग ही नहीं सकता। इतनेमें सुबोध आ जायगा असाढ़ महीनेसे—तब कोई-न-कोई उपाय हो जायगा।"

कालूने जरा गुस्सेमें ही कहा—"हाँ, उपाय तो हो ही जायगा। बत्तियाँ एक साथ बुझतीं, सो न बुझकर एक-एक करके भद्रतासे बुझेंगी।"

"बत्ती बिलकुल नीचेके खानेमें आकर जल रही है, अब फर्राश उसे चाहे जैसे फूँककर बुझावे—उसमें ज्यादा हाय-तोबा मचानेकी कोई बात नहीं। उस अन्तिम उजालेके लिए तरकीब ढूँढ़ना अब अच्छा नहीं लगता, उससे तो पूरा अन्धकार ही भला है—उसमें शान्ति मिलती है।"

कालूके हृदयको चोट पहुँची। उसने समझा—ये अस्वस्थ आदमीके विचार हैं, विप्रदास तो ऐसे निराशावादी नहीं हैं।

परिणामको रोकनेके लिए विप्रदास अब तक तरह-तरहके प्लैन सोचते रहते थे। उन्हें आशा थी कि बचा लेंगे। आज उस बात-को वे सोच भी नहीं सकते,—आशा करनेका भी ज़ोर नहीं।

कालूने करुण दृष्टिसे विप्रदासके मुँहकी ओर देखते हुए कहा—"तुम्हें चिन्ता करनेकी कोई ज़रूरत नहीं, भाई साहब, जो कुछ क.ना होगा, मैं ही कर लूँगा। जाऊँ एक बार दलालोंके यहाँ घूम आऊँ।"

दूसरे दिन विप्रदासके नाम एक अंगरेजीमें लिखी हुई चिट्ठी आई—मधुसूदनकी। उसकी भाषा थी वकीली ढंकी—शायद अटर्नीसे लिखाई होगी। वह निश्चित रूपसे जानना चाहता है कि कुमुदको वे भेजेंगे या नहीं, उसके बाद उचित कार्रवाई करना चाहता है।

विप्रदासने कुमुदसे पूछा—"कुमू, अच्छी तरह सब सोच-समझ लिया है तूने?"

कुमुदने कहा—"सोचना मैंने खतम कर दिया है, इसीसे मेरा मन आज खूब निश्चिन्त है। ठीक मालूम होता है कि जैसी मैं यहाँ थी वैसी ही हूँ—बीचमें जो कुछ हुआ, सब सपना था।"

"अगर तुझे ज़बरदस्ती ले जानेकी कोशिश हुई, तो, तू ज़ोरके साथ अपनेको सम्हाल सकेगी?"

"तुम्हारे ऊपर अगर ज़ुल्म न हुआ, तो अपनेको मैं खूब अच्छी तरह सम्हाल सकती हूँ।"

"इसलिए पूछ रहा हूँ कि अन्तमें यदि तुझे वहाँ जाना ही पड़ा, तो जितनी देर करके जायगी उतना ही वह भद्दा होगा, उन लोगोंके साथ रहते हुए उनके सम्बन्ध-सूत्रसे तेरा मन कहींसे भी कुछ बँधा है क्या?"

"जरा भी नहीं। सिर्फ नवीनसे, मोतीकी मासे और हाबलूसे मेरा प्रेम हो गया है। मगर वे ठीक दूसरे घरके मालूम होते हैं।"

"देख कुमू, वे ऊधम मचायेंगे। समाजके जोरसे, क़ानूनके जोरसे उपद्रव करनेका अधिकार उन्हें है। इसीलिए, उसकी उपेक्षा करनी ही होगी। और ऐसा करनेमें लज्जा, संकोच, भय—सबको तिलांजलि देकर मनुष्य-समाजके सामने खड़ा होना होगा, भीतर-बाहर चारों ओर बदनामीका तूफान उठ खड़ा होगा, उसके बीचमें सिर उठाकर खड़ा रहना ही होगा तुझे।"

"भइया, उससे तुम्हारा अनिष्ट और अशान्ति तो न होगी?"

"अनिष्ट और अशान्ति तू कहती किसे है कुमू? तू अगर असम्मानके अंदर डूबी रहे, तो उससे बढ़कर मेरा अनिष्ट और क्या हो सकता है? यदि समझूँ कि जिस घरमें तू है वह तेरा अपना घर नहीं हो सका—तुझपर जिसका एकमात्र अधिकार है, वह तेरे लिए बिलकुल पराया है, तो मेरे लिए उससे बढ़कर अशान्ति और क्या हो सकती है—मैं नहीं सोच सकता। बाबूजी तुझे बहुत प्यार करते थे, लेकिन उस ज़मानेमें मालिक लोग रहते थे दूर-ही-दूर। तेरे लिए पढ़ना-लिखना भी जरूरी है, इस बातको वे कभी सोचते ही न थे। मैंने खुद शुरूसे तुझे सिखाया है, तुझे बड़ा किया है। तेरे लिए मैं पिता-मातासे किसी भी अंशमें कम नहीं हूँ। सिखा सिखू कर बड़ा करनेकी जिम्मेदारी कितनी बढ़ जाती है, आज मैं समझ रहा हूँ। अगर तू और लड़कियोंकी तरह होती, तो कहीं भी तुझे बाधा नहीं आती। आज जहाँ तेरी स्वाधीनताको कोई समझता नहीं—उसकी कोई क़द्र नहीं—वहाँ तो तेरे लिए नरक है। मैं किस कलेजेसे तुझे वहाँ निर्वासित करके रहूँगा? अगर तू छोटी बहन न हो कर

भाई होती, और उस हालतमें तू यहाँ जैसे रहती, उसी तरह हमेंशा तू रह न मेरे पास।"

भइयाकी छातीके पास खाटके किनारे सिर रखकर दूसरी ओर मुँह फेरकर कुमुदने कहा—"लेकिन मैं तुम लोगोंपर भार बनकर तो नहीं रहूँगी ? ठीक कह रहे हो ?"

कुमुदके माथेपर हाथ फेरते हुए विप्रदासने कहा—"भार क्यों होने लगी, बहन ? तुझसे खूब मेहनत करा लूँगा। मेरा सब काम रहेगा तेरे जुम्मे। कोई प्राइवेट-सेक्रेटरी भी इस तरहका काम नहीं कर सकेगा। तुझे बाजा सुनाना पड़ेगा, मेरा घोड़ा तेरे जुम्मे रहेगा। इसके सिवा, तुझे मालूम है कि मैं पढ़ाना बहुत पसंद करता हूँ। तुझ जैसी छात्रा मिलेगी कहाँ, बता ? एक काम करेंगे, बहुत दिनोंसे मुझे फारसी पढ़नेका शौक़ है। अकेले पढ़नेमें जी नहीं लगता। तुझे साथी बना लूँगा, ज़रूर तू मुझसे आगे बढ़ जायगी, मैं तुझसे ज़रा भी ईर्ष्या नहीं करूँगा—देख लेना तू।"

सुनते-सुनते कुमुदका हृदय पुलकित हो उठा, इससे बढ़कर जीवनमें और क्या सुख हो सकता है।

थोड़ी देर बाद विप्रदास फिर कहने लगे—"और एक बात तुझसे कहे देता हूँ कुमू, बहुत जल्दी ही हम लोगोंका ज़माना बदलनेवाला है, हमारा रहन-सहन भी बदल जायगा। हमें रहना होगा गरीबोंकी तरह। तब तू ही होगी हम गरीबोंका ऐश्वर्य।"

कुमुदकी आँखोंमें आँसू भर आये, बोली—"मेरे ऐसे भाग्य हों, तो मैं जी जाऊँ।"

विप्रदास मधुसूदनकी चिट्ठीको पी गये, कुछ उत्तर नहीं दिया।

[५६]

दो दिन बाद ही मोतीकी मा और हाबलूको साथ लिये नवीन आ पहुँचा। हाबलू ताईकी गोदमें जाकर उसकी छातीसे सिर लगाकर जरा रो लिया। उसका यह रोना किस लिए है, मुश्किल है बताना,—अतीतके लिए अभिमान है, या वर्त्तमानके लिए लाड़ या भविष्यके लिए चिन्ता ?

कुमुदने हाबलूको छातीसे लगाकर कहा—"कठिन संसार है, गोपाल, रोनेका अन्त नहीं। क्या है मेरे पास, क्या दे सकती हूँ मैं, जिससे मनुष्यकी सन्तानका रोना कम हो जाय। रोनेसे रोना मिटाना चाहती हूँ, उससे ज्यादा शक्ति नहीं मुझमें। जो प्रेम अपनेको देता है—उससे ज्यादा और कुछ दे नहीं सकता—बेटा, वह प्रेम तुम लोगोंको मिला है ; ताई तेरी हमेशा नहीं रहेगी, पर इस बातको याद रखना, याद रखना, याद रखना।" कहकर कुमुदने उसकी मिट्ठी ली।

नवीनने कहा—"बऊरानी, अब रजबपुर जा रहे हैं—पैत्रिक घरमें ; यहाँकी बारी खतम हुई।"

कुमुदने व्याकुल होकर कहा—"मुझ अभागिनने आकर तुम लोगोंपर यह आफत ला दी।"

नवीनने कहा—"ठीक इससे उल्टी बात है। बहुत दिनोंसे जानेके लिए जी चाहता था। बोरिया-बसना बाँधकर तैयार हो रहा था, इतनेमें तुम आ गईं हमारे घर। घरकी आस खूब अच्छी तरहसे ही मिट गई थी, पर विधातासे सहा नहीं गया।"

उस दिन मधुसूदनने घर जाकर एक बड़ा-भारी कांड रच डाला था—यह पता लगा।

नवीन चाहे कुछ भी कहे, मोतीकी माको सन्देह न रहा कि कुमुदने ही उनकी घर-गिरस्तीको इस तरह उलट-पुलट दिया है, और उस अपराधको वह सहजमें भूलना नहीं चाहती। उसका कहना यह है कि अब भी कुमुदको वहाँ जाना चाहिए सिर झुकाकर, उसके बाद चाहे जितना अपमान हो, उसे सह लेना चाहिए। उसने स्वरको ज़रा कठोर करके ही पूछा—"तुम क्या सासुरेको कभी जाओगी ही नहीं, निश्चय कर लिया है?"

कुमुदने उसके उत्तरमें कठोरतासे ही कहा—"नहीं, नहीं जाऊँगी।"

मोतीकी माने पूछा—"तो फिर तुम क्या करोगी, गति कहाँ है तुम्हारी?"

कुमुदने कहा—"इतनी बड़ी पृथ्वी है, इसमें कहीं-न-कहीं मेरे लिये भी थोड़ासा ठौर हो सकता है। जीवनमें बहुत-कुछ खो जाता है, लेकिन फिर भी कुछ बाक़ी रहता है।"

कुमुद समझ रही थी कि मोतीकी माका मन उससे बहुत-कुछ दूर हट गया है। नवीनसे उसने पूछा—"लालाजी, तो क्या करोगे अब?"

"नदी-किनारे थोड़ीसी ज़मीन है, उससे रूखा-सूखा खानेको भी मिल जाया करेगा, और कुछ-कुछ हवा भी खानेको मिला करेगी।"

मोतीकी माने ज़रा गरमीके साथ कहा—"अजी जनाब, इसके लिए तुम्हें फिकर नहीं करनी होगी। उस मिर्ज़ापुरके अन्न-जलपर हक़ रखती हैं हम भी, उसे कोई छीन नहीं सकता। हम लोग तो उतने ज्यादा इज्जतदार आदमी नहीं हैं कि जेठजीके निकाल देनेसे ही चटसे वैरागी होकर चल देंगे। वे ही फिर आज

नहीं, कल बुलावेंगे; तब फिर चले भी आवेंगे, तब तकके लिए सब्र है हममें—बस, कहे देती हूँ मैं।"

नवीनने जरा क्षुण्ण होकर कहा—"इस बातको मैं जानता हूँ मझली बऊ; लेकिन इसकी मैं बड़ाई नहीं करता। पुनर्जन्म यदि हो, तो इज्जतदार होकर ही पैदा होऊँ, फिर अन्न-जलकी अगर कमी भी हो, तो वह भी मंजूर है।"

वस्तुतः नवीनने बहुत दफे भाई साहबके आश्रय छोड़कर गाँवमें जाकर खेती-बारी करनेका संकल्प किया है। मोतीकी मा मुँहसे तो खूब हाँकती रही है, पर काम पड़नेपर कुछ नहीं,—नवीनको बार-बार रोक लिया है। वह जानती है कि जेठजीपर उसका पूरा हक़ है। जेठ तो ससुरके समान होते हैं। उसकी रायसे—वे जेठ ठहरे, अन्याय कर सकते हैं, मगर उसे अपमान नहीं कहा जा सकता। कुमुदके साथ उसके पतिका व्यवहार कैसा भी क्यों न हो, उसके मानी यह नहीं कि वह पतिका घर ही छोड़ दे, यह बात मोतीकी माके लिये 'दुनियासे न्यारी' है।

ख़बर आई—"डाक्टर साहब आये हैं।" कुमुदने कहा—"ज़रा ठहरो, मैं अभी आती हूँ, सुन आऊँ डाक्टर क्या कहता है।"

डाक्टर कुमुदसे कह गया—"नब्ज़ पहलेसे कुछ ख़राब मालूम होती है, रातको नींद कम आती है, शायद रोगीको विश्राम नहीं मिलता अच्छी तरह।"

कुमुद अतिथियोंके पास वापस जा रही थी, इतनेमें कालूने आकर कहा—"एक बात बिना कहे रहा नहीं जाता, कूमू, जाल बड़ा जटिल हो चला है, तुम अगर इस समय ससुराल नहीं जाओगी, तो विपत्ति और भी बढ़ जायगी। मुझे तो कोई उपाय सूझ नहीं पड़ता।"

कुमुद चुपचाप खड़ी रही। कालू कहने लगा—"तुम्हारे ससुरालसे ताक़ीद आई है, उसकी पर्वाह न करने लायक़ सामर्थ्य क्या हम लोगोंमें है? हम लोग बिलकुल उनकी मुट्ठीमें जो हैं।"

कुमुदने बरामदेकी रेलिंगको दबाते हुए कहा—"मेरी कुछ समझमें नहीं आता कालू-भइया। जी हाँपने लगता है, मनमें आती है—सिवा मौतके और कोई रास्ता ही नहीं खुला मेरे लिए।"—यह कहकर कुमुद जल्दीसे चली गई।

कुमुद जिस समय भइयाके घरमें थी, उसी बीचमें मोतीकी माके साथ क्षेमा-बुआकी थोड़ी-बहुत बातचीत हो गई। कई तरहके लक्षण मिलाकर दोनोंके मनमें संदेह हो गया है कि कुमुद गर्भ-वती है। मोतीकी माको बहुत खुशी हुई, मन ही मन बोली—'भगवान करें ऐसा ही हो। अब ठीक है! मानिनी ससुरालकी अवज्ञा करना चाहती है, लेकिन अब तो नाड़ियोंमें गाँठ लग गई, यह सिर्फ आँचल और छोरको गाँठ थोड़े ही है,—भागके जायगी कहाँ!'

मोतीकी माने कुमुदको एकान्तमें ले जाकर अपने सन्देहकी बात उससे कही। कुमुदका चेहरा उतर गया। उसने हाथकी मुट्ठी बाँधकर कहा—"नहीं, नहीं, यह हो ही नहीं सकता, हर्गिज़ नहीं।"

मोतीकी माने गुस्सेमें आकर ही कहा—"क्यों नहीं हो सकता बहन? तुम चाहे जितने बड़े घरकी लड़की क्यों न हो, तुम्हारे लिए कुछ अनोखे नियम थोड़े ही हो जायँगे—संसारके नियम थोड़े ही पलट जायँगे। तुम घोषालोंके घरकी बहू हो, घोषाल-वंश के इष्टदेवता तुम्हें क्या सहजमें छुट्टी देंगे? भागनेका रास्ता रोक-कर खड़े हुए हैं वे, समझीं।"

पतिके साथ कुमुदके तीन महीनेके परिचयने दिनों दिन भीतर-ही-भीतर कैसा विकृत रूप धारण किया है, गर्भकी आशंका

से उसके हृदयपर वह बिलकुल स्पष्ट हो उठा। आदमी आदमीमें जो भेद सबसे अधिक दुरतिक्रमणीय है, उसके उपादान बहुधा अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। भाषामें, भावमें, व्यवहारके छोटे-छोटे इशारोंमें, जब कुछ भी न कर रहा हो उस समयके अव्यक्त इङ्गितमें, गलेके स्वरमें, रुचिमें, रीतिमें, जीवन-यात्राके आदर्शमें उस भेदके लक्षण आभास-रूपमें फैले रहते हैं। मधुसूदनके अंदर ऐसी कोई चीज़ है, जिसने कुमुदको केवल चोट ही पहुँचाई हो, सो नहीं, उसे बहुत ज्यादा शर्मिन्दा भी किया है। उसे वह अश्लील-सा मालूम हुआ है। मधुसूदन अपने जीवनके प्रारम्भमें एक दिन बहुत ज्यादा ग़रीब था, इसीलिये 'पैसे' के महात्म्यके विषयमें वह बात-बातमें अपनी जो राय जाहिर करता था, उस गर्वोक्तिके अन्दर उसकी रक्तगत दरिद्रताकी एक हीनता भरी रहती थी। बार-बार इस 'पैसा-पूजा' का जिक्र वह कुमुदके मायकेवालोंपर चुटकी लेनेके लिए ही करता था। उसके उस स्वाभाविक ओछेपनने, भाषाकी कर्कशताने, दाम्भिक असौजन्यने कुल मिलाकर मधुसूदनके शारीरिक और मानसिक, गार्हस्थिक और आन्तरिक भद्देपनने प्रतिदिन कुमुदके सम्पूर्ण शरीर और मनको संकुचित कर दिया है। उसने जितनी ही इनको दृष्टिके सामनेसे, चिन्ताके भीतरसे दूर हटा देनेकी कोशिश की है, उतने ही वे कूड़ेखानेमें जाकर चारों ओर जमा हो गये हैं। अपने मनके इस घृणा-भावके साथ कुमुद स्वयं जी-जानसे लड़ती आई है। पति-पूजाकी कर्त्तव्यताके विषयमें संस्कारको शुद्ध रखनेके लिए उसकी कोशिशका अन्त न था, परन्तु उसकी कितनी बड़ी हार हुई है—इस बातको उसने इससे पहले इस तरह कभी नहीं समझा है। मधुसूदनके साथ उसके रक्त-मांसका बन्धन अविच्छिन्न हो गया, उसकी वीभत्सता उसे बड़ी भारी पीड़ा देने लगी। कुमुदने अत्यंत उद्विग्न होकर मोतीकी मासे पूछा—"कैसे तुमने निश्चय जान लिया?"

मोतीकी माको बहुत गुस्सा आया, अपनेको सम्हाल कर बोली—"लड़केको मा हूँ मैं, मैं नहीं जानूँगी तो जानेगा कौन ? तो भी अभी बिलकुल निश्चयके साथ कहनेका समय नहीं हुआ। किसी अच्छी दाईको बुलवाकर परीक्षा करा लेना अच्छा है।"

नवीन, मोतीकी मा और हाबलूके जानेका समय हो गया, परन्तु दैवके इस चरम अन्यायकी बातको छोड़कर आज कुमुद और किसी विषयमें सोच ही नहीं सकती थी। इसीसे ससुरेके इन मित्रोंको उसने बहुत ही साधारण भावसे विदा किया। नवीनने जाते समय कहा—"बऊरानी, संसारमें सभी वस्तुओंका अवसान है, पर तुम्हारी सेवा करनेका जो अधिकार मुझे सहसा एक ही दिनमें मिल गया था, उसका इस ढंगसे अचानक एक दिन अन्त हो जायगा—इस बातकी मैंने कल्पना भी नहीं की। फिर कभी भेंट होगी।" नवीनने प्रणाम किया, हाबलू चुपचाप रोने लगा, मोतीकी मा मुँहको कठोर बनाये रही, एक बात भी नहीं की।

[५७]

बात विप्रदासके कानों तक पहुँची। दाई आई, कुमुदके गर्भवती होनेमें अब सन्देह न रहा। मधुसूदनको भी यह बात मालूम हो गई। मधुसूदनने धन चाहा था,—काफ़ी धन मिला, धनके योग्य खिताब भी मिला, अब अपनी महिमाको भावी वंशमें प्रतिष्ठित कर सकनेसे ही इस जीवनमें उसका कर्त्तव्य चरम लक्ष्य तक पहुँच जायगा। मनमें जितना ही आनंद होने लगा, उतना ही अपराधका सारा दायित्व कुमुदके ऊपरसे हटाकर लादने लगा विप्रदासपर। उन्हें एक दूसरी चिट्ठी लिखी, शुरू किया whereas से, और अन्त किया Your obedient servant मधुसूदन घोषाल दस्तखत करके। बीच में था I shall have the painful necessity (नहीं तो

मजबूर होकर मुझे यह कष्टप्रद कर्त्तव्य पालन करना होगा) इत्यादि। इस तरहकी धमकी देने वाली चिट्ठीका चटर्जी-वंशपर उल्टा असर पड़ता है —ख़ासकर जब कि हानिकी आशंका हो। विप्रदासने वह चिट्ठी कालूको दिखाई। उसके चेहरेपर सुर्खी आ गई, उसने कहा—"इस तरहकी चिट्ठीसे मेरे जैसे मामूली आदमीकी देहमें एकदम बादशाही मात्रामें खून खौल उठता है। अदृश्य कोतवालको बुलाकर हुक्म देनेकी इच्छा होती है—सर उतार लो इसका।"

दिनमें बहुतसा लिखने-पढ़नेका काम था, उसे खतम करके शामको विप्रदासने कुमुदको अपने पास बुलवाया। कुमुद आज दिन-भर भइयाके पास आई ही नहीं है। अपनेको छिपाती फिरती है वह।

विप्रदास बिस्तरसे उठकर चौकीपर आ बैठे। मरीजकी तरह सोते रहनेसे मन कमज़ोर रहता है। अपने सामने कुमुदके लिए एक छोटीसी चौकी रख छोड़ी है। बत्ती घरके एक कोनेमें ज़रा ओटमें रखवा दी है। सिरके ऊपर एक पंखा चल रहा है। बैसाख-जेठके आकाशमें उस समय भी गरमी इकट्ठी हो रही थी, दखिनी हवा बीच-बीचमें ज़रा साँस छोड़ती और थककर रह जाती, पेड़के पत्ते मानो कान लगाकर कुछ सुन रहे हों—ऐसा सन्नाटा है। समुद्रके मुहानेपर गंगाने जहाँ नीले जलको फीका कर दिया है, ठीक वैसा ही मानो आजका यह अन्धकार! लम्बा फैला हुआ गोधूलिका अन्तिम प्रकाश उस समय भी सन्ध्याकी उस कालिमामें मिला हुआ है। बगीचेका तालाब छायासे अदृश्य रहता था, किन्तु आज खूब चमकते हुए एक तारेका स्थिर प्रतिबिम्ब आकाशकी अँगुली बनकर इशारेसे उसे दिखा रहा है। पेड़ोंके नीचेसे लालटेन हाथमें लिये नौकर-चाकर जा-आ रहे हैं, और बीच-बीचमें उल्लू बोल रहे हैं।

कुमुद शायद कुछ इधर-उधर करने लगी—उसे आनेमें ज़रा देर लग गई। विप्रदासके पास चौकीपर बैठते ही उसने कहा—"भइया, मुझे अब कुछ भी अच्छा नहीं लगता, मानो मेरी कहीं जानेकी इच्छा होती है।"

विप्रदासने कहा—"ग़लत समझा है तूने कुमू, तुझे अच्छा लगने लगेगा। और कुछ दिन बाद ही तेरा मन भर उठेगा।"

"मगर फिर—" कहकर कुमुद चुप रह गई।

"सो तो मैं समझता हूँ,—अब तेरा बंधन तोड़ कौन सकता है?"

"तो क्या जाना होगा, भइया?"

"तुझे मैं मना कर सकूँ, ऐसा अधिकार अब मेरेमें नहीं है। तेरी सन्तानको उसके अपने घरसे वंचित करूँ किस बिरतेपर?"

कुमुद बहुत देर तक चुपचाप बैठी रही, विप्रदास भी कुछ न बोले।

अंतमें बड़े कोमल स्वरसे कुमुदने पूछा—"तो कब जाना होगा?"

"कल ही, अब देर सहन न होगी।"

"भइया, एक बात शायद तुम समझते ही होगे कि अबकी जानेपर वे मुझे फिर कभी तुम्हारे पास न आने देंगे।"

"सो मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ।"

"अच्छी बात है, यही सही; लेकिन एक बात तुमसे कहे देती हूँ, किसी दिन किसी भी कारणसे तुम उनके घर नहीं जा सकोगे। मैं जानती हूँ भइया, तुम्हें देखनेके लिए मेरा जी तड़पेगा; मगर फिर भी उनके यहाँ तुम्हें कभी न देखना पड़े। उसे मैं नहीं सह सकूँगी।"

"नहीं, कुमू, इसके लिए तुझे सोचनेकी ज़रूरत नहीं।"

"लेकिन वे तुम्हें संकटमें डालनेकी कोशिश करेंगे।"

"वे जो कुछ कर सकते हैं, कर चुकनेपर हमपर उनका अधिकार भी खतम हो जायगा। तब मैं हो जाऊँगा स्वाधीन। उसे तू संकट क्यों कहती है, कुमू?"

"भइया, उस दिन तुम भी मुझे स्वाधीन कर लेना। तब तक उनका लड़का उनके हाथ सौंप जाऊँगी। संसारमें ऐसी चीज़ है, जो लड़केके लिए भी नहीं गँवाई जा सकती।"

"अच्छा,—पहले होने दे लड़का, उसके बाद कहना।"

"तुम्हें विश्वास नहीं होता, लेकिन माकी बात याद है तो? उनकी तो हुई थी इच्छा-मृत्यु। उस दिन संसारमें उन्हें अपने लिए स्थान नहीं मिल रहा था, इसीसे वे अपने लड़के-बालोंको अनायास ही छोड़कर जा सकी थीं। मनुष्य जब मुक्ति चाहता है, तब कोई भी उसे रोक नहीं सकता। मैं तुम्हारी ही बहन हूँ भइया, मुक्ति चाहती हूँ मैं। एक दिन, जिस दिन बन्धन टूटेगा, मा उस दिन मुझे आशीर्वाद देंगी, यह मैं तुमसे कहे रखती हूँ।"

फिर बहुत देर तक दोनों चुप रहे। सहसा ज़ोरकी हवा आई, तिपाईपर विप्रदासकी पढ़नेकी किताब रखी थी, फर्र-फर्र उसके पन्ने उलट जाने लगे। बग़ीचेसे बेलाकी सुगन्ध आने लगी—कमरा महक उठा।

कुमुदने कहा—"मुझे उन लोगोंने जान-बूझकर कष्ट दिये हों, यह मत समझना। वे मुझे सुख दे नहीं सकते—मैं इसी ढंगसे बनाई गई हूँ। मैं भी उन्हें सुखी नहीं कर सकती। जो आसानीसे उन्हें सुखी बना सकते हैं, उनकी जगह घेर लेनेसे एक-न-एक संकट आनेकी ही सम्भावना है। तो फिर यह विडम्बना क्यों! समाजकी तरफसे अपराधका सारा अपमान मैं ही अकेली झेल लूँगी, उनपर किसी तरहका कलंक न लगने दूँगी। परन्तु एक दिन उन्हें भी मुक्ति दूँगी, मैं भी लूँगी; चली आऊँगी ही—देख लेना तुम। असत्य होकर असत्यमें नहीं रह सकती। मैं उनके घरकी

बड़ी बहू हूँ, इसके फिर कोई माने रहते हैं अगर मैं कुमुद न रही ? भइया, तुम देवता नहीं मानते, मैं मानती हूँ। तीन मास पहले जितना मानती थी, आज उससे भी ज्यादा मानती हूँ। आज दिन-भर मैं यही सोच रही हूँ कि चारों तरफ इतनी विशृङ्खलता है, इतना उल्टा-पुल्टा है, तो भी उस जंजालने सारे जगत्‌को ढक क्यों नहीं लिया। इन-सबको पार करके भी चन्द्र-सूर्यको लेकर संसारका काम चल रहा है; वहीं है—पार होकर जहाँ पहुँचा है, वैकुण्ठ वहीं है—वहीं हैं मेरे देवता। तुम्हारे सामने ये सब बातें कहनेमें लज्जा आती है,—परन्तु फिर तो कभी कहनेका मौक़ा नहीं मिलेगा, आज कह लूँ, जो कहना हो। नहीं तो मेरे लिए—झूठ-मूठको चिन्ता करोगे। सब-कुछ चले जानेपर भी, फिर भी कुछ बाक़ी रहता है—इस बातको मैं समझने लगी हूँ; वह मेरा अन-निबट है—कभी न निबटेगा, वे हैं मेरे देवता। इतना अगर न समझती, तो यहीं पर तुम्हारे पैरों तले सिर रखकर मर जाती, उस क़ैदखानेमें नहीं घुसती। भइया, इस संसारमें तुम मेरे पास हो—इसीसे इन बातोंको मैं समझ सकी हूँ।"

इतना कहकर कुमुद चौकीसे उतरकर भइयाके पैरोंपर सिर रखकर पड़ी रही। रात बढ़ने लगी, विप्रदास जंगलेके बाहर अनिमेष दृष्टिसे देखते हुए सोचने लगे।

[५८]

दूसरे दिन विप्रदासने खूब तड़के ही उठकर कुमुदको बुलवाया। कुमुदने आकर देखा कि विप्रदास बिस्तरपर बैठे हैं, एक इसराज है गोदपर, और एक रखा है बग़लसे। कुमुदसे बोले—"इसराज उठा ले, हम दोनों मिलकर बजायें।"

उस समय भी कुछ-कुछ अँधेरा था। सारी रातके बाद हवा कुछ ठंढी होकर पीपलके पत्तोंमें खेल रही है, कौओंने बोलना

शुरू कर दिया है। दोनोंने भैरवी रागिणीमें अलाप शुरू किया—कैसा गम्भीर, शान्त, सकरुण सुर है, सती-विरह जब अचंचल हो उठा था, महादेवके उस दिनके प्रभातके ध्यानके समान। बजाते-बजाते पुष्पित कृष्णचूड़ाकी डालियोंके भीतरसे अरुण-आभा क्रमशः उज्ज्वल हो उठी, सूर्य दिखाई दिया बग़ीचेकी दीवालके ऊपर। नौकर-चाकर दरवाज़ेके पास तक आकर खड़े-खड़े लौट गये। घर साफ न हो सका। धूप घरके अन्दर आ गई। दरबान आया, धीरेसे अख़बार तिपाईपर रखकर चुपचाप चला गया।

अन्तमें बाजा बन्द करके विप्रदासने कहा—"कुमू, तू समझती है मेरा कोई धर्म ही नहीं है। अपने धर्मको शब्दोंमें कहूँ तो वह निबट जाता है, इसीसे नहीं कहता। गानके सुरमें उसका रूप देखता हूँ मैं, उसमें गंभीर दुःख है और गंभीर आनन्द, दोनों एक होकर लीन हो गये हैं; मैं उसे नाम नहीं दे सकता। तू आज चली जा रही है, कुमू, अब शायद भेंट न होगी, आज सवेरे तुझे उन सब बेसुरोंके—सब अनमेलोंके—उस पार पहुँचा देने आया हूँ। 'शकुन्तला' पढ़ी है,—दुष्यन्तके घर जानेके लिए जब शकुन्तलाने यात्रा की थी, तो कण्वने कुछ दूर तक उसे पहुँचा दिया था। जिस लोकमें उसे पहुँचानेके लिए वे साथ गये थे, उसके बीचमें था दुःख अपमान। परन्तु वहीं ठहरी हो, सो नहीं, उसे भी पारकर शकुन्तला पहुँची थी अचंचल शान्तिमें। आज सवेरेकी भैरवी रागिणीमें उसी शान्तिका सुर है, मेरे सम्पूर्ण अन्तःकरणका आशीर्वाद तुझे उसी निर्मल परिपूर्णताकी ओर अग्रसर करता रहे; यह परिपूर्णता तेरे अन्तरके, तेरे बाहरके, तेरे सब दुःखकी—तेरे सब अपमानको बहा दे।"

कुमुद कुछ नहीं बोली। विप्रदासके पैरोंपर सिर रखकर प्रणाम किया। थोड़ी देर तक जंगलेके बाहर उजालेकी ओर खड़ी-

खड़ी देखती रही। उसके बाद बोली--"भइया, तुम्हारी चाय रोटी बनाकर ले आऊँ मैं।"

मधुसूदनने आज ज्योतिषीको बुलाकर शुभ यात्राका मुहूर्त्त सुधवा लिया था। सवेरे दस बजेके बाद। ठीक समयपर जरीदार लाल बनातसे घिरी हुई पालकी आकर दरवाजेसे लग गई, आसा-सोटा लिए हुए दरवान वगैरह आये, समारोहके साथ कुमुदको ले गये मिर्जापुरके प्रासादमें। आज वहाँ नौबत बज रही है, और हो रहा है ब्राह्मण भोजन, ब्राह्मणोंकी विदाई।

माणिक आया बार्लीका प्याला लेकर विप्रदासके कमरेमें। आज विप्रदास बिस्तरपर नहीं हैं; जंगलेके सामने चौकी ले जाकर स्थिर बैठे हैं उसपर। कब बार्ली आई, कुछ खबर ही नहीं ली उन्होंने। नौकर लौट गया। फिर बुआजी आई पथ्य लेकर। विप्रदासके कंधेपर हाथ रखकर कहा—"विपू, अबेर हो गई है, बेटा।"

विप्रदास चौकीपर-से उठकर धीरे-धीरे बिस्तरपर आकर लेट गये। क्षेमा-बुआकी इच्छा थी कि कैसे धूमधामसे आदरके साथ लिवा गये कुमुदको, इस बातका विस्तारसे वर्णन करें। परन्तु विप्रदासकी गंभीर निस्तब्धता देखकर कोई बात ही न निकली उनके मुँहसे। मालूम हुआ—विप्रदासकी आँखोंके सामने है एक अतलस्पर्शी शून्यता।

विप्रदास जब कहने लगे—'बुआजी, कालूको भेज दो मेरे पास—तो यह मामूली-सी बात भी मानो अदृष्टकी किसी विशाल विस्तृत निःशब्द छायाके भीतरसे ध्वनित हो उठी। मारे आतंकके बुआके रोंगटे खड़े हो गये।

कालू जब आया, तो विप्रदासने उसके हाथमें एक चिट्ठी दी। विलायतकी चिट्ठी थी—सुबोधकी लिखी। सुबोधने लिखा है—'बार' को डिनर खतम किये बिना ही अगर वह चला आवे,

तो फिर उसे जाना होगा वहाँ। इससे यही अच्छा है कि अन्तिम डिनरसे छुट्टी पाकर माह-फागुन तक देश-लौट आवे, अनर्थक खर्चसे भी बच जायँगे। उसकी धारणा है कि यहाँकी आवश्यकताएँ तब तक सब्र कर सकती हैं।

आजके दिन धन-सम्पत्तिके संकटका ज़िकर करके विप्रदास-को व्यथित करनेकी कालूकी ज़रा भी इच्छा न हुई। कालूने कहा—"भाई साहब, अभी तक तो रुपये चुकानेकी कोई बात नहीं छिड़ी, और कुछ दिन अगर हम सावधानीसे चलें, किसीको छेड़ा-छाड़ी न करें, तो जल्दी कोई उपद्रव न होगा। ख़ैर, कुछ भी हो, तुम किसी तरहकी फिकर मत करो।"

विप्रदासने कहा—"मुझे कोई फिकर नहीं है, कालू। रंचमात्र भी नहीं।"

विप्रदासकी फिकर कालूको अच्छी नहीं लगती,—पर इतनी ज्यादा निश्चिन्तता उसे और भी बुरी मालूम होती है।

विप्रदास अखबार उठाकर पढ़ने लगे, कालू समझ गया कि इस बारेमें किसी तरहकी चर्चा करनेकी विप्रदासकी ज़रा भी इच्छा नहीं। और रोज़ काम-काजकी बात ख़तम होते ही कालू चला जाता था, आज वह चुपचाप बैठा रहा उसकी इच्छा होने लगी कि कुछ बातचीत करे—जैसे भी हो, किसी सेवामें लग जाय। पूछा—"बाहरकी उस खिड़कीको बंद कर दूँ? घाम आ रही है।"

विप्रदासने हाथ हिलाकर जताया कि ज़रूरत नहीं।

फिर भी कालू बैठा ही रहा। भइयाके पास आज कुमुद नहीं है, यह शून्यता उसकी छातीपर सवार रही। सहसा सुनाई दिया—खाटके नीचे टाम कुत्ता भीतर-ही-भीतर घुमड़-घुमड़कर रो उठा। कुमुदको उसने चले जाते देखा है, क्या जाने क्या समझा है उसने, अच्छी तरह समझाते नहीं बनता उससे।